मानवी

वर्ष 2 अंक 3

अंदर पढ़ें ...

- प्रसिद्ध साहित्यकार शैलेन्द्र चौहान का आत्म संस्मरण- " यायावर मैं"
- डॉ अरुण तिवारी का साहित्य अकेडेमी पुरस्कार से पुरस्कृत नासिरा शर्मा जी पर विशेष लेख
- रश्मि तिवारी का " आल्हा" पर विशेष लेख
- कहानीकार -रामनगिना मौर्य की कहानी -"शास्त्रीय-संगीत"
- कृष्ण कुमार यादव की कहानी " आवरण"
- श्यामल बिहारी महतो की कहानी " विरासत का पंचनामा"

मानवी

मानवी त्रैमासिक साहित्यिक ई पत्रिका

जुलाई - सितंबर 2022

जब बाग
केसरिया फूल खिले हों
जब मोरों के नर्तन से
मनफूल कमल खिल जाये
जब श्वेत
कपास के फाँहो से
बादल भर-भर जाये
जब मेघ उमड़-घुमड़ कर
सिंहों सा गुर्राये
जब दूब हरी हो
धूप भरी हो
जब धान धरा को चूम-चूमकर लहराये
तब-तब– भारत
तीन रंग मे सज-धजकर
आजादी का अमृत पर्व मनाये...
जब शूरों से-वीरों से
लिपट-लिपट कर
ध्वज नतमस्तक हो जाये
जब– भारत का कण कण
जन गण मन गाये...
तब-तब–भारत
तीन रंग मे सज-धज
आजादी का अमृत पर्व मनाये...।
कविता सिंह

सम्पादक -राजेश कुमार सिंह
****
उप- सम्पादक -कविता सिंह
****
परामर्शमण्डल -डॉ राधेश्याम तिवारी
****
आवरण -चित्र -तेजस सिंह
****
ई मेल -
manvipatrika@gmail.com
****
वेब -
http://www.manvipatrika.co.in/
****
संरक्षक
श्रीमती जानकी किशोरी देवी एवं
श्री राम चन्द्र सिंह
****
पता -कार्यकारी -बी -701 ,स्वाति फ्लोरेंस ,
निकट सोबो सेंटर ,साउथ बोपल ,अहमदाबाद -380058

स्थायी - 274/x ,शक्ति णगर कालोनी ,आरोग्य मंदिर ,गोरखपुर -273003
मोब -9833775798
मानवी पत्रिका में प्रकाशित लेख /काव्य आदि रचनकारों के अपने विचार है ,जिनसे प्रकाशक/ संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है ।
सभी विवादों का न्याय क्षेत्र गोरखपुर रहेगा ।
रचना की मौलिकता का दायित्व रचनाकार का है
पत्रिका से जुड़े सभी पद अवैतनिक है ।

पत्रिका आप सभी मित्रों से रचनात्मक सहयोग के अलावा अर्थ-सहयोग का भी निवेदन करती है, यह स्वैच्छिक है आप पेटिएम नं -9833775798 पर स्वेच्छा से यथासंभव धनराशि सहयोग के रुप में अंतरित कर सकते हैं।

वर्ष –2 ,अंक –3 (जुलाई - सितंबर , 2022)
त्रैमासिक ई -पत्रिका

इस अंक में —

4- संपादक की कलम से

5- काव्य धरोहर

लेख /आलेख -

6-सुरेखा शर्मा
8-डॉ अरुण तिवारी गोपाल
12-रश्मि तिवारी
23-सिंधु मिश्रा
24-भावना ठाकर' भावु'
25-सीमा रंगा इन्द्रा
26-डॉ . मुश्ताक़ अहमद शाह" सहज़"
27-मीनाक्षी शुक्ला
29-जयश्री बिर्मी
31-दीपक कुमार त्यागी
33-डॉ कान्ति लाल यादव
38-संजय सिंह चौहान
39-सत्यवान' सौरभ'
41-डॉ .दिनेश कुमार गुप्ता

संस्मरण
15-शैलेन्द्र चौहान
44-अर्चना श्रीवास्तव' आहना'

हास्य व्यंग्य -

34-आध्या रेणु
35-प्रोफेसर शामलाल कौशल
37-दिनेश गंगराड़े

कहानी -

47-रामनगीना मौर्य
51-कृष्ण कुमार यादव
54-अर्चना त्यागी
55-नीलू चोपड़ा
58-दीपक कुमार
61-श्यामल बिहारी महतो
64-दिलीप सिंह यादव

लघुकथा

11-डॉ० अशोक
24-डॉ० दलजीत कौर
28-नीना सिन्हा
38-अतुल मोहन प्रसाद
60-मनोज मिश्रा
65-रश्मि सिन्हा
66-रीटा मक्कड़
67-सपना चन्द्रा
68-शराफ़त अली ख़ान
69-रमेश कुमार संतोष
70-विकास बिश्नोई

काव्य /हाइकु /ग़ज़ल
2- कविता सिंह
14-दया भट्ट
22-डॉ सरला सिंह" स्निग्धा"
23-भावना सक्सैना
30-कनक किशोर
32-बृज राज किशोर राहगीर
36-बलविंदर बालम
37-विजय कनौजिया
40-केशव शरण
43-मनीषा झा
46-समीर द्विवेदी नितान्त
50-राजीव डोगरा
53-लोकेश कुमार' रजनीश'
57-अर्चना रॉय
59-सलिल सरोज
60-चन्द्रकान्ता
68-पृथ्वीसिंह बैनीवाल बिश्नोई
70-राजेंद्र प्रसाद श्रीवास्तव
71-आकांक्षा यादव
71-सुधा गोयल
71-रीना सिन्हा
72-सुरभि डागर
72-रेखा शाह आरबी
73-डा. लता अग्रवाल' तुलजा'
73-संध्या शर्मा" श्रेष्ठ "
74-सीमा जोधावत
75-अरुण यादव
75-मनोज शाह' मानस'
76-नवीन माथुर पंचोली
78-गिरेन्द्रसिंह भदौरिया" प्राण
85-लाल देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

पुस्तक समीक्षा -
77-डॉ. जियाउर रहमान जाफरी
79-विजय कुमार तिवारी
83-वंदना नामदेव
84-डॉ प्रदीप उपाध्याय
86-डॉ.कान्ति लाल यादव
89-प्रोफेसर प्रतिभा पाण्डेय

चित्रकला -
92-तेजसी सिंह

संपादक की कलम से ...

आजादी के अमृत महोत्सव वर्ष की आप सभी को बहुत बहुत बधाइयां। यह वर्ष हम सभी के लिए यादगार रहेगा, जब पूरी धरती हरी और पूरा आकाश केसरिया रंग में रंगा हुआ था। सभी भारतवासियों के दिलों में देश प्रेम का जज्बा हिलोरें मार रहा था। हर हर तिरंगा,घर घर तिरंगा लहरा रहा था। देखा जाय तो सभी ने मिलजुलकर इस वर्ष आजादी का पर्व मनाया। सारी दुनियां के लिए हमारी एकता का संदेश था ,हम एक हैं और एक रहेंगे। दुनिया की कोई भी विध्वंसकारी ताकत हमारी ओर निगाह डालने से पूर्व दस बार नहीं हजार बार सोचेगी।

ऐसे अवसर पर **श्रद्धेय श्यामलाल गुप्त "पार्षद"** द्वारा रचित झण्डा गीत की पंक्तीया प्रासांगिक है

विजयी विश्व तिरंगा प्यारा ,
झंड ऊंचा रहे हमारा
सदा शक्ति सरसाने वाला,
प्रेम सुधा बरसाने वाला
वीरों को हरषाने वाला,
मातृभूमि का तन-मन सारा।। झंडा...।
स्वतंत्रता के भीषण रण में,
लखकर बढ़े जोश क्षण-क्षण में,
कांपे शत्रु देखकर मन में,
मिट जाए भय संकट सारा।। झंडा...।

हमारे हिन्दी साहित्य को एक बार फिर जानी मानी कथाकार एवं उपन्यासकार गींतजली श्री जी ने विश्व पटल पर जगह दिलायी। गीतांजलि श्री के उपन्यास "रेत समाधि" को इंटरनेशनल बुकर पुरस्कार मिलना हम सब हिंदी साहित्य प्रेमियों के लिए गर्व की बात है। साथ साथ बताता चलूं कि गीतांजलि श्री हिंदी की पहली ऐसी महिला लेखिका हैं जिन्हें अंतर्राष्ट्रीय बुकर पुरस्कार मिला है. यह पुरस्कार उनके उपन्यास 'रेत समाधि' के अंग्रेज़ी अनुवाद 'टूंब ऑफ़ सैंड' के लिए दिया गया। निर्विवाद रूप से यह हिंदी साहित्य के लिए और हिंदी साहित्य में महिलाओं के लिए एक प्रकाश स्तंभ है। मेरा मानना है कि यह लेखकों, कथाकारों,उपन्यासकारो को उत्कृष्ट साहित्य लिखने के लिए प्रेरित करता रहेगा।

भारत सरकार के अथक प्रयासों से हमारी मातृभाषा हिंदी अब संयुक्त राष्ट्र महासभा में शामिल कर ली गई संयुक्त राष्ट्र महासभा (UNGA) ने 10 जून को इस दिशा में एक उल्लेखनीय पहल करते हुए बहुभाषावाद(multilingualism) पर भारत की ओर से पेश किए गए प्रस्ताव को पारित कर दिया है। अब संयुक्त राष्ट्र महासभा की अधिकारिक वेबसाइट पर हिंदी में भी जानकारियां उपलब्ध रहेगी। निश्चित रूप से यह भारत के लिए और सभी हिंदी भाषियों के लिए गर्व का विषय है। इससे पहले संयुक्त महासभा में सिर्फ छह: भाषाएं अंग्रेजी, फ्रेंच,अरबी, चीनी, रूसी और स्पेनिश भाषाएं शामिल थी।

यह समय त्यौहारों का है १५ अगस्त को अभी अभी हमने अपने देश का सबसे बड़ा त्यौहार मनाया हैं। रक्षाबंधन, पारसी नव वर्ष, जन्माष्टमी गणपति इत्यादि अनेक आने वाले और बीतने वाले सभी त्यौहारों पर आप सभी को बधाईयां एवं शुभकामनाएं। हिंदी साहित्य और हिंदी भाषा के लिए विशिष्ट दिन १४ सितंबर अर्थात हिंदी दिवस पर आप सभी को विशेष रूप से बधाई। आइये हम सब मिलकर प्रण करें कि १४ सितंबर सिर्फ खानापूर्ति के लिए नहीं बल्कि हिंदी भाषा को समृद्धि करने के लिए, हिंदी भाषा को उसका वांछित सम्मान दिलाने के लिए हम वर्ष भर प्रयासरत रहेंगे।

शुभकामनाओं सहित.....

आपका शुभाकान्छी

काव्य धरोहर

राम प्रसाद बिस्मिल

*(1)

मिट गया जब मिटने वाला फिर सलाम आया तो क्या !
दिल की बर्बादी के बाद उनका पयाम आया तो क्या !

मिट गईं जब सब उम्मीदें मिट गए जब सब ख़याल ,
उस घड़ी गर नामावर लेकर पयाम आया तो क्या !

ऐ दिले-नादान मिट जा तू भी कू-ए-यार में ,
फिर मेरी नाकामियों के बाद काम आया तो क्या !

काश! अपनी जिंदगी में हम वो मंजर देखते ,
यूँ सरे-तुर्बत कोई महशर-खिराम आया तो क्या !

आख़िरी शब दीद के काबिल थी 'बिस्मिल' की तड़प ,
सुब्ह-दम कोई अगर बाला-ए-बाम आया तो क्या !

(2)

ऐ मातृभूमि तेरी जय हो, सदा विजय हो ।
प्रत्येक भक्त तेरा, सुख-शांति-कान्तिमय हो ।।

अज्ञान की निशा में, दुख से भरी दिशा में,
संसार के हृदय में तेरी प्रभा उदय हो ।

तेरा प्रकोप सारे जग का महाप्रलय हो ।।
तेरी प्रसन्नता ही आनन्द का विषय हो ।।

वह भक्ति दे कि 'बिस्मिल' सुख में तुझे न भूले,
वह शक्ति दे कि दुःख में कायर न यह हृदय हो ।।

(* राम प्रसाद बिस्मिल जी की अंतिम रचना)

असफाकउल्लाह ख़ां

कस ली है कमर अब तो, कुछ करके दिखाएंगे,
आज़ाद ही हो लेंगे, या सर ही कटा देंगे।

हटने के नहीं पीछे, डरकर कभी जुल्मों से,
तुम हाथ उठाओगे, हम पैर बढ़ा देंगे।

बेशस्त्र नहीं हैं हम, बल है हमें चरख़े का,
चरख़े से ज़मीं को हम, ता चर्ख़ गुंजा देंगे।

परवा नहीं कुछ दम की, ग़म की नहीं, मातम की,
है जान हथेली पर, एक दम में गंवा देंगे।

उफ़ तक भी जुबां से हम हरगिज़ न निकालेंगे,
तलवार उठाओ तुम, हम सर को झुका देंगे।

सीखा है नया हमने लड़ने का यह तरीका,
चलवाओ गन मशीनें, हम सीना अड़ा देंगे।

दिलवाओ हमें फांसी, ऐलान से कहते हैं,
ख़ूं से ही हम शहीदों के, फ़ौज बना देंगे।

मुसाफ़िर जो अंडमान के, तूने बनाए, ज़ालिम,
आज़ाद ही होने पर, हम उनको बुला लेंगे।

सुरेखा शर्मा
पूर्व हिन्दी सलाहकार सदस्या नीति आयोग नई दिल्ली भारत सरकार
हिन्दी सलाहकार सदस्या हिन्दुस्तानी भाषा अकादमी दिल्ली
गुरुग्राम-122001

आलेख

"हमारे स्वाभिमान की भाषा - हिंदी"

हमारे स्वाभिमान की भाषा ,फिर भी अपनों से उपेक्षित ,आखिर क्यों ? आज यह प्रश्न विचारणीय है । हमें हिंदी भाषा की स्थिति पर सोच-विचार करना होगा।कितने आश्चर्य की बात है कि पूरे देश में 14 सितंबर को हिंदी दिवस मनाया जाता है ।विद्यालयों में,सरकारी संस्थानों व कार्यालयों में हिंदी दिवस को एक महोत्सव का रूप दिया जाता है। फिर पूरा वर्ष हिन्दी भाषा को भुलाकर सब कार्य अंग्रेजी भाषा में होते हैं ।इससे बड़ी दुर्भाग्य की बात क्या होगी कि स्कूल में बच्चे यदि हिन्दी में बात करते पाए गए तो उन्हें सजा के तौर पर जुर्माना भरना होता है।तब हम सोचने पर विवश हो जाते हैं कि हम हिन्दुस्तान में रहते या विदेश में ? अपने ही देश में अपनी ही भाषा बोलने पर सजा ? यह भारतीयों की हीन भावना का ही परिणाम है क्योंकि हम भारतीय जब तक अंग्रेजी में बात ना करें तो स्वयं को अनपढ़, गंवार समझते हैं इसमें दोष किसका है ? इसका मनोविश्लेषण करना होगा ।

आज हिन्दी भाषा के प्रति जितनी उदासीनता हिन्दुस्तान में देखने को मिल रही है, उतनी ही तीव्र गति से विदेशों में हिंदी के प्रति लगाव बढ़ रहा है ।अमेरिका के राष्ट्रपति बुश ने हिंदी को 21वीं सदी की भाषा ही नहीं कहा बल्कि 10 करोड़ 4 लाख डॉलर देने की सार्वजनिक घोषणा कर उसे क्रियान्वित भी किया।यहाँ तक कि अंग्रेजी भाषी देशों में विश्व हिन्दी सम्मेलन भी सम्पन्न हुए।फिर हम अपने ही देश हिन्दुस्तान में ही हिंदी बोलने में क्यों हिचकिचाते हैं हम•••?

अधिकांश लोगों का सोचना है कि जो अंग्रेजी भाषा में बोलता है,वही पढ़ा लिखा है , वही बड़ा आदमी है।यह बिल्कुल गलत है,जबकि अपनी भाषा ही उसकी पहचान होती है। भाषा और संस्कृति का संबंध अत्यंत गहरा है ।भाषा के माध्यम से ही संस्कृति जीवित रहती है ।किसी भी स्वतंत्र राष्ट्र की आधारशिला राष्ट्रभाषा होती है।जिसके बिना हम राष्ट्र के अस्तित्व की कल्पना भी नही कर सकते । किसी भी देश के चरित्र का आकलन वहां की भाषा के प्रति वहां के लोगों की रूचि से लगाया जा सकता है ।

14 सितंबर 1949 को हिंदी को राजभाषा बनाने के लिए संविधान ने निर्णय लिया ।26 जनवरी 1950 को संविधान के अनुच्छेद 343 के अन्तर्गत संघ की राजभाषा हिन्दी और देवनागरी को लिपि घोषित किया गया । वैसे किसी भी राष्ट्र की पहचान प्राय: तीन अवयवों से होती है_1,उसका राष्ट्रीय ध्वज हो 2, उसका राष्ट्र गान हो 3,उसकी राष्ट्र भाषा हो।राष्ट्र ध्वज की तो अति सुन्दर परिकल्पना कर ली गई।राष्ट्रीय ध्वज में अशोक के धर्म चक्र प्रवर्तन के प्रतीक को प्रतिष्ठित करने दिया ।जो अहिंसा, शांति और विश्व मैत्री का प्रतीक हैं ।राष्ट्रगान हमें गुरुदेव से मिल गया।लेकिन राष्ट्रभाषा को पूर्णतः उचित स्थान देने में हम पीछे रह गए ।

हजारों सालों की गुलामी ने हमारी चेतना की चमड़ी को इतना मोटा कर दिया कि हम अपनी आंखों के समक्ष अपनी ही संस्कृति की अवमानना देखकर भी विचलित नहीं होते। अपनी राष्ट्रभाषा की हम रक्षा नहीं कर सकते जबकि यह हमारी अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है । इसी सन्दर्भ में बी•बी•सी लंदन के अंग्रेज,हिन्दी पत्रकार मि•मार्क टली ने भारत में आए परिवर्तन का अपना अनुभव अपनी पुस्तक " इन्डिया अनएंडिग जर्नी" में लिखा है कि, 'मैंने जब भी किसी से प्रश्न पूछे तो लोगों ने मुझे हमेशा अंग्रेजी में ही जवाब दिए । मैं उन से बार-बार कहता हूं कि जब मैं आपसे हिन्दी में पूछता हूँ तो आप कृपा करके हिन्दी में ही जवाब दीजिए न! आखिर आपको हिंदी बोलने में शर्म क्यों आती है ? जबकि आज कई विदेशी रचनाकारों ने अपनी लेखनी के माध्यम से हिन्दी में अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्ति दी है, जबकि उनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है ।

हिन्दी विश्व की भाषाओं में सबसे अधिक संख्या में बोले जाने वाली दूसरी भाषा है ।डॉक्टर नौटियाल के निष्कर्षों के अनुसार नेपाल में हिंदी बोलने वालों की संख्या नेपाली बोलने वालों से अधिक है ।लेकिन भारत में लार्ड मैकाले की अंग्रेजी की विदाई नहीं कर पाए । अंग्रेजी भाषा जो हिन्दुस्तान में ही नहीं पूरे विश्व में किसी की भी मातृभाषा नहीं, फिर भी उसे बच्चों को बचपन से ही पढ़ाया जाना क्या अन्याय नहीं है ? यह भाषा हमारी उन्नति में रुकावट पैदा कर रही है ।गत 40-45 वर्षों से जिस तेजी से अंग्रेजी के पीछे भागने की होड़ लगी है वह अपनी भाषा के प्रति हत्या जैसा दुष्कर्म है , अर्थात भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं संस्कारों की हत्या ।संविधान में प्रतिष्ठित राजभाषा के प्रयोग में जो एक अनुल्लंघनीय अंतर है , वह यह है कि हमारा मस्तिष्क विषय को पहले सोचता है, फिर उसे अंग्रेजी में अनुवाद करके बोलता है जो कि गलत है ।यह एक बीमारी है, जिससे हमारी मानसिक क्षमता नष्ट हो जाती है ।इसलिए हमें बचपन में अपनी मातृभाषा का ही अधिक से अधिक प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि बचपन ही जीवन की नींव होता है ।

देखा जाए तो हिन्दी भाषा को क्षति सबसे ज्यादा गली-गली में खुलने वाले पब्लिक स्कूलों से हुई है । इन्टरनेशनल व वर्ल्ड स्कूल तो हर नुक्कड़ पर शोभायमान हो चुके हैं ।यदि

स्कूलों की फीस शुल्क के विषय में जानेंगे तो आपके अर्थात् आम आदमी के होश उड़ते नज़र आएंगे। 50 से 90 हजार तक का शुल्क नर्सरी कक्षाओं में लिया जाता है।क्या उसपर कोई नकेल डाल सकता है ? जब नर्सरी में शिक्षा दिलाने के लिए माता-पिता को इतनी धन राशि जमा करनी पड़ेगी तो वह रिश्वत जैसे हथकंडे ही अपनाएगा।ईमानदारी कीआमदनी में अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में बच्चे नही पढ़ा सकते।आज सफलता का पर्याय ही अंग्रेजी हो गया है।

इस सबका परिणाम यह निकला कि हर भारतवासी के मन मस्तिष्क में यह धारणा घर कर गई कि अंग्रेजी भाषा के बिना हमारी गति नहीं, व्यक्तित्व का विकास नहीं। अंग्रेजी स्पीकिंग कोर्स खोलकर सबको बेवकूफ बनाया जा रहा है।कहीं कोई विरोध नहीं।कुछ हिन्दी सेवी अपनी भूमिका निभा भी रहे हैं, लेकिन उनकी आवाज कहीं न कहीं दबा दी जाती है।सिवाय अंग्रेजी को कोसने के उनके पास कुछ नहीं, इसलिए हिन्दी के पर प्रचार-प्रसार करने की बजाय वे अंग्रेजी की लकीर पिटने का ही कार्य करने लगे। शिक्षा संस्थानों के व्यवसायीकरण ने हिंदी भाषा के प्रति खिलवाड़ कर दिया है।तीन वर्ष की अवस्था से लेकर बीस-इक्कीस वर्ष की आयु तक अंग्रेजी की घुट्टी जिस पीढ़ी ने पी हो तो उससे कैसे आशा की जा सकती है कि वह भारतीय सभ्यता व संस्कारों से परिपूर्ण होगा और अपनी मातृभाषा को महत्व देगा ?

आज प्रत्येक व्यक्ति अंग्रेजी के मोहपाश में फंसा हुआ है।हिन्दी भाषा को योजनाबद्ध तरीके से शिक्षा से बाहर किया जा रहा है।जहाँ बारहवीं कक्षा तक हिन्दी विषय पढ़ा जाता था वहीं अब दसवीं कक्षा से भी हिन्दी विषय को वैकल्पिक रूप में रख दिया गया है।भाषाओं में चयन कर दिया गया है।जबकि अंग्रेजी भाषा अनिवार्य विषय है।

समय रहते हमें इनके षड्यंत्रों का पर्दाफाश करके अपनी और अपनी भाषा की पहचान बनानी होगी। अपनी भाषा के बिना व्यक्ति, समाज और राष्ट्र गूंगा है।बिना भाषा के किसी का भी विकास असम्भव है। नव जागरण के प्रतीक रहे केशव चंद्र सेन हिंदी भाषी न होते हुए भी जानते थे कि हिंदी के जरिए ही देश में आजादी के आन्दोलन की नींव रखी जा सकती है।उनका कहना था कि हिंदी को अगर भारतवर्ष की एक मात्र भाषा स्वीकार कर लिया जाए तो राष्ट्रीय एकता स्थापित हो सकती है।देश को जोड़ने में हिंदी ही सक्षम है।हिंदी संपर्क की भाषा है।

एक ओर हम कहते हैं कि आने वाले बच्चे भावी भारत के कर्णधार होंगे ? आप कल्पना कर सकते हैं कि आने वाला हिन्दुस्तान फिर से अंग्रेजों का गुलाम होगा। जब बच्चों को अंग्रेजी सिखाई जाएगी तो हम उनसे क्या आशा कर सकते हैं।यह प्रश्न विचारणीय है।क्या आज गर्व से कह सकते हैं -"हिन्दी हैं हम वतन है हिन्दुस्तान हमारा"। जब हिन्दी ही नहीं सीखी तो कैसा हिन्दुस्तानी? हिंदी मात्र एक भाषा ही नहीं अपितु हमारी आत्मा है। व संस्कृत भाषा समृद्ध अपनी सांस्कृतिक विरासत की संरक्षिका भी है , हमारी संस्कृति की वाहक भी है।हिन्दी समाप्त होने का अर्थ है भावी पीढ़ी का अपनी जड़ों से कट जाना।हिन्दी की उपेक्षा मां की उपेक्षा के समान है। अपनी मातृभूमि से मुहं मोड़ना है।

अब भी समय है प्रौढ पीढ़ी अपनी युवा पीढ़ी को अंग्रेजी के मोह जाल से बचाए। भाषाएं सीखना कोई अपराध नहीं बल्कि जहाँ से भी नई भाषा सीखने को मिले तो सीख लेनी चाहिएं,लेकिन उन भाषाओं का गुलाम न बने।अपना परिचय अपनी मातृभाषा में देना न भूलें ,अपनी मातृभाषा हिंदी की अवहेलना न करे।

आज हम गर्व से कह से कह सकते हैं कि हिंदी भाषा का प्रचलन बढ़ा है।बोलने वालों की संख्या भी बढ़ी है।हमें इस बात की भी खुशी है कि विश्व के हर कोने में हिंदी के शब्द और संस्कृत के श्लोक उच्चरित हो रहे हैं।अनेक देशों के विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा, साहित्य और संस्कृति की शिक्षा -दीक्षा दी जा रही है,पर बड़े खेद का विषय है कि अपने ही घर में उसका निरादर हो रहा है।हिंदी अध्यापक को, हिंदी बोलने वाले को हेय दृष्टि से देखा जाता है।

जबकि हिंदी अध्यापक कोई साधारण अध्यापक नहीं होता,वह एक राष्ट्रीय अध्यापक होता है। उसके कर्तव्य एवं दायित्व अन्य शिक्षकों से कहीं अधिक होते हैं। सबसे पहले हिंदी भाषियों को अपना आत्मविश्वास बढ़ाना होगा,अन्यथा स्थिति गंभीर होगी।राजनीति के मकड़जाल में फंसी हिंदी को मुक्त करना होगा। जैसे आजादी का बिगुल बजाया था वैसे ही अपनी मातृभाषा हिंदी को बचाने के लिए ठोस कदम बढ़ाने होंगे।अतः हमारा कर्तव्य है कि हिंदी के सम्मान की रक्षा करें।

"हिन्दी है अपनी बोली , इसका सब सम्मान करो,
स्वाधीन देश में हिंदी का अपमान न हो यह ध्यान करो"

जब भी हिंदी की बात होती है तो 'कविवर नेपाली' की पंक्तियां याद आ जाती हैं------

दो वर्तमान को सत्य, सरल, सुन्दर भविष्य के सपने दो ,
हिंदी है भारत की बोली, तो अपने आप पनपने दो।
बढ़ने दो इसे सदा आगे, हिन्दी जन-मन की गंगा है।
यह माध्यम उस स्वाधीन देश का, जिसकी ध्वजा तिरंगा है।
हो कान पवित्र इसी सुर में,इसमें हर हृदय तड़पने दो।
हिन्दी है भारत की बोली, तो अपने आप पनपने दो

****

डॉ अरुण तिवारी गोपाल
117/69N,तुलसीनगर
काकादेव कानपुर नगर उत्तर प्रदेश
208025

“मीरा से तसलीमा तक की खबरनबीस नासिरा”

स्त्री की मानवीयता की प्राप्ति हेतु अविराम संघर्ष की गतिमयता जिबह होती मेमने की कसाइयों की विरोधी सत्ता में, भागम भाग करके बचने से अधिक की एप्रोच अभी नहीं हो पाई है। विमर्श की बात हो या विमर्श के लिए बुद्धि की बात हो ,बुद्धि प्रदात्री सरस्वती, स्वयं नारी होकर ,प्रत्यय में ठगी और भौतिकता में देहभर 'भोग्य सौंदर्य' के सीमांत में रची गईं।भले ही ब्रह्म रच और रीझ कर ,सृजन के नाम पर स्वयं को ही क्यों न हार गया हो◦◦◦◦ और स्फोट से लेकर अक्षर ◦◦◦शब्द ◦◦वाक्य ◦◦◦ग्रंथ तक वही साहित्य की विजय गाथा बनी हो !

समाज के शास्त्र से त्रस्त, लूटने वाले उफनते शोर की भयावह व्यवस्था में परित्राण के लिए अवाक विवश दृष्टि की बेचारगियां झेलते, हीन और पराधीन ,वह आधी दुनिया, जो शेष आधी दुनिया की जननी है।वह अभी तक मनुष्य की आदिम भूख की 'भोग'और कोखजायों की शासन वृत्ति के 'दासी योग' तथा विगत 50000 वर्षों से सभ्यता की प्रगतिशील साजिशों के मध्य प्रकारांतर से नारी के मन, आत्मा व इतर इयत्ता को मात्र देह में कन्साइज करने के 'रोग' की 'लक्ष्मण जंजीर' नहीं खोल पाई है।

मातृसत्तात्मक वैदिक व्यवस्था की, अपाला, विदुषा, घोषा, की मेधा तो आत्महंता आस्था के भस्मासुरी नृत्य की रुनझुन से आगे ठुमक ही नहीं पाई। खानाबदोशी छोड़ने और संपत्ति के स्वामित्व के चलते ,वैदिक व्यवस्था या अन्य विश्व का समाज ,दैहिक क्षमता के बहाने वस्तुतः मातृसत्तात्मक से पित्रवंशिकता के रास्ते पितृसत्तात्मक ही होता गया है। भले 'औरत के लिए, मर्द', 'क्लैन', 'विशू' या 'विशा' ,किसी सामाजिक इकाई में रहे हों, पर शूद्र, कुत्ता और कौवा की भांति अपनी उत्कट यौनकर्म की भूख के चलते, उनके अक्षम पौरुष ने, 'स्त्री' को, "भ्रामक नियंत्रण हेतु' असत्य, पाप और अंधकार की प्रतिरूपणी कहा। (शतपथ ब्राह्मण एक 01.01.31)।

वैदिक के बाद ,लौकिक संस्कृत युग में बहु पत्नीत्व भोगती, कैकेई हो, यह बहु-भ्रातृपतित्व भोगते हुए द्रोपदी। इस मर्यादित यौन व्यवहार तथा दोगली मर्यादा के भयानक परिणामों पर यदि कवि दृष्टि बिना कारण के पड़ताल किए पड़ी तो कदाचित इसलिए कि वे महान कवि पुरुष ही थे।

वैदिक ,लौकिक ,संस्कृत से उतरकर शौरसेनी-अर्धमगधी के दाल चावल के साथ अन्य मध्यकालीन भाषाओं की खिचड़ी में गुँथी संवेदना, मीरा की बानगी से 'शील शक्ति सौंदर्य' का दुपट्टा फेंक कर, कर्तव्य, निष्ठा, सहिष्णुता, त्याग, क्षमा की धार्मिक अफीम को थूँककर ,जिद्दी, अहंकारी कुलांगार होकर ,लोक लाज व जगत की कुल-काणि को पाणी सा बहाकर, पूरी चारित्रिक दृढ़ता व पारदर्शी ईमान से, उत्पीड़ित स्त्री के दाह और विरहिणी के हाहाकारी आह को अभिव्यञ्जित करती पहली नारी विमर्शिका सिद्ध होती है ।कान्हा के ब्याज से राजस्थान के जोगियों की दृष्टि की 'प्रेम कटारी' में बावरी देह- भूख लिए मीरा को काल्पनिक सेज सुख की सेक्सुअलिटी की 'अकुण्ठ डिमांड' और भड़काती है ,उनकी यह -'कबहुँ मिलैगो....तू जोगिया, मिलकै,तपत बुझाई' की फायर अपील ही नासिरा की , 'संगसार' झेलती हुई , 'असिया' पूरी संजीदगी से बाँचती हुई कहती है -- "मेरा और उसका रिश्ता .?आदम और हव्वा का है ..समाज ? कौन समाज ? औरत मर्द का आपसी रिश्ता ,किसी समाज, किसी कानून का मोहताज नहीं होता ...शराफत कुछ औरतों की मजबूरी हो सकती है ,क्योंकि उनकी तरफ कोई आंख उठा कर देखना पसंद नहीं करता है ,और इस मजबूरी में वह पाक- पवित्र बनी रह जाती हैं... मगर मेरे साथ यह मजबूरी नहीं है ।गुनाह का पक्का मीठा फल छोड़ने का दिल नहीं, अंजाम पता है! संगसार... मगर मोहब्बत को लौटाने का दम नहीं...इस तन को सुलाना अब मेरे बस की बात नहीं है ।"

और इसी के साथ आदम की अजान की दैहिक भाषा--" तुम्हारे इस पाक जिस्म पर, आज मैं नमाज अदा करूंगा, ताकि यह इबादत गाह..." कहकर ,सीने पर हाथ रखकर, नियत बांधी। फिर दोनों हाथ उठाकर खामोशी से उस खुदा को याद किया ,जिसका दूसरा नाम मोहब्बत है। फिर रुकूँ में झुका और उस नंगी छाती के बीच सिजदे में गिरा ।दोनों संगमरमरी गुम्बदों के बीच, बालों से भरा सिर,आस्ताने पर टिका ,अपनी निष्ठा और वफादारी की कसम खाता रहा ◦◦◦तन एक हो गए◦◦◦धड़कन एक हो गई ।अपने को देखने, इस दुनिया को पहचानने और खुदा तक पहुंचने का रास्ता, एक होकर, बदन में पेवस्त हो गया ◦◦◦◦"

और पकड़े जाने पर न तो असिया पति, सास-ससुर के सामने जलालत में महसूसती है और न खुद को दोषी ।वह तो खुदा से ही पूछती है ---"°°°अगर यह गुनाह था तो फिर ऊपर वाले°°° इसबदन में यह प्यास क्यों भरी ।"

और जेलर के पूछने पर , "कोई आखिरी ख्वाहिश°°° ?" असिया हँसती चली गई°°° °°°" जब जीना चाहती थी, तब सब ने तन पर सौ सौ पहरे लगाए, किसी ने पूछा कि औरत तेरी ख्वाहिश क्या है ? और आज खुद मौत लेकर सिरहाने खड़े दुनिया वाले पूछ रहे हैं ,आखिरी इच्छा °°°हां ,मेरी जन्नत ,एक पल के लिए ही मुझे वापस दे दो°°"

इस तरह शमन दमन और विवश समझौते पर आश्रित आरोपित विवाह संस्था की नकार लिए विद्रूपात्मक भाषा के सहारे मध्यकाल की सामाजिकता में मीरा जो संकेत लिए है, वही मित्रों मरजानी की कृष्णा सोबती से अधिक मुखर होकर --इसी जन्म में "शरीर माध्यम खलु धर्म साधनम्°°" के चार्वाक दर्शन को जीने के लिए, धर्म, नैतिकता के छल को छेदती हुई नासिरा जी के सृजन में जैसे अभिव्यंजित हुई है। मध्यकाल तथा उसके अनन्तर मुस्लिम संस्कृति के आक्रामक फैलाव तथा विश्व में कॉलोनाइजेशन के दौर में पितृसत्तात्मक व्यवस्था ने परिवार, विवाह ,धर्म, साहित्य, दर्शन, न्याय और मीडिया के स्वनिर्मित स्वार्थी माध्यम से 'स्त्री को मजे के लिए दैहिक वस्तु' , अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए चोली ,घाघरा, सलवार ,साड़ी तथा दर्शन हेतु सौंदर्य भर मानती है तथा 'सभ्यता की सीढ़ियों' की तरह इतिहास में उस पर चढ़कर तारीखों का पट्टा टाँगती है। विकसित देशों के आंकड़े(मार्क्सवादी देशों को छोड़कर) सर्वाधिक भ्रामक हैं और हर देश व्यवस्था में औरत दोयम नागरिक है -प्रायः तिरस्कृत ,उपभुक्त ,लांछित व दमित।जागरण काल के हिंदी सृजन में बंकिम के प्रभाव ,भारतेंदु के अव्यवहारिक आदर्श भाव, द्विवेदी जी के छद्म नैतिक आतंक के समय, नारी विमर्श अपनी रूढ़ मातृत्व छवि का घूंघट न उतार सका,और छायावादी वृत्तियों में वह दुख को बिना जीते, मिटकर मृत होने को गौरवशाली त्याग की 'श्रृंखला की कड़ियां' न तोड़ सका ।

भारतीय कथा साहित्य के कथासम्राट पद भले प्रेमचंद के पास हो ,पर शिवरानी देवी ,उनकी 'नारी वकालत' को जब छद्म सहानुभूति कहतीं हैं, तो वह युग का 'खरा सच' ही होता है।

शिवरानी जी, महादेवी जी का वैचारिक-दार्शनिक , चिंतन हो या कृष्णा सोबती की विशुद्ध शरीर के स्तर पर जीवन जीती , "डार से बिछुड़ी " की 'पाशो' हो, या पोर-पोर देह-भूख की तृप्ति वाञ्छी-कामना संचालित दबंग, 'मित्रो', दब्बू 'जया' और गुमसुम 'रत्ती' सभी वायलेंट हैं, एग्रेसिव हैं ,पर अपने कंसर्निंग पूरी 'एसर्ट' और कान्सस ।

पर इन सभी में आर्य-अनार्य नारियों के विद्रूप द्वैत, हिंदू-मुस्लिम साझा संस्कृतियों की साम्य विरासती मजहबी पड़ताल तथा यहूदी , इस्लामिक , अरबी , अफ्रीकी, अमेरिकी , यूरोपीय और यूरेशिया के नारी जीवन परिवेश के भोगे यथार्थ की वह अनुभव संपत्ति नहीं है जो एक साथ पूरी सौम्य साम्यता लिए नासिरा शर्मा जी की सृष्टि में प्रामाणिकता के साथ उपलब्ध है। "कठगुलाब" में मृदुला गर्ग की 'विवाहसंस्था' के प्रति आहत,औरतों की अनास्था, मर्द के विरोध में मर्द न होकर सर्जक होने की व्यामोही वाञ्छा में इतनी व्यवहारिक नहीं लगती, जितना कि नासिरा शर्मा जी के यहां 'शाल्मली' में नरेश और शाल्मली के स्वामी-दासी, रक्षक-रक्षिता , संबंध कैसे आकर्षण से घोर घृणा में बदलते हुए भी अद्यतन 'कॉन्ट्रैक्ट मैरेज ' 'लिविंग इन रिलेशनशिप' 'होमोसेक्सुअलिटी' आदि की स्वच्छंद-प्रतिबद्धता के अनन्तर भी 'विवाह' से बेहतर कोई 'पुरुष स्त्री संबंध' की सिद्धि नहीं कर पाते ।

तभी तो शाल्मली के माध्यम से नासिरा जी स्पष्टतः , न तो मैत्रैयी प्रभृति की भांति 'पुरुष विरोधी मानसिकता' रखती हैं और ना ही जया वादवानी की तरह 'पितृसत्तात्मक सत्ता को लताड़तीं' हैं ,वरन समस्या के मूल को पकड़ते हुए कहती हैं---" मैं पुरुष विरोधी न होकर अत्याचार विरोधी हूं ।"

नासिरा जी पति से, या को ,मुक्त कर के नहीं वरन, विवाह के अतिरिक्त कहीं, बेहतर साथ के अभाव के प्रति ,जागृत होने से उसी को 'शेपिंग' करने को ही श्रेय मानती हैं।

इसी तरह नासिरा जी का "ठीकरे की मंगनी" पूर्व और पश्चिम के मार्क्स के --"विवाह अस्तित्व और व्यक्तित्व की कत्लगाह है " ,एंजिल्स के- "परिवार नारी की घरेलू दास्तां पर आधारित संस्था और व्यवस्था है " तथा मिल्स के -- "विवाह वैधता पूर्ण दास तंत्र को पुख्ता करता है" की भटकती अत्याधुनिकता से परे ,तथा मुस्लिम कठमुल्लेपन व सनातनी पोंगापंथी मंत्रविद्ध स्त्रीत्व के विरुद्ध फायर गर्ल-तस्लीमा की आक्रामक ,आपत्तिपूर्ण ,अशालीन , विद्रोही भाषा से दूर ,समस्या को सहजता से रखती, निपटाती, और एक सफल अभिव्यंजना है।

नवीन-अर्वाचीन ,धर्म-प्रगतिशीलता , आदर्श-व्यवहारिकता ,की क्षीण विभाजक रेखा पर 'विवाह' के साथ, ग्लोबल लैस्बियन , 'गे-कल्चर' के साथ-साथ ऑनर किलिंग का वहशी तांडव झेलते --कबीलों से लेकर साइबर वर्ल्ड तक की जटिलताएं ,साहित्यिक अभिव्यक्तियों के लिए चुनौती है।

द्रुतगति से भागते समय में युग और संस्कृतियों के इस संक्रमित संवेदन में नारी विमर्श ,कथा से अधिक आत्मकथा के स्वरों में मुखरित होकर समाज को अपनी प्रामाणिक-भुक्त-संवेदना परोसने में लगा हुआ है ।जिनमें चंद्रकिरण सोनरिक्सा, की, "पिंजरे की मैना" (2008) , मन्नू भंडारी की 'एक कहानी यह भी' (2006), कृष्णा अग्निहोत्री की ,'लगता नहीं है दिल मेरा', मैत्रैयी जी की-' गुड़िया भीतर गुड़िया' (2002), प्रभा खेतान की-' अन्या से अनन्या' (2006) प्रभृति,मुख्य हैं ,और इन सभी में प्रायः 'अपने-अपने सेक्स उत्पीड़न' के, कच्चे कैथा वाले खट्टे चटखारे हैं ।इन सभी की सहमी विवश, पर अस्वीकृति की भाषा का रूप ,फौजियों पारिवारिक संबंधियों, मित्रों, सहपाठियों की

कामुक ईप्सा को जीती ,तस्लीमा नसरीन की भाषा का रहा ।यह दीगर बात है, कि भले सभी की इंतजारी रही हो ,पर प्रसिद्धि हेतु, सभी को 'कथित फतवा' या 'राष्ट्र निष्कासन' नसीब नहीं हुआ, क्योंकि उनके टेढ़े खेल ,तस्लीमा जी के 'उल्टा खेल', जितने धारदार नहीं हुए ,देखें---

"मैंने उस दिन रमना में देखा एक लड़का। लड़की खरीद रहा है°°°°°°

मेरी बड़ी इच्छा होती है लड़का खरीदने की। जवान जवान लड़के ।छाती पर उगे घने बाल°°° उन्हें खरीद कर पूरी तरह रौंदकर

सिकुड़े अंडकोष पर जोर से लात मारकर कहूं! भाग साले!

(उल्टा खेल)कविता-नसरीन पृष्ठ-76

परंतु पश्चिमी परंपरा के प्रभाव व एशिया की लेखिकाओं के अनर्गल आक्रोश में साम्य बैठाते हुए ,एकांगिता, आवेगिता ,आवेगात्मकता को पहचानते और इन व अन्य विद्रोही उच्छृंखल वादों-विवादों से परे रहकर द्वंदात्मकता पूर्ण समस्यापरक,लेखन के कारण ही नासिरा जी का नारी विमर्श अपना वैशिष्ट्य, विलगतः निर्धारित करता है।

वैदिक पृष्ठभूमि के मंत्र ,पौराणिक क्षेत्र के तंत्र, तत्पश्चात संस्कृत व मध्यकाल की सामंती मनोवृत्तियों के यंत्रों की , सूक्तियों में संदर्भ सहित पड़ताल करते हुए श्लोकों ,हदीसों,आयतो में, आगे बढ़ता नारी विमर्श ,तस्लीमा नसरीन के यहाँ 'समता' लाने के लिए पुरुष देह के सौंदर्य शास्त्र तथा ललना ,कामनी, रमणी, भार्या,अबला, देवी ,के समांतर स्वीकृत शब्दावली तथा मानसिकता की डिमांड करती हैं।

यद्यपि तस्लीमा जी का भुक्त, 'यौन शोषण' की श्रंखला-अनुक्रमणिका , 'मेरे बचपन के दिन' में अमान चाचा और शराफ मामा तथा साहित्यिक साथी शमशुल हक व नईम ("द्विखंडित" पृष्ठ 86, 130)के दंश समोए है, पर उनकी घृणा रोग वृत्ति पर है ,रोग अंग या उसके व्यक्तित्व पर नहीं और यही वे पुनः नासिरा शर्मा जी के समानांतर हो जाती हैं ।

धर्म ,साहित्य, नीति, निरंतर स्त्री अस्मिता को 'भोग्य वस्तु' या 'त्यागी' , 'तपस्विनी' सिद्ध करके अस्तित्व बोध से बरगलाते रहे हैं। हिंदू मठों में देवदासियाँ, मंदिरों में महंतों की नग्न सेवारत धर्म भीरु चेलियां, राज दरबारों में नर्तकियां, महलों में-हरमो में बांदियाँ, जैन-बौद्ध-गोरख, बिहारों के गर्भ गृहों की सेविकायें, तथा मुस्लिम पीर-मौलवियों के चमत्कार तले बिछी गरम देहों के समर्पित अस्तित्व, काम सुख की ऐन्द्रिकता को बिना महसूसे, पुरुष का बिस्तर गर्म करने को, सोद्देश्य सुन्नत की हुई नारियां अप्राकृतिक-अमानुषिक हों या जायज, इस पुरुषों की दुनिया में पुरुषों की ही भूख ,ईप्साओं,व त्रुटियों के 'पल्लवन उत्सव' की 'भोग्य वस्तु' से अधिक कभी कुछ नहीं हो पायीं। इतिहास गवाह है ।मातृभूमि योनि की उपनिवेश होने तक की यात्रा में नारी का विगत जीवन, विवाह संस्था के भीतर, कुंवारे व वैधव्यपन में ,अपनों के बीच ,अपनों द्वारा नियोजित, घर के निर्जन कोनों में यौन शोषण, आदि की मानसिक यातना तथा उसके द्वारा बेबसी में ,घर के अन्दर, बाहर या चकला खाने या धंधे में भोगी गई 'नरक यातना' से बहुत ही ज्यादा भयावह, घृणित और त्रासद भरा रहा है। सामाजिक शांति के दिनों की,रंगरेलियों में लप-लपाती पुरुष वासना के लिए,नारी यदि जन्नती गरम हलवा है तो सर्वाधिक अशांति, आतंक व युद्ध की विसात,और विजय का रथ औरत के धड़ पर धड़धड़ाते हुए ही गुजर कर अपनी यात्रा पूर्ण करता है ।

युद्ध-संघर्ष-आतंक-दंगा सभी इन विषम परिस्थितियों में नुची-पिटी-लुटी ही सही, नारी के सहनशील औदात्त, दृढ निष्ठा के बहुआयामी चित्र नासिरा जी की लेखनी ने जिस शिद्दत से उकेरे हैं,वह पुरुष की खोखली सहानुभूति को नाटक तथा जाति-धर्म-भीरु भड़ुवाबाजी की पोल खोलती है ।

नासिरा शर्मा जी के सृजन में औरत केवल दकियानूसी ,जज्बाती भर नहीं है ,वह हालात से, तकदीर से ,ममत्व से ,कर्तव्य से ,भयावह आतंक के बीच भी संघर्ष करती है।

दुनिया में मजहब और सियासत की आड़ में आदमी आतंक बरपा सकता है। हिंसा, आगजनी फैला सकता है। कौरवों या रावण के विरुद्ध प्रतिरोध कर सकता है ।बचाव में कृष्ण या जयद्रथ की तरह भाग सकता है, या नपुंसकता में हरम में कई बीवियां पालकर अपनी अक्षमता के चलते ऋषियों से क्रॉस कराकर वंश परंपरा बढ़ाने में बेशर्माई से ,नियोग की आड़ में, पंचपुत्रों, शतपुत्रों वाला चक्रवर्ती सम्राट बन सकता है। परंतु अंबालिका की भांति तिरस्कार को तथा द्रोपदी की भांति पांच पतियों या फूलन देवी की तरह 24 ठाकुरों के सारी रात वहशी बलात्कार को सारी रात झेल व सह नहीं सकता। अखिल ब्रह्मांड के इस अणोरअणीयान-महतोमहीयान,में सृष्टि पुरुष के व्यवहार-व्यापार में ,सहनशीला ,दृढनिश्चयी औरत की स्थिति परिस्थिति को दर्शाती हुई, 'तीसरा मोर्चा' खोलती हुई नासिरा जी कहती हैं--" मैं एक औरत हूं और औरत की अस्मत तो हिंदू मुसलमान नहीं होती जो °°°हिंदू और मुसलमान तो सिर्फ वह मर्द होते हैं, जो अपने मजहब के उन्माद में औरतों की आबरू लूट कर अपना धर्म निभाते हैं °°°",आगे वे, "अर्जुनस्य प्रतिज्ञै द्वै,न दैन्यं, न पलायनम्" को जीती हुई उसी पात्र से मदद हेतु आए हिंदू मुसलमान भाइयों से कहती हैं, जो उससे, इस भयावह-आतंकी-क्रौर्य-परिवेश से सुरक्षित, साथ में भाग चलने को कहते हैं--' तुम दोनों, जाओ भाई ,मैं मां हूं! मुझे बच्चों को दफनाना है°°° पत्नी हूं, मुझे अपने शौहर का इंतजार करना होगा °°°औरत हूं, इसलिए जुल्म के खिलाफ मुझे जिंदा रहना है °°मुझे भागना या मुंह छिपाना नहीं °°मुझे अभी जिंदा रहना है°°।" मीराकालीनरणापा ,"विधवा पुनर्विवाह" के विकल्प के अभाव में यदि कलपता है ,तो जागरण काल के राजा राममोहन राय, विद्यासागर ,प्रभृति,माननीयों की

सहानुभूति को बंकिमचन्द्र, भारतेंदु आदि सम्मान नहीं दे सके, भले ताराबाई शिंदे, रमाबाई ,चीख-तड़पकर "पारिवारिक-रखैलों" की नर्क मुक्ति को प्रतिशोधात्मक भाषा में नारी वकालत करते हुए, तुलना करते हुए, पुरुष को चिल्लाते हुए, कहे-तुम अपनी पत्नियों की मृत्यु के उपरांत अपने मुंह पर कालिख पोत कर ,दाढ़ी-मूँछ मुँडवाकर, अरण्यवास क्यों नहीं स्वीकारते ?

धर्म के छल पाठ और बकरियों-गायों की तरह , कान-नाक फाड़कर गुलामी के चिन्हों (आभूषणों) को नीति व सौंदर्य के भ्रम मानकर, 'मीरा' ,'अज्ञात हिंदू महिला' आदि ने 'आर्य नारियों' और उधर तस्लीमा ने मुस्लिम कठमुल्ली रिवायतों, शरीयतों की पुंसवादी पोल खोल कर, मुस्लिम नारियों को उनके नरक से निकलवाने को जो शाब्दिक आयास किए हैं ,उनके सौम्य-साम्य वाली साझी संस्कृति लिए प्रामाणिक उद्धरण नासिरा जी के यहां अनुभव जनित व्यवहारिकता के साथ उपस्थित हैं। साहित्य के सामाजिक सरोकार चाहे काव्य में हो या विमर्श, एक विशेष तरह से कथ्य ,परिवेश, संवाद व संप्रेषणीयता की डिमांड रखते हैं ,जिसमें विशिष्ट भाषा के माध्यम से व्यंजित होकर कोई सृष्टि अपना दायित्व निभा पाती है। मीरा अपनी पचमेल, सुधक्कड़ी अक्खड़ भाषा में, तथा तस्लीमा तक बांग्ला के प्रभाव में क्रमशः अपने वैष्णव व शास्त्रीयता नहीं छोड़ पातीं हैं, परंतु नासिरा के 'तजुर्बात के अंबार' अपनी बोलचाल वाली भाषा में, इलाहाबादी-गंगा-जमुनी सभ्यता तथा मध्य पूर्व एशिया के मध्यवर्गीय मुसलमानी तहजीब को, तुलसी घरुआ, नवरात्रि के व्रत ,गंगा मैया के नहान-आचमन-तर्पण ,तथा गोश्त का सालन देगची-कबाब, जांनमाज, तस्बीह ....की टेक्निकल भाषिक शब्दावली से, मुहावरों-कहावतों के छोंकों के साथ, लोकहृदय का सहजता से साधारणीकरण करती हैं ।नासिरा जी के यहां विमर्श की कितनी भी गंभीरता हो वाक्यों में कभी उपदिष्ट नहीं होती ,वह परिवेश व पात्र से, सीधे संवाद के माध्यम से ,फलित होती दिखती है।

नासिरा जी की यही शालीन लिंग भेद रहित, स्पष्ट अनाक्रामक व्यञ्जना शैली, उन्हें न मीरा की तरह कुलांगार कहला के तिरस्कार-बहिष्कार करवाती है और न तसलीमा की तरह काफिर मानकर मजहबी फतवे दिलवाति है, बल्कि ईरान की धार्मिक क्रांति व राजनैतिक आतंक के आग बरसाते माहौल में, तन मन से जूझ कर, अपने साहित्यिक हवन करते हुए खुमैनी के साक्षात्कार ,तथा,"खुदा की वापसी" में 'फरजाना' के ब्याज से धर्म-भीरु-मुस्लिम-समाज के मौलवियों के कठमुल्लेपन की पोल खोलने आदि में, "सच की पर्दाकुशाई" करते हुए भी फतवे के स्थान पर ओपन इनविटेशन प्राप्त करतीं हैं। उनका साहित्य के माध्यम से सामाजिक तप,दिखाने हेतु किसी माध्यम में रखी आरती की लौ की आँच नहीं घुमाता,वरन हवन कुंड की दाह सहकर,अपना जगहिताय,का निर्वाह जीता है। हिंदू, मुस्लिम, क्रिश्चियन, यहूदी, सभी महिलाएं और उनकी समस्याएं तथा उनको लेकर नारी विमर्श, बहुआयामी संदर्भों में उनकी लेखनी से सृजा है। भारतीय हिंदू समाज के वैधव्य ,पराधीन, दीन हीन ,दासी ,गृहणी, वधू ,की घुटन हो या मुस्लिम समाज की तलाक, मेहर ,पर्दा प्रथा या पश्चिमी कथित नारी स्वतंत्रता की कैथोलिक-प्रोटेस्टेंट में जकड़न, प्रभृति सभी आयाम उनके नारी चिंतन की व्यापकता सिद्ध करते हैं

लघुकथा

डॉ० अशोक
(पटना,बिहार)

"हृदय से सत्कार"

सरकारी महकमों में अक्सर लोगों में बस किसी तरह अपने दायित्वों को पूरा करने में बुझे मन से कार्य सम्पादित करने की ही परंपरा देखीं गई है। यह जीवन की सच्चाई भी है। परन्तु कभी- कभी इससे इतर होने पर यह यादगार पल बन जाती है।

सरकारी दौरें के दरम्यान मैं पहाड़ पर था। सम्पर्क पदाधिकारी के द्वारा मेरे भ्रमण कार्यक्रम के दिन से ही मेरे साथ सम्बद्ध थे। सबकुछ ठीकठाक चल रहा था। फिर यात्रा भ्रमण कार्यक्रम के दौरान सम्पर्क पदाधिकारी की अपने दायित्वों के प्रति तन्मयता और मेरे सुख- सुविधा के लिए हर मौके पर मेरी इच्छा के अनुसार स्थल भ्रमण कार्यक्रम में सहयोग वह बड़ी निष्ठा से कर रहे थे। फिर साथ- साथ परिवार के साथ घूमने के क्रम में उनकी सहृदयता काबिले तारीफ थी। हद तो तब हो गई जब मैं यात्रा के पश्चात वापसी पर था।

लौटते वक्त भी उनकी निष्ठा और मुझे सहयोग करने में उनके मन में तनिक भी कमी नहीं दिखाई दे रही थी। वहां तो मैं अतिथि था और फिर मैं जिस उम्र के पड़ाव पर था,बाद में न तो वहां मेरे जाने की कोई ख्वाहिश शेष बची थी और पहाड़ पर रहने वाले सम्पर्क पदाधिकारी के पास मेरे प्रदेश में आने की कोई उम्मीद। कारण था दूरी और फिर वहां आने का औचित्य...!

फिर भी यात्रा में एयरपोर्ट पर एयरक्राफ्ट के विलम्ब से आने की सूचना के पश्चात भी सम्पर्क पदाधिकारी मेरे एयरक्राफ्ट के जाने तक वहां खड़े रहे। यह मैंने तब जाना जब मैंने उन्हें एयरक्राफ्ट में सवार होने के उपरांत उनके द्वारा मेरे साथ बिताए गए समय के लिए धन्यवाद ज्ञापित करने के लिए दूरभाष पर वार्ता प्रारंभ की। वहां से मिले प्रत्युत्तर से मैं दंग रह गया क्योंकि चालक सहित वह एयरपोर्ट के बाहर मेरे एयरक्राफ्ट के उड़ने के इंतजार मे वहां खड़ा था।

यह मेरे जीवन के लिए एक ऐसा पल था जो मेरी ज़िन्दगी की एक यादगार पल बन गई।मैं सम्पर्क पदाधिकारी के हृदय से सत्कार के इस आचरण से स्तब्ध रह गया।काश सब लोगों में यह हृदय पुष्प से शालीनता से निकलने वाली सत्कार का भाव मिलें तो शायद आतिथ्य और अतिथि के इस रंग को एक सुखद पहचान और अहसास लोगों के बीच एक खुशबू की भांति फैलने लगें।

यह आतिथ्य का मेरे और मेरे परिवार के लिए हृदय पुष्प से दिया गया सत्कार मेरी ज़िन्दगी का एक अनमोल क्षण बन गया जो मुझे जीवनपर्यंत याद रहेगी।

रश्मि तिवारी
वनस्पति विज्ञान प्रवक्ता
लखनऊ,यू. पी.

आलेख

"आल्हा"

भारतीय संस्कृति में अध्यात्म, वीरता एवं श्रृंगार रस का अद्भुत समावेश है। खासतौर पर हिंदी क्षेत्र में मध्यकाल की बात करें तो इस दौर में जहां एक तरफ रामचरितमानस जैसी आध्यात्मिक कृति जनमानस को महाकवि तुलसीदास ने दी तो दुसरी तरफ मलिक मोहम्मद जायसी ने पद्मावत महाकाव्य के द्वारा श्रृंगार रस का अनुपम व्याख्यान लोकमानस के समक्ष प्रस्तुत किया। वही कविराज जगनिक ने वीर रस से ओत-प्रोत 'आल्ह खण्ड' का निर्माण कर डाला।

'आल्ह खण्ड', 'पृथ्वीराज रासो' के महोबा-खण्ड की कथा से समानता रखते हुए भी एक स्वतंत्र रचना है। वाचन गेय परंपरा के कारण इसमें दोषों तथा परिवर्तनों का समावेश हो गया है। 'आल्ह खण्ड' वीर रस की मनोरम गाथा है, जिसमें त्याग, प्रेम, उत्साह और गौरवमय मर्यादा का सुन्दर प्रस्तुतिकरण है।

आल्हा मात्रिक छन्द, सवैया,सोलह-पन्द्रह यति अनिवार्य।

गुरु-लघु चरण अन्त में रखिये, सिर्फ वीरता हो स्वीकार्य।

अलंकार अतिशयताकारक, करे राई को तुरत पहाड़।

ज्यों मिमयाती बकरी सोचे, गुँजा रही वन लगा दहाड़।

बुंदेलखंड की वीर भूमि महोबा और आल्हा एक दूसरे के पर्याय हैं। महोबा की सवेरा आल्हा से प्रारंभ हो उसी में समाप्त होता है । बुंदेलखंड का जन-जन आज भी जोश ओर हर्षोल्लास के साथ गाता है-

"बुंदेलखंड की सुनो कहानी बुंदेलों की बानी में,

पानीदार यहां का घोडा, आग यहां के पानी में।"

महोबा के ढेर सारे स्मारक आज भी आल्हा और ऊदल वीरों की याद दिलाते हैं। सामाजिक संस्कार आल्हा की गायन के बिना पूर्ण नहीं होता। आल्हा का व्यक्तित्व ही कुछ ऐसा था कि 800 वर्षो के बीत जाने के बावजूद वह आज भी बुंदेलखंड के प्राण स्वरूप हैं ।

रन में दपक -दप बोले तलवार,

पनपन-पनपन तीर बोलत है,
कहकह कहे अगिनिया बाण,

जगनिक (1250) कालिंजर के चंदेल राजा परमाल (1165-1203 ई.) का भाट था। इसने परमाल के सामंत और सहायक महोबा के आल्हा और ऊदल को नायक मानकर 'आल्ह खण्ड' नामक ग्रंथ की रचना की जिसे लोकमानस में 'आल्हा' नाम से प्रसिध्दि मिली। इसे जनता ने अपनाया और उत्तर भारत में इसका इतना प्रचार हुआ कि धीरे-धीरे मूल काव्य संभवत: लुप्त हो गया। विभिन्न बोलियों में इसके भिन्न-भिन्न स्वरूप मिलते हैं। अनुमान है कि मूलग्रंथ बहुत बड़ा रहा होगा। 1865 ई. में फर्रूखाबाद के कलक्टर सर चार्ल्स इलियट ने 'आल्ह खण्ड' नाम से इसका संग्रह कराया जिसमें कन्नौजी भाषा की बहुलता है। 'आल्ह खण्ड' जन समूह की निधि है। जिसने रचना काल से लेकर आज तक भारतीयों के हृदय में साहस और त्याग का मंत्र फूँका।

बारह बरिस लै कूकर जीऐं ,औ तेरह लौ जिऐं सियार,

बरिस अठारह छत्री जिऐं, आगे जीवन को धिक्कार,

वीर रस से भरे हुए ये आल्हा लोक गीत बुंदेलखंड का अभिमान और पहचान भी। ढोलक, झांझड़ और मंजीरे की संगत में आल्हा गायक तलवार चलाते हुए जब ऊंची आवाज़ में आल्हा गाते हैं, तो माहौल जोश से भर जाता है।

जा दिन जनम भयौ आल्हा का धरती धंसी अढ़ाई हांथ।

ये गीत कई सदियों से बुंदेलखंड की संस्कृति का हिस्सा रहे हैं। आल्हा और ऊदल, चन्देल राजा परमल के सेनापति दसराज के पुत्र थे। वे बनाफर वंश के थे, जो कि चन्द्रवंशी क्षत्रिय होते है। मध्य-काल के आल्हा-ऊदल की गाथा क्षत्रिय शौर्य का प्रतीक है।

"अम्बर बेटा है जासर के अपना कटले बीर कटाय

जिन्ह के चलले धरती हीले डपटै गाछ झुराय

ओहि समन्तर रुदल पहुँचल बँगला में पहुँचल जाय

देखल सूरत रुदल के आल्हा मन में करे गुनान

देहिया देखें तोर धूमिल मुहवाँ देखों उदास"

आल्हा की उत्पत्ति बुंदेलखंड के महोबा जिले में हुई थी। यह लोकगीतों की एक विधा है। बुंदेलखंड के दो भाइयों (आल्हा और ऊदल) की वीरता की कहानियों का गेय रूप हैं। यह गीत बुंदेली, बघेली और अवधी भाषा में लिखे गए हैं, जो मुख्यरूप से उत्तरप्रदेश के बुंदेलखंड और बिहार व मध्यप्रदेश के कुछ इलाक़ों में गाए जाते है। दुर्भाग्य से आल्हा के गवैये अब सिमटते जा रहे हैं, न पहले जैसे बुंदेली देहात

रहे, न पहले जैसी चौमासे की बारिश, न वो कौतुहल, न वो उत्साह । हां, यादों का एक सिलसिला नदियाँ बन बरसते सावन में मचल उठता जरूर है। जिसकी फुहार में भीगकर विगत में लौटने जैसा प्रतीत होता है, जो बड़ा सुखमय लगता है।

"खट-खट-खट-खट तेगा बाजै। बोलै छपक-छपक तलवार।
चलै जुनब्बी औ गुजराती। ऊना चलै बिलायत क्यार॥
तेगा चटकैं बर्दवान के। कटि-कटि गिरैं सुघरुआ ज्वान।
पैदल के संग पैदल अभिरे। औ असवारन ते असवार॥
हौदा के संग हौदा मिलिगै। ऊपर पेशकब्ज की मार॥
कटि-कटि शीश गिरै धरनी में। उठि-उठि रूंड करै तलवार।"

आल्हा गायक पीर खां - मूसानगर, कालीसिंह और तांती सिंह ने - कानपुर , आल्हा गायकी का विकास किया। कानपुर के रामखिलावन मिश्र, उन्नाव के लल्लू राम बाजपेयी, हमीरपुर के काशीराम प्रसिद्ध आल्हा गायक हैं। श्री बच्चा सिंह द्वारा महोबा में आल्हा गायन प्रशिक्षण विद्यालय "जगनिक शोध संस्थान' द्वारा स्थापित किया गया है। उन्नाव के लालू बाजपेयी ने गायकी को प्रदर्शनकारी कला बनाया है। हिन्दी फ़िल्मों में भी आल्हा को स्थान दिया गया है। मंगल पान्डे, दबंग और ओंकारा इसका उदाहरण हैं।

चढ़ी पालकी मल्हना रानी, जगनेरी में पहुँची जाये।
गओ हरकारा जगनायक पै, जगनिक सो कही सुनाय।
मल्हना आई दरवाजे पै जल्दी चलो हमारे साथ।
जगनिक आये और द्वार पै मल्हना छाती लियो लगाय।
रो रो मल्हना बात सुनाई हम पै चढ़ै पिथौरा राय।
नगर महोबा उन धिरवा लओ फाटक बन्द दये करवाय।
विपत्ति हमारी मेटन के हित तुम आल्हा को ल्यावो मनाय।

म.प्र. आदिवासी लोक कला परिषद, भोपाल ने तीन वर्ष में आल्हा खण्ड के पैंतिस पाठों एकत्र कर संकलित किया है। सन् १९९३ में आल्हा गायकी की चार शैली - महोबा, दतिया, सागर और नरसिंहपुर गायकों में प्रचलित पाई गई। इनके द्वारा गाये १४ युद्धों का संकलन तैयार किया गया। दतिया गायकी के प्रणेता स्व. श्री गंगोले थे। उन्होंने गायकी को शास्त्रीय संगत का पुट दिया। गायकी की शैली के दूसरे चरण में २१ ऐतिहासिक लड़ाइयों का प्रस्तुतिकरण हो गया है। भोजपुर, बिहार - क्षेत्र में आल्हा अत्यन्त लोकप्रिय वीर रस प्रधान लोक गाथा है। छिन्वाड़ा म.प्र. में आल्हा-ऊदल माहिल आदि की सवारियां घोड़ों पर कजलियों के मेले के अवसर पर निकलती है तब आल्हा का गायन सामूहिक रुप से किया जाता है।

पं० ललिता प्रसाद मिश्र ने अपने ग्रन्थ 'आल्हखण्ड की भूमिका' में आल्हा को युधिष्ठिर और ऊदल को भीम का साक्षात अवतार बताते हुए लिखा है - "यह दोनों वीर अवतारी होने के कारण अतुल पराक्रमी थे। ये प्राय: 12वीं विक्रमीय शताब्दी में पैदा हुए और 13वीं शताब्दी के पुर्वार्द्ध तक अतुलनीय पराक्रम दिखाते हुए वीरगति को प्राप्त हो गये। 12वीं सदी में राजा पृथ्वीराज चौहान से अपनी मातृभूमि को बचाने के लिए दोनों भाई वीरता से लड़े थे । हालांकि इस लड़ाई में आल्हा और ऊदल की हार हुई, लेकिन बुंदेलखंड में इन दोनों की वीरता के किस्से अब भी सुनने को मिल जाते हैं।

"परे दुशाला जो लो में जनु नद्दी में परो सिवार।
पगिया डारी जे लोहु में। मानो ताल फूल उतरायँ॥
परी शिरोही हैं ज्वानन की। मानो नाग रहे भन्नाय।
घैहा डारे रण में लोटैं। जिनके प्यास-प्यास रट लागि॥
मुर्चन-मुर्चन नचै बेंदुला। ऊदनि कहै पुकारि-पुकारि॥
नौकर चाकर तुम नाहीं हौ। तुम सब भैया लगौ हमार।
पाँव पिछाडी को ना धरियो। यारौ रखियो धर्म हमार॥
सन्मुख लडिकै जो मरि जैहो। होइहै जुगन-जुगन लौं नाम।
दै-दै पानी रजपूतन को। ऊदनि आगे दियो बढाय॥
झुके सिपाही महुबे वारे। जिनके मार-मार रट लागि।
यहाँ कि बातैं तो यहाँ छोडो। अब आगे के सुनो हवाल॥
लाखिन बोले पृथीराज ते। तुम सुनि लेउ वीर चौहान।
है कोउ क्षत्री तुम्हारे दल में। सन्मुख लडै हमारे साथ॥"

राजा ऊदल ने अपनी मातृभूमि की रक्षा हेतु पृथ्वीराज चौहान से युद्ध करते हुए वीरगति प्राप्त की । जब आल्हा को अपने छोटे भाई की वीरगति की खबर सुनाई दी तो वो अपना आपा खो बैठे और पृथ्वीराज चौहान की सेना पर मौत बनकर टूट पड़े। आल्हा के सामने जो आया मारा गया एक घण्टे के घनघोर युद्ध के बाद पृथ्वीराज और आल्हा आमने-सामने थे दोनों में भीषण युद्ध हुआ, पृथ्वीराज चौहान बुरी तरह घायल हुए। अंत में गुरु गोरखनाथ के कहने पर आल्हा ने पृथ्वीराज चौहान को जीवनदान दिया और उस महायोद्धा आल्हा ने नाथ पन्थ स्वीकार कर लिया। यह भी माना जाता है कि मां के परम भक्त आल्हा को मां शारदा का आशीर्वाद प्राप्त था, अत: पृथ्वीराज चौहान की सेना को पीछे हटना पड़ा था। मां के आदेशानुसार आल्हा ने अपनी तलवार (हथियार) शारदा मंदिर पर चढ़ाकर नोक टेढ़ी कर दी थी जिसे आज तक कोई सीधा नहीं कर पाया है। मंदिर परिसर में आज भी तमाम ऐतिहासिक महत्व के अवशेष संग्रहित हैं जो आल्हा और पृथ्वीराज चौहान के युध्द की साक्षी हैं।

मान्यता यह भी है कि शारदा मां ने आल्हा को उनकी भक्ति और वीरता से प्रसन्न होकर अमरता का

वरदान दिया था। जन आस्था की बात करे तो आज भी रात आठ बजे मंदिर की आरती के बाद साफ-सफाई होती है और फिर मंदिर के सभी कपाट बंद कर दिए जाते हैं। इसके बावजूद जब सुबह मंदिर को पुन: खोला जाता है तो मंदिर में मां की प्रतिमा पर पूजा के पुष्प समर्पित मिलते हैं। व्याप्त भावना के अनुसार माता शारदा के दर्शन हर दिन सबसे पहले आल्हा और ऊदल ही करते हैं।

हिंदी क्षेत्र के लोकमानस में आल्हा कितने गहरे उतरा है, इसका अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि 1914-18 और 1939-45 के पहले और दूसरे विश्व युद्ध में अंग्रेजों ने सैनिकों में उत्साह भरने के लिए छावनियों में आल्हा कार्यक्रम आयोजित कराए जाते थे । यही नहीं प्रचीन समय में पुलिस की पासिंग आउट परेड में भी जवानों में वीरता और कर्तव्यपरायणता के लिए आल्हा सुनाया जाता रहा। आल्हा हिंदी क्षेत्र की अमूल्य धरोहर है, लेकिन विदेशी विद्वानों ने भारतीय लेखकों से पहले ही इस पर काम शुरू कर दिया था। हिंदी के प्रसिद्ध ब्रिटिश मूल के लेखक ग्रियर्सन ने आल्हा की लोकप्रियता को देखते हुए इसके कई खंडों का अंग्रेजी में अनुवाद कराया था। इनमें 'मारू फ्यूड' यानी 'माड़ो की लड़ाई' और 'नाइन लैख चेन' यानी 'नौलखा हार की लड़ाई' जैसे खंड विशेषतौर पर उल्लेखनीय है। यही नहीं अमेरिकी रिसर्चर डॉ. केरिन शोमर ने तो आल्हा की यशोगाथा की तुलना में यूरोप में ओजस्वी कवि होमर द्वारा रचित 'इलियड और ओडिसी' के समकक्ष स्थान दिया है। ग्रियर्सन द्वारा 'ब्रह्म का विवाह' खंड का अंग्रेजी अनुवाद 'द ले ऑफ ब्रह्मज मैरिज: एन एपिसोड ऑफ द आल्हखंड' आज भी उपलब्ध है। ग्रियर्सन ने इसकी भूमिका में लिखा है कि महोबा, कानपुर उन्नाव, झांसी, पटना से लेकर दिल्ली तक आल्हा से अधिक कोई भी कहानी जनमानस में इतनी व्याप्त नही है। आम मान्यता है कि गंगा दशहरा से लेकर दशहरे तक यानी बरसात के मौसम में इसका गायन किया जाता है। इसके लिए कहा भी जाता है कि-

'भरी दुपहरी सरवन गाइय, सोरठ गाइये आधी रात।
आल्हा पंवाड़ा वा दिन गाइय, जा दिन झड़ी लगे बरसात।'

छत्रपति शिवाजी की तरह था आल्हा का सामाजिक न्याय। आल्हा और ऊदल का स्तुतिगान भले ही योद्धा के तौर पर किया गया है, लेकिन जातियों से परे समूचे समाज के लिए आल्हा का नायक होना शायद इसलिए भी संभव हो पाया था क्योंकि वे शिवाजी के समान समावेशी सेनापति थे। जैसे महाराष्ट्र समेत देश भर में हिंदवी साम्राज्य की स्थापना कर जननायक बने शिवाजी। उनके राज्य और सेना में सभी वर्गों का महत्व था। वैसी ही नीति आल्हा की भी थी। 'आल्ह खंड' के मुताबिक, उनकी सेना में लला तमोली, धनुवा तेली, रूपन बारी, चंदर बढ़ई, हल्ला, देबा पंडित जैसे लोग सेना के मार्गदर्शक थे। आल्हखंड की पंक्तियां इसका प्रमाण हैं-

'मदन गड़रिया धन्ना गूलर आगे बढ़े वीर सुलखान,
रूपन बारी खुनखुन तेली इनके आगे बचे न प्रान।
लला तमोली धनुवां तेली रन में कबहुं न मानी हार,
भगे सिपाही गढ़ माड़ौ के अपनी छोड़-छोड़ तलवार।।'

जिस समय आल्हा और उदल जैसे पराक्रमी मानव धरा पर अवतरित हुए हो उस शताब्दी को वीरों की सदी कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी । इन अलौकिक वीरगाथाओं को सुनकर सामान्य व्यक्ति जोश में भर अनेक साहसिक काम कर डालते हैं। मध्य-काल में आल्हा-ऊदल की गाथा क्षत्रिय शौर्य का प्रतीक दर्शाती है।

संदर्भ:

1 - मिश्र, पं० ललिता प्रसाद (2007). आल्हखण्ड (15 संस्करण). पोस्ट बॉक्स 85 लखनऊ 226001: तेजकुमार बुक डिपो (प्रा०) लि०. पृ॰ 1-11 (महोबे का इतिहास). पाठ "आल्हा ने 52 लड़ाईयां लडी और जीती कभी कोई आल्हा को नहीं हरा सके " ।

2 - विकिपीडिया।

3 - कविता कोश - भारतीय काव्य का विशालतम एवं अव्यवसायिक संकलन

4 - जगनिक का आल्हा खण्ड / शब्द शिल्पी

5 - आल्हा की वीरता की कहानी सुनने के बाद अपने आप फड़कने लगेगी बाहें। www भास्कर. कॉम

काव्य

दया भट्ट

खटीमा (उत्तराखंड)

"यत्न "

मेरा यत्न है
मैं इंसानियत की मृत्यु से पहले
इन्सान् के भीतर की शब्दशून्यता तक
पहुंचना चाहती हूं !
मेरी जिह्वा चोट करती रहे
मैं उसे सुनना चाहती हूँ !
मैं अंतर से अनहद को
छुना चाहती हूँ !
लक्ष्य लक्ष्य पीड़ाएं
गात सहती रहूँ
क्षण क्षण विभूति बनती रहूं
मैं मन से एकदम मौन,
आत्मा से ईश्वर
हो जाना चाहती हूं...

शैलेन्द्र चौहान

प्रसिद्ध साहित्यकार , प्रमुख कविता संग्रह (नौ रुपए बीस पैसे के लिए ,और कितने प्रकाश वर्ष ,ईश्वर की चौखट पर) कहानी संग्रह (नहीं यह कोई कहानी नहीं) धरती पत्रिका का सम्पादन

34/242, सेक्टर-3, प्रतापनगर, जयपुर-302033 मो. 772793622

"यायावर मैं"

घुमक्कड़ी -1

मैने अपने जीवन में पहला बड़ा शहर जो देखा वह था आगरा। आगरा में भी आगरा फोर्ट से लेकर आगरा कैंट तक रिक्शा यात्रा जो मेरी स्मरण रखने की उम्र से भी पहले की घटना है। वर्ष में एक या दो बार गाँव से विदिशा और विदिशा से गाँव आते जाते वक्त हम आगरा से गुजरते थे। आगरा घूमना एक अरसे तक संभव नहीं हो पाया। बहरहाल, जो पहला शहर थोड़ा बहुत घूमकर देखा उसकी कोई खास स्मृति मनस्पटल पर अंकित नहीं हो सकी।

सन 1965 में पिता विदिशा जिले के सीहोरा नामक गाँव में ट्रांसफर होकर आए तब मैं ग्यारह वर्ष का था और सातवीं कक्षा पास कर चुका था। आठवीं में एडमिशन लेना था। सीहोरा से लगा हुआ एक कस्बेनुमा गाँव था मंडी बामोरा। वह सागर जिले में पड़ता था। वह□ हायर सेकंडरी स्कूल था। वहां मेरा एडमिशन करा दिया गया। स्कूल आरंभ में सीमा पर ही था एक डेढ़ कि मी। स्कूल जाना प्रारंभ हो गया। शाम बामोरा रेलवे स्टेशन पिता और उनके साथी दो एक शिक्षकों के साथ घूमने जाना होता था। महीने में कभी एक कभी दौ बार शनिवार या रविवार के दिन बीना सिनेमा देखने जाते थे। पिता स्कूल में हेडमास्टर हुआ करते थे। उनके साथ आसपास के कुछ अन्य गाँवों के छोटे स्कूल भी जुड़े होते थे। वहाँ के शिक्षक भी आते रहते थे। किसी एक गाँव में एक शिक्षक थे गुप्ता जी। उनके भाई भोपाल में बीएच ई एल में टेकनीशियन थे और जीजा जी सांची हायर सेकंडरी स्कूल में प्रिंसिपल। एक दिन किन्हीं छुट्टियों में गुप्ता जी ने पिता से कहा माट साहब शैलेन्द्र को भोपाल घुमा लाता है। मुझसे पूछा मैं भी तैयार हो गया। बड़ा शहर था भोपाल। म प्र की राजधानी। हालांकि तब तक मुझे बहुत कुछ समझता अमझता नहीं था। खैर गुप्ता जी के साथ पहले सांची पहुंचे। उनके जीजा जी के दो बच्चे थे एक लड़का एक लड़की। हम उम्र जैसे ही थे। दो एक दिन वहाँ रुके। खेले और खाए। फिर भोपाल पहुंचे। उनके जीजा जी का लड़का भी साथ आया। अच्छा लगा। बी एच ई एल टाउनशिप में एक ब्लॉक मे दूसरी मंजिल पर उनके भाई रहते थे। चार-पाँच दिन वहाँ रुके। क्या घूमे, कहां कहां गये। कुछ याद नहीं। बस भोपाल मे कुछ देख लिया यानि भोपाल देख लिया। वापस बामोरा लौट आए। दो वर्ष वहां रहे। नौवीं पास करने के बाद विदिशा आ गए। पिता ने ट्रांसफर ले लिया था। दसवीं में बॉयज मल्टीपरपज हायर सेकंडरी स्कूल में एडमिशन लिया और नंदवाना मोहल्ले में घर। मंडी बामोरा में मेरा सहपाठी पुरुषोत्तम कुछ वर्षों बाद पुनः विदिशा में मिल गया। उसके पिता रेलवे में थे। दसवीं की परीक्षा देने के बाद इस बार मैं रिश्ते के मामा जो वहां पुलिस में थे उनके साथ गाँव आ गया। अब दो महीने की छुट्टियां थीं। गाँव में रहना बोरियत भरा था अतः ननिहाल चला आया। ननिहाल में मेरे हम उम्र और बराबर की कक्षा में पढ़ने वाले चार मामा थे। उनके साथ खेलने में समय अच्छा बीतता था। बड़ा परिवार था। वहाँ से एक मामा के मामा जो कानपुर में रेलवे में कार्यरत थे और फतेहपुर के रहने वाले थे उनके यहां कोई कार्यक्रम था अतः कानपुर जाने का तय हुआ। उरई से ट्रेन पकड़कर कानपुर पहुंचे। रेलवे कॉलोनी में ही वह रहते थे। दो एक दिन कानपुर घूमे। एक दिन गंगा में नहाने का आनंद लिया। और मजा ऐसा कि डूबते डूबते बचा। मुझे तैरना नहीं आता। मैं जिस जगह नदी में नहाने उतरा वहाँ कटाव था। मेरे नीचे जमीन कटी हुई थी। मामा तैरते हुए थोड़ी दूर चले गए थे। आसपास कोई नहीं था। मैं डूबने लगा। बहाव भी तेज था। मैं चिल्लाया पर किसी ने सुना नहीं। मैने भरपूर हाथ पैर मारना शुरू किया और थोड़ी जद्दोजहद के बाद पाँव तले जमीन आ ही गई। पूरा जोर लगाकर मैं घाट पर वापस आ गया। मेरी हालत देखने लायक अवश्य रही होगी।

घुमक्कड़ी...2

वो दिन थे जब पढ़ना एक ऐसी जरूरत थी जिसके बाद नौकरी मिलने की उम्मीद बंधाई जाती थी। घर वालों की आशाएं, आकांक्षाएं आपकी संभावित नौकरी पर टिकी होती थीं। नौकरी लग जाएगी तो कुछ आर्थिक सहयोग हो सकेगा। इसके लिए कुछ न कुछ योग्यता, डिग्री वगैरह होनी चाहिए। वैसे हाई स्कूल उर्फ मैट्रिक से लेकर स्नातक होने तक कुछ न कुछ संभावनाएं अवश्य दिखती थीं। तो अब मैने हायर सेकंडरी पास कर ली थी। और पंद्रह वर्ष का हो गया था। पिता अब मुझे ताने दिया करते थे। कब तक मुफ्त की तोड़ते रहोगे कुछ कमाओ खाओ। मैं जब तुम्हारी उम्र का था तो कमाने लगा था। मैट्रिक पास करने के बाद नौकरी कर ली थी। वह प्रायमरी स्कूल मास्टर हो गए थे। हालांकि उन्होंने मैट्रिक सत्रह-अठारह की उम्र में पास की होगी। उनके पिता जीवित नहीं थे। मामा स्टेट पीरियड में पी डब्लू डी में असिस्टेंट इंजीनियर थे। उन्होंने नौकरी लगवा दी थी। ।

उनका रुतबा था। तब पढ़ना लिखना बहुत आम भी नहीं था। अब तो बहुत लोग पढ़ रहे थे। फिर मैं पंद्रह वर्ष का ही था। क्या नौकरी मिलती ! मजदूरी की जा सकती थी। खैर, एक तरफ वह ताने मारते थे दूसरी ओर वह यह भी उम्मीद रखते थे कि अच्छा पढ़ जाऊंगा तो अच्छी नौकरी मिल जायेगी। और तीसरी बात यह थी कि इस उम्र तक मुझसे घर का या जिम्मेदारी का कोई काम नहीं कराया जाता था। माँ जब गाँव पर रहती थीं तो घर का और मेरा सारा काम पिता ही करते थे। तो मैं ऐसा कुछ कर सकता था इस बारे में मुझमें आत्मविश्वास बिल्कुल भी नहीं था जब तक कि बिल्कुल सड़क पर छोड़ न दिया जाऊं।

हायर सेकंडरी पास करने के बाद स्थानीय जैन कॉलेज में बीएससी प्रथम वर्ष में मेरा एडमीशन करा दिया गया। मैं कॉलेज जाने लगा। अब छुट्टियों में मैने अकेले गाँव जाना शुरू कर दिया था। इस बार जब मैं गाँव पहुंचा तो ननिहाल से किसी शादी का निमंत्रण आया हुआ था। पिता विदिशा में ही थे। माँ शादी-ब्याह में तभी जाती थीं जब उन्हें कोई लेने आता था। माँ बोलीं तुम चले जाओ। यूं गाँव के शादी-ब्याह में जाना मुझे कतई पसंद नहीं था लेकिन ननिहाल का मामला था इसलिए जाना जरूरी था। मैं चला आया। ननिहाल पहुंच कर हमउम्र मामाओं से भेंट हो गई। बहुत से संबंधियों से मुलाकात हुई। विवाह में बहुत लोग आए हुए थे। विवाह संपन्न हो गया । लोग वापस लौटने लगे। उस समय तुरत आना और तुरत लौटना नहीं होता था। हफ्ता-दस दिन पहले लोग पहुंच जाते थे और बहुधा इतना ही बाद में रुककर वापस लौटते थे। इस बार मेरी मुलाकात भिंड जिले में ब्याही एक मौसी के बेटे राजेश से हुई। उसने भी उस वर्ष हायर सेकंडरी पास की थी और बीएससी में एडमीशन लिया था। उसका ध्येय मेडिकल में जाने का था। हमारी अच्छी मित्रता हो गई थी। विवाह के बाद सब खाली खाली सा हो गया। राजेश गवालियर जाना चाहता था पर अकेले नहीं साथ में मुझे भी ले जाना चाहता था। उसके ताऊ जो मेहगाँव से विधायक थे उनका गवालियर में मकान था और उनका परिवार वहाँ रहता था। ताऊ जी 'बाबा' के नाम से जाने जाते थे। उनका पूरा नाम रायसिंह भदौरिया था। संभवतः 1967 में भारतीय जनसंघ से एम एल ए बने थे। अच्छे सामाजिक कार्यकर्ता भी थे और अपने क्षेत्र में अच्छा नाम था। दिक्कत यह थी कि राजेश बिना किसी को बताए गवालियर जाना चाहता था। कारण क्या था मुझे याद नहीं । मैं यह बिल्कुल अच्छा नहीं मानता था। बहरहाल तय यह हुआ कि जाते समय जो रास्ते में दिखेगा उसे बता दिया जायेगा। मेरे पास कुछ पैसे थे, राजेश के पास भी थे। उसका परिवार आर्थिक रूप से अधिक संपन्न था। यूं पिता उसके भी शिक्षक थे। सुबह हम लोग निकले और उरई, झांसी होते हुए शाम तक गवालियर लगे। स्टेशन से टैंपो पकड़ कर जयेंद्रगंज पहुंचे। मुख्य सड़क पर ही बाबा का मकान था। मकान पुरानी स्टायल का दुमंजिला था। दो-तीन तरफ कमरे बीच में छोटा आंगन। ऊपर उनका परिवार, बेटे बहू रहते थे। राजेश के पहुंचने से लोग खुश हुए। खाना खाकर हम लोग एक कमरे में रुक गए। सुबह से हम लोग घूमने निकल लिए कुछ टैंपो सवारी ज्यादातर पैदल। दो दिनों में लश्कर और गवालियर काफी कुछ घूम लिया गया। बाड़ा, किला, छतरियां, महल, फूलबाग, मोती झील, ज़ू, पुरातत्व संग्रहालय और कला वीथिका उर्फ आर्ट गैलरी। पुरातत्व संग्रहालय विदिशा और सांची में देखा था लेकिन आर्ट गैलरी देख कर कुछ नया अनुभव हुआ। तानसेन का मकबरा संभवतः छूट गया था। रीगल होटल में शास्त्रीय संगीत नीचे बिछे गद्दों पर बैठकर सुनना भी रोमांचित करने वाला था। इतना सब कुछ एक साथ पहली बार देखा था। यह आश्चर्यजनक था। जाहिर है यह सब राजेश की वजह से ही संभव हुआ था। राजेश किस काम से या उद्देश्य से गवालियर आया था यह ध्यान नहीं। उसकी रुचियां कला-संस्कृति की ओर झुकी थीं यह भी नहीं लगा पर वह व्यवहार कुशल और एक्स्ट्रोवर्ट था। यद्दपि एक अपराधबोध था। लेकिन मेरे अनुभव और ज्ञान में भारी इज़ाफा हुआ था। हम लोग अगली सुबह वापस ननिहाल लौट लिए। ननिहाल पहुंच कर दो दिन तक खूब डांट-फटकार सुनी। और फिर स्थिति सामान्य होने पर मैं गाँव लौट आया। उसके बाद राजेश से पुनः भेंट नहीं हुई।

घुमक्कड़ी -3

मुझे हिमालय ने सदैव आकर्षित किया है और उन पर्यटक स्थलों ने भी जिनकी ख्याति और विकास अंग्रेजों के पहाड़ प्रेम के चलते रही जिसमें ठंडे मौसम की चाहत स्वतः छुपी हुई थी। बचपन से लेकर युवावस्था तक हमारी आर्थिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि गर्मियों में हिलस्टेशन घूमने का लुत्फ लिया जा सके। अलबत्ता साहित्यिक रुचि और मन दोनों इतने सक्षम रहे कि मैं सदैव देश ही नहीं विदेश के भी पहाड़ी और समुद्री स्थलों की मनमाफिक सैर करता रहा। 'तुम तुंग हिमालय-श्रंग मैं चंचल गति सुर- सरिता...' । छायावाद के शिखर निराला, प्रसाद और पंत हृदय के बहुत निकट थे। हिमालय का प्रथम दर्शन बीस वर्ष की उम्र में कुछ इस तरह हुआ कि इंजीनियरिंग की पढ़ाई के दौरान एजुकेशनल इंडस्ट्री टूर में जाना हुआ। जैसे तैसे पैसों की व्यवस्था हो सकी। सहपाठी मनोबल बढ़ाने वाले ठहरे। टूर था दिल्ली और आसपास की बिजली वाली इंडस्ट्रीज, हरयाणा, पंजाब और भाखड़ा नंगल जल विद्युत केंद्र। विदिशा से शाम को ट्रेन में बैठे सुबह दिल्ली पहुंच गए। पहाड़गंज की तरफ उतरे । प्लेटफॉर्म पर फ्रेश हुए। हमारे साथ थे हमारे प्रिय प्रोफेसर एस के पुरोहित जो हमें इलेक्ट्रिकल पावर जेनरेशन पढ़ाते थे। उन्हें सुनाई नहीं देता था पर हम क्या बोल रहे हैं वह हमारे होंठों की क्रिया देखकर अच्छी तरह समझ लेते थे। वह दो एक लड़कों के साथ हमारे ठहरने के लिए धर्मशाला देखने चले गए। लौटकर आए तो हम लोग उनके साथ चले और सिटी बस पकड़कर करोल बाग के आसपास कहीं पहुंच गए। ठीक से याद नहीं है। वहाँ बाहर कुछ नाश्ता करके टूर के

लिए निकल पड़े। दिल्ली मैं दूसरी बार आया था। पहली बार सन 1972 में एशिया 72 मेला देखने अपने प्रथम वर्ष के सहपाठियों के साथ। बहरहाल दो दिन दिल्ली में रुके। एक दिन बदरपुर पावर प्लांट और फरीदाबाद की बिजली के सामान बनाने वाली फैक्ट्री देखीं दूसरे दिन नारायणा इंडस्ट्रियल एरिया वाली। उसके बाद रात की ट्रेन से हम भाखड़ा के लिए रवाना हुए। रात तो रास्ता पता नहीं चला पर सुबह पंजाब का रुपहला सूरज दिखाई दिया। ट्रेन खाली जैसी ही थी। थोड़े ही यात्री थे। उनकी पंजाबी सुनकर आंनद आ रहा था। कुछ समय बाद हम नंगल डैम स्टेशन पहुंच गए। और उसके बाद डैम तथा पावर प्लांट। बहुत अच्छा लग रहा था। तकनीकी पक्ष के अतिरिक्त भौगोलिक ज्ञान और प्राकृतिक सुषमा। हिमालय के छूने का सुख और उत्तेजना। ये फुट हिल्स थीं। शाम की ट्रेन से अम्बाला होते हुए सुबह हम चंडीगढ़ पहुंच गए। वहाँ पंचायती भवन धर्मशाला में दो दिन ठहरे। आसपास की पंजाब की औद्योगिक इकाइयां देखीं। तीसरे दिन अधिकतर सहपाठी शिमला चले गए। मैं अपने मित्र चंदर प्रकाश कुमार जो वहीं का रहने वाला था उसके घर पर ठहर गया। अतिरिक्त पैसे नहीं थे मेरे पास। वह फिजिक्स से एम एस सी करके इंजीनियरिंग में पढ़ने आया था। यद्पि शिमला न देख पाने का एक मलाल रहा। लेकिन अभी तो प्रारंभ था। भविष्य तो बहुत संभावनाएं लिए हुए था। अगले दिन वाया दिल्ली हम विदिशा लौट लिए।

भटकन -1

मेरी कभी बहुत बड़े, प्रभावशाली, अमीर नामवर व्यक्तियों से निकटता नहीं रही। बहुत बड़े तो छोड़िए किसी तथाकथित बड़े व्यक्ति से भी संबंध नहीं रहे। मुझे संकोच भी होता था और यह भी लगता था कि मेरी इनके साथ संबंध निर्वाह की न क्षमता है, न दक्षता। और मानसिकता तो कतई नहीं। राजनीति, व्यवसाय, नौकरी में भी कभी किसी क्षेत्र में मैने अपनी तरफ से ऐसी कोशिश नहीं की। यद्यपि रुचि मेरी साहित्यिक रही लेकिन किसी बड़ी पत्रिका, अखबार, प्रकाशन, मीडिया के मुख्य लौगों से भी परिचय नहीं रहा। मैने जब लिखना शुरू किया तब प्रिंट मीडिया ही प्रभावशाली था और बड़े अखबार और पत्रिकाएं दिल्ली, बंबई जैसे महानगरों से निकलते थे। कुछ प्रांतीय राजधानियों से। अतः उनके संपादकों और सहायकों से भी संपर्क में नहीं रहा। यदा कदा कुछ छपने भेजता था, स्वीकृत हुआ तो ठीक अन्यथा सखेद रचना वापस लौट आती थी। मैं उस समय की बड़ी और प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में विरले ही छपा। कुछ व्यक्तिगत प्रयासों से निकलने वाली अल्प संसाधनों वाली पत्रिकाओं से परिचय हुआ। उनमें रचनाएं भेजीं। फिर खुद भी 'धरती' नाम से ऐसी एक पत्रिका निकाली। इसके बाद परिचय का दायरा थोड़ा बढ़ा। कुछ सभा-सम्मेलनों में जाना भी हुआ। यहाँ भी बड़ों से मित्रता कम ही हुई बस परिचय हुआ। मेरी शुरुआत विदिशा से हुई । वहां हिंदी में डॉ विजय बहादुर सिंह एक बड़ा नाम थे। मुझे उनसे मिलने में संकोच होता था। यद्यपि डॉ विजय बहादुर सिंह बहुत खुले और व्यवहारकुशल व्यक्ति हैं लेकिन तब मुझे अपने अज्ञान की काफी चिंता रहती थी और उनके ज्ञान से लाभ लेने में अपने को अक्षम पाता था सो उस दौर में उनके संपर्क में भी अधिक नहीं रहा। अलबत्ता बाबा नागार्जुन को उनके मार्फत देखा सुना। हिंदी साहित्य का मैं औपचारिक विद्यार्थी नहीं था। मेरा पठन -पाठन पत्रिकाओं और पुस्तकालय वाला था वह भी पूरी तरह रुचि के हिसाब से। आपातकाल के बाद एक बार अलीगढ़ में जनवादी कहानी शिविर का आयोजन हुआ। उसमें नए-पुराने लेखकों से भेंट हुई। असल में मेरा झुकाव वामपंथी साहित्य की ओर था अतः यह एक प्रस्थान बिंदु जैसा ही था। यहाँ डॉ कुंअरपाल सिंह, नमिता सिंह, सव्यसाची, प्रदीप सक्सेना आदि वरिष्ठ साहित्यकारों के साथ अनेक युवा एवं समवयस्क रचनाकारों से भेंट हुई। उनमें से कुछ से मित्रता भी हुई। तब मैं इंजीनियरिंग के फायनल ईयर में रहा होऊंगा। मैने इंजीनियरिंग पास करके वहीं पॉलिटेक्निक में शिक्षक की नौकरी कर ली उन्हीं दिनों कॉलेज की बैंक वाली ब्रांच में नरेन्द्र जैन से भेंट हुई। लब्बोलुबाब यह कि न कभी अंधी दौड़ में मैं शामिल होने का सोचा न केरियरिज्म को उद्देश्य माना। जीवन बस ऐसी ही ऊंचे-नीचे ऊबड़खाबड़ पगडंडियों पर भटकता रहा।

भटकन-2

उन दिनों रचनाएं कलम से कागज पर लिखी जाती थीं और कुछ सुधार के बाद फेयर करके डाक से पत्र-पत्रिकाओं को भेजी जाती थीं। यह सन 1981-82 की बात है जब जयपुर से निकलने वाली एक लघु पत्रिका 'मधुमाधवी' के कहानी आलोचना अंक हेतु मुझसे आलेख मांगा गया। इस पत्रिका की संपादक सुश्री नलिनी उपाध्याय थीं। मेरा उनसे परिचय नहीं था। संभवतः 'धरती' के मधुमाधवी विनिमय के कारण हमारा परिचय रहा होगा। उन दिनों मैं नांदेड (महाराष्ट्र) में इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड में नौकरी करता था। तब कविताएं और कहानियां लिखता था। आलोचना में कोई गति नहीं थी। एक दो समीक्षाएं भर लिखी थीं। हां लघुपत्रिकाओं पर नागपुर से निकलने वाले साप्ताहिक पत्र 'नया खून' में टिप्पणियां किया करता था। उन दिनों विनायक कराडे तब कार्यकारी संपादक थे। कभी मुक्तिबोध इसका संपादन देखते थे। कहानियों पर आलेख लिखना मुश्किल लग रहा था पर सोचा कोशिश करता हूँ शायद कुछ बन जाये। 'धरती' के समकालीन कविता अंक के लोकार्पण के सिलसिले में नांदेड के मराठी साहित्यकारों से परिचय हुआ था जिनमें स्थानीय महाविद्यालय के प्राध्यापक भी थे। धरती के इस अंक का आश्चर्यजनक रूप से भव्य लोकार्पण हुआ था। यहाँ हिंदी विभाग भी था। हिंदी के विभागाध्यक्ष जोशी जी एक भले व्यक्ति थे। नाम मैं भूल रहा हूं। वहीं एक प्राध्यापक भा.ग. महामुनि थे। मराठी के एक बड़े आलोचक नरहरि कुरुंदकर

थे। वे नौकरी से अवकाश प्राप्त कर चुके थे। उनका प्रभामंडल घना था। उनसे बात होनी मुश्किल थी। मराठी साहित्य की मेरी जानकारी नगण्य ही थी। एक बहुत सहृदय और विद्वान इतिहासकार स रा गाडगील थे जिनकी मध्यकाल के संत साहित्य में वैचारिक उत्प्रेरण पर कई पुस्तकें थीं। उन्हें हिंदी नहीं आती थी लेकिन मुझसे बात करने के लिए उन्होंने हिंदी में बात करने का पूरा प्रयास किया। तो भा ग महामुनि ने आलेख लिखने में मेरा मनोबल बढ़ाया। और मैने लेख लिख लिया। मैं बहुत आश्वस्त नहीं था पर उसे डाक से भेज दिया गया। एकाध महीने बाद स्वीकृति भी प्राप्त हो गई। समय बीत चला। मैने वह नौकरी छोड़ने का मन बना लिया और एक दूसरे संस्थान में मुझे नौकरी मिली। पोस्टिंग इलाहबाद थी। मैं खुश था। मैने इस्तीफा दे दिया और एक माह बाद मुक्त होकर इलाहबाद पहुंच गया। मधुमाधवी की संपादक को मैने पत्र द्वारा सूचना दे दी कि नांदेड छोड़ दिया है। पत्रिका वहाँ न भिजवाएं। मैं मार्च 1982 में इलाहबाद पहुंचा। लघुपत्रिकाओं के प्रकाशन में अनेकानेक कारणों से बिलंब होता है। अतः यह अंक 1983 में ही मिल सका। इस वक्त तक धरती का त्रिलोचन अंक प्रकाशित हो चुका था और जयपुर में प्रलेस के राष्ट्रीय अधिवेशन में उसका विमोचन हुआ था। बहरहाल मधुमाधवी का कहानी आलोचना अंक मिला। उसमें अनेक महत्वपूर्ण साहित्यकार मौजूद थे। उन सबके बीच अपने लिखे हुए से मैं बहुत आश्वस्त नहीं हो पाया। और अभ्यास की जरूरत लगी।

भटकन - 3

"एक इलाहबाद मेरे भीतर"

आज भाई विनोद तिवारी द्वारा शिक्षक-आलोचक मित्र सत्यप्रकाश मिश्र को याद करने से मेरे मन में नौवें दशक का वह इलाहबाद जाग गया जिसमें संगम की तरह मैं कई वर्ष डूबा उतराया यद्दपि संगम का रुख नहीं किया। हां, 1976 में एक बार मैं आर्मी में अधिकारी बनने के लिए एस एस बी की परीक्षा देने गया था। इंजीनियरिंग फायनल ईयर की परीक्षाओं से पहले ही विज्ञापन निकला था और ये फॉर्म भरे गए थे और कुछ दिनों बाद ही टेस्ट एवं साक्षात्कार के लिए बुलावा आ गया था। वारंट (टिकिट) साथ में नत्थी था। विदिशा से मैने यात्रा शुरू की। इलाहबाद जंक्शन पर सेना का ट्रक मौजूद था जो हमें छावनी ले गया। और भी प्रतिभागी थे। वहां बैरक में छोटे छोटे कमरों में ठहरने की व्यवस्था थी। पांच दिन का पड़ाव था। तब वहां आए उम्मीदवारों के साथ संगम गया था और संगम तक नाव में सैर के बाद पंडों को चकमा देकर हम कैसे भागे थे वह याद है। तभी सिविल लाइंस घूमते हुए कॉफी हाऊस भी गए थे, मैं इस उम्मीद में कि शायद कोई नामी लेखक दिख जाए। आसपास लोकभारती सहित किताबों की दुकानें भी छानी थीं। कोई लेखक तो नहीं मिला पर कॉफी हाऊस में बैठ एक उत्सुकता और बेचैनी जरूर अनुभव की थी।

संगम और आनंद भवन के बाद बाकी शामें सिविल लाइंस के ही नाम रहीं। कानपुर के आगे पूर्वी उत्तर प्रदेश में यह मेरा पहला प्रवेश था। संयोग से इसके अगले वर्ष (1977) इसी क्रम में एयरफोर्स और आर्मी दोनों के टेस्ट केलिए बनारस देखना भी हुआ। सिलेक्शन कहीं नहीं हुआ। वहां एक इंस्ट्रक्टर का यह कमेंट मुझे अब तक याद है जो यूं ही अनौपचारिक रूप से मुझसे बात करने के बाद कहा गया था - योर एप्टीट्यूट डज नाट सूट्स फॉर आर्म्ड फोर्स सर्विसेज। यू शुड ट्राय फॉर सिविल सर्विसेज। ' यह बिल्कुल सही था, यह बात मुझे तब पता चली। खैर, तब तक मैं साहित्य खूब पढ़ता था, लिखना छिटपुट ही था। लेखकों की महत्वपूर्ण कर्मस्थली होने के कारण इलाहबाद का आकर्षण था। पर यह इलाहबाद आना इलाहबाद को छूने जैसा ही था। असल साक्षात्कार तो सन 1982 के मार्च महीने से शुरू हुआ जब मैं नांदेड से महाराष्ट्र बीज (विद्युत) मंडल की नौकरी छोड़ एक दक्षिण भारतीय कंपनी बेस्ट एंड क्रॉपटन इंजीनियरिंग लि.में यहां ज्वाइन कर लिया। चूंकि मैं 'धरती' निकालता था अतः इलाहबाद में मेरा दो लेखकों से पत्र व्यवहार था। ये थे विद्याधर शुक्ल और दूसरे शिवकुटी लाल वर्मा। तीसरे मटियानी जी थे जिनसे उनकी पत्रिका विकल्प में उनके संपादकीय को लेकर कुछ बात हुई थी। दोनों को मैने पत्र द्वारा सूचना दे दी थी कि अमुक तारीख को इलाहबाद पहुंच रहा हूँ। मार्च माह के प्रथम सप्ताह में मैं वहां पहुंच गया और जॉनसन (जॉन्सटन) गंज के एक होटल में ठहर गया। यह होटल शिवकुटी लाल जी ने बताया था। यह उनके घर से दिखाई देता था और उनके घर की छत (कोठा) मुझे होटल की दूसरी मंजिल से दिखाई देती थी। शाम का खाना उनके यहां खाने का आमंत्रण रहता। अॉफिस अलोपीबाग में था जो थोड़ा दूर था। रिक्शे से जाना होता था। चूंकि होली के ऐन दो-तीन दिन पहले पहुंचा था इसलिए होली की एक दो दिन की छुट्टी थी तो शिवकुटी लाल जी बोले होटल में अकेले पड़े क्या करोगे, होटल छोड़ो घर चलो। किराया बेकार में देने का कोई फायदा नहीं। अॉफिस के सहकर्मियों से मैने मकान ढूंढने के लिया कह दिया था शायद जल्दी ही मिल जाए, अतः शिवकुटी लाल जी के घर चला गया। होली, बाहर बहुत धूमधाम से मन रही थी। छत से हमलोग देख रहे थे। सामने चाहचंद में ही भाई प्रदीप सौरभ रहते थे। उनके यहां धूम थी। वे नाच गा रहे थे। रंभा हो रंभा गाना तेज तेज बज रहा था। यह होली शिवकुटी लाल जी के नाम रही। उनके घर में उनकी पत्नी और दो बेटे थे। होली की मिठाइयां और अन्य व्यंजन खाकर घर जैसा ही लग रहा था। उनके पास किताबें पर्याप्त थीं। बैठकर मलयज की डायरी पढ़ डाली। त्रिलोचन की धरती, गुलाब और बुलबुल और दिगंत देखकर मैं प्रसन्न हुआ। उन्हें पढ़ा। शैलेंद्र की चुनी हुई कविताएं तथा एक-दो और किताबें तथा पत्रिकाएं देखीं। उनसे लंबी साहित्य चर्चा हुई। वे वामपंथी नहीं थे इसलिए चर्चा में गरमाहट बनी रहती थी। लेकिन वह एक सहज और सज्जन व्यक्ति थे इसमें कोई संदेह नहीं था। विद्याधर जी भी एक बार होटल में

मिलकर गए थे। चारेक दिन बाद वे वहां फिर मिलने आए और खाने पर अपने घर ले गए। खूब बातें हुई। वे अक्सर व्यंजनात्मक शैली में बात करते थे। मजेदार छींटाकशी करते रहते थे, बहुत जिंदादिल व्यक्ति थे। इसके बाद उन्होंने निर्णय सुना दिया कल से यहीं रहोगे। चिरकुटी लाल (क्षमा याचना सहित) के यहां रहकर क्या करोगे, सड़ जाओगे। दूसरे दिन वे आए और बैग लेकर रिक्शे पर बैठ गए और हम उनके घर 72, पी बी कीटगंज पहुंच गए। बहुत प्रयत्नों के बाद भी मकान नहीं मिल पा रहा था सो करीब एक माह मैं उनके आतिथ्य में रहा

धड़कन

मेरी कभी बहुत बड़े, प्रभावशाली, अमीर नामवर व्यक्तियों से निकटता नहीं रही। बहुत बड़े तो छोड़िए किसी तथाकथित बड़े व्यक्ति से भी संबंध नहीं रहे। मुझे संकोच भी होता था और यह भी लगता था कि मेरी इनके साथ संबंध निर्वाह की न क्षमता है, न दक्षता। और मानसिकता तो कतई नहीं। राजनीति, व्यवसाय, नौकरी में भी कभी किसी क्षेत्र में मैने अपनी तरफ से ऐसी कोशिश नहीं की। यद्यपि रुचि मेरी साहित्यिक रही लेकिन किसी बड़ी पत्रिका, अखबार, प्रकाशन, मीडिया के मुख्य लौगों से भी परिचय नहीं रहा। मैने जब लिखना शुरू किया तब प्रिंट मीडिया ही प्रभावशाली था और बड़े अखबार और पत्रिकाएं दिल्ली, बंबई जैसे महानगरों से निकलते थे। कुछ प्रांतीय राजधानियों से। अतः उनके संपादकों और सहायकों से भी संपर्क में नहीं रहा। यदा कदा कुछ छपने भेजता था, स्वीकृत हुआ तो ठीक अन्यथा सखेद रचना वापस लौट आती थी। मैं उस समय की बड़ी और प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में विरले ही छपा। कुछ व्यक्तिगत प्रयासों से निकलने वाली अल्प संसाधनों वाली पत्रिकाओं से परिचय हुआ। उनमें रचनाएं भेजीं। फिर खुद भी 'धरती' नाम से ऐसी एक पत्रिका निकाली। इसके बाद परिचय का दायरा थोड़ा बढ़ा। कुछ सभा-सम्मेलनों में जाना भी हुआ। यहाँ भी बड़ों से मित्रता कम ही हुई बस परिचय हुआ। मेरी शुरुआत विदिशा से हुई । वहां हिंदी में डॉ विजय बहादुर सिंह एक बड़ा नाम थे। मुझे उनसे मिलने में संकोच होता था। यद्यपि डॉ विजय बहादुर सिंह बहुत खुले और व्यवहारकुशल व्यक्ति हैं लेकिन तब मुझे अपने अज्ञान की काफी चिंता रहती थी और उनके ज्ञान से लाभ लेने में अपने को अक्षम पाता था सो उस दौर में उनके संपर्क में भी अधिक नहीं रहा। अलबत्ता बाबा नागार्जुन को उनके मार्फत देखा सुना। हिंदी साहित्य का मैं औपचारिक विद्यार्थी नहीं था। मेरा पठन -पाठन पत्रिकाओं और पुस्तकालय वाला था वह भी पूरी तरह रुचि के हिसाब से। आपातकाल के बाद एक बार अलीगढ़ में जनवादी कहानी शिविर का आयोजन हुआ। उसमें नए-पुराने लेखकों से भेंट हुई। असल में मेरा झुकाव वामपंथी साहित्य की ओर था अतः यह एक प्रस्थान बिंदु जैसा ही था। यहाँ डॉ कुंअरपाल सिंह, नमिता सिंह, सव्यसाची, प्रदीप सक्सेना आदि वरिष्ठ साहित्यकारों के साथ अनेक युवा एवं समवयस्क रचनाकारों से भेंट हुई। उनमें से कुछ से मित्रता भी हुई। तब मैं इंजीनियरिंग के फायनल ईयर में रहा होऊंगा। मैने इंजीनियरिंग पास करके वहीं पॉलिटेक्निक में शिक्षक की नौकरी कर ली उन्हीं दिनों कॉलेज की बैंक वाली ब्रांच में नरेन्द्र जैन से भेंट हुई। लब्बोलुबाब यह कि न कभी अंधी दौड़ में मैं शामिल होने का सोचा न केरियरिज्म को उद्देश्य माना। जीवन बस ऐसी ही ऊंचे-नीचे ऊबड़खाबड़ पगडंडियों पर भटकता रहा।

सृजन संवाद

उन दिनों रचनाएं कलम से कागज पर लिखी जाती थीं और कुछ सुधार के बाद फेयर करके डाक से पत्र-पत्रिकाओं को भेजी जाती थीं। यह सन 1981-82 की बात है जब जयपुर से निकलने वाली एक लघु पत्रिका 'मधुमाधवी' के कहानी आलोचना अंक हेतु मुझसे आलेख मांगा गया। इस पत्रिका की संपादक सुश्री नलिनी उपाध्याय थीं । मेरा उनसे परिचय नहीं था। संभवतः 'धरती' के मधुमाधवी विनिमय के कारण हमारा परिचय रहा होगा। उन दिनों मैं नांदेड (महाराष्ट्र) में इलेक्ट्रिसिटी बोर्ड में नौकरी करता था। तब कविताएं और कहानियां लिखता था। आलोचना में कोई गति नहीं थी। एक दो समीक्षाएं भर लिखी थीं। हां लघुपत्रिकाओं पर नागपुर से निकलने वाले साप्ताहिक पत्र 'नया खून' में टिप्पणियां किया करता था। उन दिनों विनायक कराडे तब कार्यकारी संपादक थे। कभी मुक्तिबोध इसका संपादन देखते थे। कहानियों पर आलेख लिखना मुश्किल लग रहा था पर सोचा कोशिश करता हूँ शायद कुछ बन जाये। 'धरती' के समकालीन कविता अंक के लोकार्पण के सिलसिले में नांदेड के मराठी साहित्यकारों से परिचय हुआ था जिनमें स्थानीय महाविद्यालय के प्राध्यापक भी थे। धरती के इस अंक का आश्चर्यजनक रूप से भव्य लोकार्पण हुआ था। यहाँ हिंदी विभाग भी था। हिंदी के विभागाध्यक्ष जोशी जी एक भले व्यक्ति थे। नाम मैं भूल रहा हूं। वहीं एक प्राध्यापक भा.ग. महामुनि थे। मराठी के एक बड़े आलोचक नरहरि कुरुंदकर थे। वे नौकरी से अवकाश प्राप्त कर चुके थे। उनका प्रभामंडल घना था। उनसे बात होनी मुश्किल थी। मराठी साहित्य की मेरी जानकारी नगण्य ही थी। एक बहुत सहृदय और विद्वान इतिहासकार स रा गाडगील थे जिनकी मध्यकाल के संत साहित्य में वैचारिक उत्प्रेरण पर कई पुस्तकें थीं। उन्हें हिंदी नहीं आती थी लेकिन मुझसे बात करने के लिए उन्होंने हिंदी में बात करने का पूरा प्रयास किया। तो भा ग महामुनि ने आलेख लिखने में मेरा मनोबल बढ़ाया। और मैने लेख लिख लिया। मैं बहुत आश्वस्त नहीं था पर उसे डाक से भेज दिया गया। एकाध महीने बाद स्वीकृति भी प्राप्त हो गई। समय बीत चला। मैने वह नौकरी छोड़ने का मन बना लिया और एक दूसरे संस्थान में मुझे नौकरी मिली। पोस्टिंग इलाहबाद थी। मैं खुश था। मैने इस्तीफा दे दिया और एक माह बाद मुक्त होकर इलाहबाद पहुंच गया।

मधुमाधवी की संपादक को मैने पत्र द्वारा सूचना दे दी कि नांदेड छोड़ दिया है। पत्रिका वहाँ न भिजवाएं। मैं मार्च 1982 में इलाहबाद पहुंचा। लघुपत्रिकाओं के प्रकाशन में अनेकानेक कारणों से बिलंब होता है। अतः यह अंक 1983 में ही मिल सका। इस वक्त तक धरती का त्रिलोचन अंक प्रकाशित हो चुका था और जयपुर में प्रलेस के राष्ट्रीय अधिवेशन में उसका विमोचन हुआ था। बहरहाल मधुमाधवी का कहानी आलोचना अंक मिला। उसमें अनेक महत्वपूर्ण साहित्यकार मौजूद थे। उन सबके बीच अपने लिखे हुए से मैं बहुत आश्वस्त नहीं हो पाया। और अभ्यास की जरूरत लगी।

स्थानांतरण

मास्टर फिदा हुसैन 'नरसी'

सन 1988 की बात है। उन दिनों मेरी पोस्टिंग मुरादाबाद में थी। वह अक्टूबर का महीना था। तारीख शायद सोलह। कानपुर से शील जी आए हुए थे। जनवादी लेखक संघ, मुरादाबाद इकाई की ओर से उनके सम्मान में एक गोष्ठी बुलाई गई थी। उस गोष्ठी में शील जी, कवि-गीतकार माहेश्वर तिवारी, प्रो. धीरेन्द्र प्रताप सिंह, प्रो. मूलचंद गौतम, प्रो. वाचस्पति उपाध्याय, मास्टर फिदा हुसैन 'नरसी' एवं अन्य नाट्यकर्मी, (उस वक्त वहां नुक्कड़ नाटक करने वालों की एक बड़ी टीम थी) लेखक, पत्रकार, समाजसेवी तथा स्वतंत्रता संग्राम सेनानी उपस्थित थे। असल में जब लोग आने शुरू हुए तो थोड़ी देर बाद कुर्ता पायजामा पहने हुए एक लहीम-शहीम व्यक्ति का पदार्पण हुआ। लंबाई साढ़े छह फुट से ज्यादा ही होगी, शरीर भी स्वस्थ और व्यक्तित्व सौम्य। उनकी उम्र का अंदाजा लगा पाना मुश्किल था। वे उस वक्त 94 वर्ष के थे लेकिन साठ से ऊपर का सोच पाना मुश्किल था। सब लोगों ने उठकर उनका स्वागत किया। तब मुझे पता चला कि वे मास्टर फिदा हुसैन नरसी थे। एक सीबीआई अधिकारी और एक पुलिसकर्मी भी थे जो बहुधा हमारे कार्यक्रम में मित्रवत आ जाते थे। चूंकि कानपुर में मैं शील जी के करीब रहा था और उनके ऊपर 'धरती' पत्रिका का अंक निकालने की योजना थी (जो 1991 में कोटा में फलीभूत हो सकी), अतः गोष्ठी का संचालन मुझे सौंपा गया। अध्यक्षता माहेश्वर जी कर रहे थे। गोष्ठी हुई। शील जी का उद्बोधन बहुत महत्वपूर्ण था। पहले स्वतंत्रता आंदोलन के कुछ प्रसंगों की उन्होंने चर्चा की फिर अपनी कविताओं और नाटकों के बारे में विस्तार से बताया। विशेषकर अपने नाटक 'किसान' के बारे जिसके सोवियत संघ में सात सौ शो हुए। लेनिनग्राद यूनिवर्सिटी में भी खेला गया। नाटक का मंचन पृथ्वी थिएटर के बैनर पर किया गया था जिसके मालिक पृथ्वीराज कपूर थे। यह नाटक राष्ट्रपति भवन में खेला गया। कानपुर में एक माह तक नियमित इसका मंचन हुआ। शील जी के बाद हुसैन साहब ने पारसी थिएटर की भूमिका, सिनेमा पर उसका प्रभाव और आधुनिक रंगमंच के बारे में विस्तार से बताया। आगाहश्र कश्मीरी, नारायण प्रसाद बेताब, राधेश्याम कथावाचक, किशनचंद्र जेबा और तुलसीदत्त शैदा की चर्चा की। पारसी थिएटर के बारे में कम से कम मैं तो पहली बार परिचित हुआ। तब तक बस नाम भर सुना था। 11 मार्च 1894 को मुरादाबाद में जन्मे मास्टर फ़िदा हुसैन को पारसी थियेटर का बादशाह माना जाता था। पृथ्वीराज कपूर के थिएटर के उद्भव में पारसी थिएटर की ऐतिहासिक भूमिका थी। उसका प्रभाव बाद में शुरुआती दौर के सिनेमा तक कायम रहा, दिखता रहा।

अकार-59, शील जी के कुछ पत्र ज्ञानरंजन के नाम

1983 में 'धरती' का त्रिलोचन अंक प्रकाशित हुआ था उसमें शील जी की एक कविता 'उन्हें आवाज दो' प्रकाशित हुई थी। कविता कुछ यूं थी -

मुट्ठियां बांधकर उन्हें आवाज दो
उनके कानों तक आंखें हैं
और हैं तुम्हारी आवाज में उनकी धड़कनें
जिन्हें वे भोग रहे हैं
मुट्ठियां बांधकर उन्हें आवाज दो
वे सब लोग जिन्होंने कल शांति-कपोत उड़ाये थे
अब अरक्षित श्रम की सुरक्षा के लिए
विश्वक्रांति की आहट ले रहे हैं.....

सन 1984 में मैं इलाहबाद से कानपुर आ गया। मेरी पोस्टिंग कानपुर हो गई थी। 1989 तक वहां रहा। इस बीच पुरुषोत्तम वाजपेयी जी की मार्फत शील जी से भेंट हुई। वे किदवई नगर में 'के' ब्लॉक में रहते थे और मैं 'एच' ब्लॉक में। बहुत ज्यादा दूरी नहीं थी। यही कोई दो-ढाई कि.मी. रही होगी। प्रायः रविवार को मैं उनके घर जाता। वे केरोसीन वाले स्टोव पर चाय बनाकर पिलाते। साथ में नमकीन भी होता। उनकी दृष्टि कमजोर थी लेकिन वे खाना बना लेते थे और अन्य काम भी कर लेते थे। चाय पीते- पीते वे सिगरेट भी सुलगा लेते और बीते दिनों के राजनीतिक-साहित्यक संस्मरण तन्मयता से अकार-59, शील जी के कुछ पत्र ज्ञानरंजन के नाम

1983 में 'धरती' का त्रिलोचन अंक प्रकाशित हुआ था उसमें शील जी की एक कविता 'उन्हें आवाज दो' प्रकाशित हुई थी। कविता कुछ यूं थी - मुट्ठियां बांधकर उन्हें आवाज दो
उनके कानों तक आंखें हैं
और हैं तुम्हारी आवाज में उनकी धड़कनें
जिन्हें वे भोग रहे हैं
मुट्ठियां बांधकर उन्हें आवाज दो
वे सब लोग जिन्होंने कल शांति-कपोत उड़ाये थे
अब अरक्षित श्रम की सुरक्षा के लिए
विश्वक्रांति की आहट ले रहे हैं.....

सन 1984 में मैं इलाहबाद से कानपुर आ गया। मेरी पोस्टिंग कानपुर हो गई थी। 1989 तक वहां रहा। इस बीच पुरुषोत्तम वाजपेयी जी की मार्फत शील जी से भेंट हुई। वे किदवई नगर में 'के' ब्लॉक में रहते थे और मैं 'एच' ब्लॉक में। बहुत ज्यादा दूरी नहीं थी। यही कोई दो-ढाई कि.मी.

रही होगी। प्रायः रविवार को मैं उनके घर जाता। वे केरोसीन वाले स्टोव पर चाय बनाकर पिलाते। साथ में नमकीन भी होता। उनकी दृष्टि कमजोर थी लेकिन वे खाना बना लेते थे और अन्य काम भी कर लेते थे। चाय पीते- पीते वे सिगरेट भी सुलगा लेते और बीते दिनों के राजनीतिक-साहित्यक संस्मरण तन्मयता से सुनाते। अच्छा लगता। व्यक्तिगत जीवन की घटनाएं भी उनमें शामिल होतीं। जिस रविवार मैं न जा पाता उस दिन सायकल पर पैडल मारते हुए मेरे घर आ जाते। उन्होंने जीवन में जितना संघर्ष किया था और जितना साहित्य रचा था उसकी तुलना में उनपर बात कम हुई थी। इसका उन्हें मलाल था। उनके मार्फत मैने उनका अधिकांश साहित्य पढ़ लिया था। मुझे लगने लगा था कि उनके अवदान पर काम होना चाहिए। 1988 में मैने 'धरती' के एक अंक को उनपर केंद्रित करने की योजना बनाई। शील जी से सलाह मशविरा किया कि किस किससे लिखवाया जाए। उनकी सूची बनाई और सभी को पत्र लिखे। कई बार पत्र लिखे पर कोई रिस्पांस नहीं मिला। एक वर्ष बीत गया। सबका यही कहना था कि शील जी की किताबें उनके पास नहीं हैं और उन्होंने शील जी को पढ़ा नहीं है। किताबें न मेरे पास थीं, न शील जी के पास ही अतिरिक्त प्रतियां शेष थीं कि उन्हें भेजी जा सकें। इस बीच मेरा स्थानांतर राजस्थान में कोटा हो गया। तब मैने यह सोचा कि जब लोगों ने शील जी को पढ़ा नहीं है तो क्यों न उनके साहित्य को ही इस अंक में दे दिया जाए। मैने उनसे पचास कविताएं, तीन लेख और तीन कहानियां ले लीं और जयपुर आ गया। वहां से कोटा पहुंचा। कुछ महीनों बाद एक प्रेस ढूंढा और सामग्री मुद्रक को सौंप दी। अधिकांश सामग्री हाथ से लिखी हुई थी और कुछ फोटोकॉपी की हुई। तब छपाई का काम हाथ की मशीन से होता था। इसी बीच मेरा स्थानांतर जयपुर हो गया। पत्रिका प्रेस के मालिक के भरोसे छोड़ दी। दो मित्रों को भी जिम्मेदारी सौंपी लेकिन वे ध्यान नहीं दे पाए। पत्रिका छप गई। ज्यादा अच्छी नहीं छपी। कुछ प्रूफ की गलतियां भी छूट गईं। यह अखरा लेकिन एक जरूरी काम हो गया।

10 जून 1990 को कोटा के भारतेन्दु भवन में इसका भव्य लोकार्पण संपन्न हुआ। इसमें स्वयं शील जी, वरिष्ठ कथाकार हेतु भारद्वाज, वरिष्ठ कवि ऋतुराज, आलोचक डॉ जीवन सिंह, नाट्यकर्मी शिवराम, कवि महेन्द्र नेह, आलोचक शंभु गुप्त कवि विनोद पदरज, प्रेम मिश्रा और कोटा के अनेक साहित्यकार उपस्थित रहे। यह एक छोटी, साधारण पर एक आवश्यक पहल थी जिससे जड़ता टूटी, यथास्थिति खत्म हुई और बाद में शील जी पर कुछ महत्वपूर्ण काम सामने आया।

मेरा उद्देश्य पूरा हुआ और उद्यम सार्थक। शील जी का साहित्य सुधी पाठकों तक पहुंच गया।

कुछ यूं भी

अभिव्यक्ति के अवरोधक

विगत दस वर्षों से सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक मुद्दों पर कई समाचार पत्रों के संपादकीय पृष्ठों लिए लगातार लिखता रहा हूँ। 2015 के बाद धीरे-धीरे बड़े समाचार पत्रों ने सुर बदलने शुरू कर दिए। मेरी जिस बेबाक, और धारदार लेखनी के वे प्रशंसक थे, वह उन्हें अब असुविधाजनक लगने लगी। फिर भी 2017 तक कुछ कम फ्रिक्वेंसी के साथ वे छापते रहे। सबसे पहले जनसत्ता ने हाथ खड़े कर दिए फिर जागरण, सहारा आदि ने। मुख्य धारा के क्षेत्रीय पत्रों का भी यही व्यवहार रहा। अब छपने की अवधि कभी-कभार वाली अनियमित हो गई और कोरोना संक्रमण के साथ समाप्त ही हो गई। कुछ छोटे क्षेत्रीय अखबार जिनके लिए पूरे दशक तक मुफ्त में लिखता रहा उनमें भी सामग्री के स्वभाव को लेकर असुविधा हुई। वे भी कन्नी काटने लगे। जिन्होंने कभी कोई मानदेय नहीं दिया वे एहसान मानना तो दूर, एहसान बताने लगे। विडंबना यह कि धीरे-धीरे समाचार पत्रों में लिखना छूटता गया या छोड़ता गया। अब एकाध ही पत्र है जिनमें व्यवहार सम पर बना हुआ है। वे सामग्री का बेहिचक उपयोग कर पा रहे हैं। इस बीच कुछ वेब पोर्टल और चैनलों पर भी सामग्री दे रहा हूँ। दो-एक पत्रिकाओं में भी भेज देता हूँ। पर समय बड़ा ही कठिन है। जो आप कहना चाहते हैं वह अब मीडिया सुनना समझना नहीं चाहता। अलबत्ता सोशल मीडिया पर संभावनाएं बनी हुई हैं। त्रासदी है कि बेबाक अभिव्यक्ति के लिए मंच बहुत कम बचे हैं।

हवा-हवाई

मार्क्सवाद हवाओं में लहरें बनकर दौड़ रहा है।

कुछ वर्ष पहले एक अति क्रांतिकारी और भीषण मार्क्सवादी बुद्धिजीवी नगर में पधारे। उन दिनों नगर में साहित्यक मेलों का दौर चल रहा था। संयोग से तीन-तीन साहित्यक मेले एक साथ आयोजित हो रहे थे। कुछ आगे पीछे होगा। एक खत्म तो दूसरा शुरू पर दो तो समानांतर ही रहे होंगे। तो ये बुद्धिजीवी मित्र (मुझसे उनका औपचारिक परिचय था) इन तीनों मेलों में शिरकत कर रहे थे। मेरी उनसे जब मुलाकात हुई तब वे उस आयोजन में विराजमान थे जिसमें अनेक अतिक्रांतिकारी बुद्धिजीवी आमंत्रित थे जिनमें आधे दिल्ली और जेएनयू से संबद्ध रहे होंगे। कुछ अन्य जगहों से कुछ साधारण और पारंपरिक वामपंथी साहित्यकार भी मौजूद थे। दूसरे दिन उन्होंने उस समानांतर मेले में मिलने को बुलाया जिसमें एक सत्र में वे मुख्य वक्ता के रूप में कुछ बहुत महत्वपूर्ण स्थापनाएं रखने जा रहे थे। मुझे उन्हें अवश्य सुनना चाहिए ऐसी उनकी अपेक्षा थी। खैर नियत समय पर मैं उनका वक्तव्य सुनने नियत पांडाल में पहुंच गया। उन्होंने मुझे देख लिया आश्वस्त हुए। उनका वक्तव्य समाप्त हुआ। और कुछ लोगों को सुनकर वे मंच से उतर कर नीचे आए। कुछ लोगों ने उन्हें घेर लिया। उनसे संवाद किया। उनका नाम तो था ही। मैं प्रतीक्षा करता रहा। वे मेरे पास आए बोले यार भूख लगी है। कुछ खाने का जुगाड़ है। आयोजन में व्यवस्था थी। उन्होंने कुछ ग्रहण किया फिर बोले चलो कॉफी हाऊस चलते हैं। हम कॉफी हाऊस पहुंच गए। तब उन्होंने बहुप्रचारित लिटरेचर फेस्टिवल के बारे में अपनी राय जाहिर की जिसमें तीन-चार दिन पहले एक सत्र में शिरकत की थी। बोले ऐसे चमक-दमक वाले साहित्यिक आयोजनों से साहित्य के नाम का प्रचार तो होता ही है। पूंजी का हर क्षेत्र में दबदबा है तो

साहित्य कैसे बच सकता है? यहां फिल्म वालों का काफी प्रभाव है। गुलजार, जावेद अख्तर, प्रसून जोशी यही सब साहित्यकार माने जाते हैं। और बहुत सी जानकारी इस मेले की बाबत उन्होंने दी, फिर समानांतर मेले पर आ गए। इसके आयोजकों को उन्होंने मार्क्सवाद न जानने वाले पर सहृदय मित्र कहा। आखिर इन आयोजकों ने उन्हें बुलाया जो था। वहां आमंत्रित लोगों में विष्णु खरे को अपना साहित्यक गुरु बताया और नरेश सक्सेना को बेहतर कवि। इस संदर्भ में उन्होंने रघुवीर सहाय को श्रद्धा भाव से याद किया और सर्वेश्वर को क्रांतिकारी भाव से। मैने कुछ और बड़े कवियों के नाम लिए जिन्हें उनने मध्यमार्गी कहकर खारिज कर दिया। आलोक धन्वा, मंगलेश, राजेश जोशी के नाम पर हल्की सी मुस्कराहट दी, कोई प्रतिक्रिया नहीं दी। कथाकारों में कमलेश्वर और कामतानाथ को याद किया। अखिलेश को बड़ा कहानीकार माना। संजीव को भी याद किया। मैने उन्हें अमरकांत और ज्ञानरंजन की याद दिलाई तो मेरी तरफ कुछ तिरछी दृष्टि से देखा। रविभूषण को समर्थ आलोचक और परमानंद श्रीवास्तव को लद्धड़ आलोचक बताया। मैने कहा प्रदीप सक्सेना को क्यों छोड़ दिया? बोले उन्हें पकड़ के भी क्या कर लेंगे। मुझे अपना मध्य प्रदेश प्रेम जागा इसलिए मैने धनंजय वर्मा और राजेश्वर दयाल सक्सेना का जिक्र किया मगर उन्होंने ने ध्यान नहीं दिया। इसके बाद वे अपने पूरे रंग में आ गए। बुद्धभस, बुड़बक, अधकचरे ज्ञान वाले नकली, ढ़ोंगी, मार्क्सवाद का लबादा ओढ़े अंदर से पूंजीवाद समर्थक तिलचट्टों की ऐसी खबर ली कि मेरा माथा सुन्न हो गया। लगा उनके अलावा भारतवर्ष में कोई और सच्चा और अच्छा मार्क्सवादी नहीं है। संसदीय वाम पार्टियों को भी खूब गरियाया। मैने कहा प्रभु मेरी समझ में सब आ गया लेकिन मेरी एक जिज्ञासा शांत करें कि इतने क्रांतिकारी और खांटी मार्क्सवादी होने के बाद भी आप इन रंगबिरंगे मेले-ठेलों में क्यों घूम रहे हैं जबकि आपके हिसाब से सब भ्रष्ट, पतित, अज्ञानी, धूर्त और कैरियरिस्ट हैं। बोले तुम हमेशा व्यक्तिगत हमला करते हो। इसीलिए तुम्हें कोई घास नहीं डालता। तंत्र, व्यवस्था, मानसिकता, सामंती और पूंजीवादी अमानुषिक सोच का विरोध करो। व्यक्ति तो बदलते रहते हैं। मैने कहा कि यह तो गांधी जी वाली बात हुई कि अपराधी से नहीं अपराध से घृणा करो। बोले तुम अभी बच्चे हो। वे उठ खड़े हुए। कहा शाम को मिलो तब समझाऊंगा। चित्रकूट में एक भक्त शिष्य है। उसने खाने-पीने, रहने की व्यवस्था कर रखी है। कल उसकी एक पुस्तक का विमोचन है। यह व्यक्तिगत और निजी संबंध के कारण मुझे करना पड़ रहा है। वहीं आ जाओ। आगे चर्चा करेंगे। मैने पूछा निजी संबंध बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। बोले बेशक। तुमसे भी तो व्यक्तिगत संबंध ही हैं न। मैं रात में उनके साथ बैठा। धुंआधार चर्चा हुई। लगा मार्क्सवाद हवाओं में लहरें बनकर दौड़ रहा है। सुबह विमोचन में मैं नहीं गया। मित्रवर शाम को शिष्य द्वारा इंतजाम की गई गाड़ी से दिल्ली रवाना हो गए।

काव्य

डॉ सरला सिंह "स्निग्धा"

दिल्ली

"जेठ की दुपहरी "

जेठ की दुपहरी
तपती जब धरती
आग उगलता है आकाश।
पवन अनल ले साथ घूमते
दहक उठे धरती आकाश।

ऐसे में जब फुटपाथों पर
चलना भी होता मुश्किल।
लगता जल्दी घर में पहुँचे
और चलायें कूलर या एसी।
पन्नी की छत के नीचे
कैसे वे रह पाते हैं सोचो ?

करते बड़े बड़े जो वादे
नेता क्या यह नहीं देखते ?
नन्हें बच्चे ,बूढ़े और बीमार
तपते खड़ी दुपहरी में सारे।
उनके कुत्ते भी एसी में
जब मस्त मजे में रहते हैं।

ये गरीब दुर्बल लाचार
जेठ की दुपहरी करते सहन।
सोने के मुकुट कहीं छत्र चढ़ाते
फटेहालों पर कब वस्त्र उढ़ाते?
देवी पूजन तो कर आते हैं
नारी की रक्षा कब कर पाते है?

मानव को मानव समझो तुम
सबको समान अधिकार चाहिए।
भोजन ,कपड़ा औ सिर पर छत
इतना सारे मानव को चाहिए।
सबसे पहले इसपर ही बल हो
तब जाकर ही सुंदर कल हो।

****

सिंधु मिश्रा
राँची,झारखंड,भारत

बात पते की

"मुफ़्त में मिली चीजों का सम्मान करना सीखें"

हमारी मानसिकता,हमारी अच्छी,सकारात्मक सोंच हमें व्यवहारिक कुशलता एवं आध्यात्मिक सफलता प्रदान करती हैं।किसी मित्र,रिश्तेदार आदि से मुफ्त में स्नेहवश मिल रही चीजों को लेने एवं देने में हमेशा विनम्र रहें ताकि लेने या देने वाले की भावना आहत ना हो।रहीम ने लिखा है ना-

'देनहार कोई और है,भेजत जो दिन रैन। लोग भरम हमपर करें तासो नीचे नैन।।'

विनम्रता ऐसी होनी चाहिए,भाव भी ऐसे ही होने चाहिए।हम इंसान इन बातों को समझ नहीं पाते और ईश्वर के प्रति हमारी आस्था कम हो जाती है और हम खुद को ईश्वर समझ बैठते हैं।

हमें सबसे पहले अपनी दुर्बल सोंच को मजबूत और दृढ़ प्रतिज्ञ बनाने की ज़रूरत है, हम जाने अनजाने भावनाओं में बह कर कभी खुद का,कभी अपनी चीज़ों का भी अपमान करवाने की मूर्खता कर बैठते हैं।जैसे हमने कोई अच्छी सी ड्रेस अपने रिश्ते में किसी के लिए खरीदी और उसे अपने दिल की गहराईयों से खुश होकर दिया,पर सामने वाले ने उसे दिल से नहीं लिया और ऊपर से वो अपनी पूरे कमरे में रखी आलमारी के दर्शन कराने लगा, और उसके बोल कुछ ऐसे निकले, " ओहहो क्या ज़रूरत थी इसकी देखिए ना इतनी महंगी-महंगी ड्रेसें रखी हैं, पहनते पहनते पूरे महीने रिपीट भी नहीं होते , उसके बाद भी आपने ड्रेस....खैर!'

इससे आपका और आपके द्वारा लायी गयी वस्तु का भी अपमान होता है।कृपया भावनाओं में आकर कभी भी अपमानित ना हों। सतर्क रहें, चाहे वो उपहारस्वरूप वस्त्र देने की बात हो,भोजन देने की बात हो या कोई भी वस्तु देने की बात हो ।

भोजन का अनादर प्रलय लाता है, इसके अनादर से उस जमीन की उर्वरा शक्ति नष्ट होती है जहाँ इसे एक मेहनतकश किसान ने अपने मेहनत और लगन से सींचा और हम तक पहुँचाया है।

भोजन जब थाली में परोसा जाता है तो उसे हम नमन करते हुए प्रथम निवाला मुँह में डालते हैं, इससे माँ अन्नपूर्णा खुश होती हैं और साथ ही अन्न उगाने वाला किसान संतुष्ट होता है ,भोजन तैयार करने वाले का सम्मान बढ़ता है।

भोजन के महत्व को वो लोग भली भांति समझ सकते हैं जिन्हें ये आसानी से नहीं मिल पाता, जो दो वक्त की रोटी के लिए दिन-रात मेहनत करते हैं और फिर जाकर कुछ पैसे मिलते हैं और वे उनसे खाने की वस्तुओं को खरीदते हैं।

आधुनिकता की इस अंधी दौड़ में लोग भावनाओं की कद्र करना लगभग भूल चुके हैं और इनके महत्व को वे कभी समझ नहीं पाते और इनका अपमान कर बैठते हैं। कभी भी किसी को कुछ देने से पहले ये ज़रूर सोंचें कि इसकी अमुक व्यक्ति को कितनी आवश्यकता हो सकती है, क्या इन चीजों को वह व्यक्ति सहृदय स्वीकार कर सकेगा यानी जो मुफ्त में उपहारस्वरूप वस्तु हम दे रहे हैं, इसका सम्मान और हमारा सम्मान वो व्यक्ति कर सकेगा या वह हमें,हमारी भावनाओं को ठेस पहुँचाएगा। इन बातों का कितना बड़ा महत्व होता है इसे शब्दों में नहीं आंका जा सकता,इसलिए ज़रूरत मंदो को ही भोजन कराएं,उन्हें ही वस्त्र दें उनकी दुआ ईश्वर के मंदिर में घंटी बनकर बजेंगी और ऊपरवाला उस आशीर्वाद को,उस दुआ को वरदान में परिवर्त्तित कर आपके जीवन को पूर्ण समृद्धि एवं खुशियों से परिपूर्ण कर देगा।

भावना सक्सैना

क्षणिकाएँ

नागफनी

1
हरेक दंश पर
समेटा खुद को भरपूर
हर चुभन से उपजा काँटा
कांटें बढ़ते गए यूँ कि
बन गयी नागफनी
ममता की हरीतिमा से सिक्त रही
मगर न फिर उसको कभी बांटा...

2
रस की, रंग की
कमी नहीं है
फिर भी बात-बात पर
देते हैं दंश
क्या सब ही नागफ़नी हैं?

3
तपते रेगिस्तान में
फल जाती है जैसे
गमले की सुविधा में
पल नहीं पाती
नागफ़नी भी औरत सी है
बन्दिशों में पनप नहीं पाती।

4.
है सुन्दर
फूलती फलती है
फिर भी बची रहती है
इससे सीख लो
कि ज़रूरी हैं कांटे भी
जीवन के बने रहने को।

भावना ठाकर 'भावु'
बेंगलोर

बात पते की

"तीन 'स' से ज़िंदगी बदल लो"

ज़िंदगी के बहुत सारे रंगों में तीन अहम रंग सपने, संघर्ष और सफ़लता है, ये तीन 'स' जिसने समझ लिए समझो ज़िंदगी को उसने मुट्ठी में कर लिया।

नहीं मिलती मंज़िल यूँहीं किस्मत के भरोसे, संघर्ष का हाथ थामें सपनों में रंग भर लो मेहनत का, देखो फिर बाँहें फैलाए स्वागत करेगी सफ़लता।

ज़िंदगी से कभी यह मत कहो की तू भागी जा रही है और मैं चल भी नहीं सकता, आहिस्ता चल ज़िंदगी मैं थक जाता हूँ। ये कहिए की बहुत सारे सपने है इन आँखों में कुछ तेरे दिये, कुछ मेरे देखे थोड़ा सा वक्त तो दे पूरे करने के लिए मैं तुझसे भी आगे निकल जाऊँगा।

कुछ लोगों को यह कहते सुना है कि सपने जरूर देखो बस उन्हें पूरे होने की शर्त मत रखो...क्यूँ भै क्यूँ हम ज़िंदगी के आगे सपनें पूरे होने की शर्त न रखें? सपने देखना बुरी बात नहीं देखने ही चाहिए, पर सपनें देखने का अधिकार सिर्फ़ उनको है जो सपने सच करने का दम रखता हो।

आँखों को कभी कोरी सूखी मत रखिए सपनों से हरी-भरी रखिए, एक सपना पूरा होते ही दूसरा तैयार रखिए। आँखें सपने देखेगी तभी तन जूझने के लिए तैयार रहेगा। संघर्ष जीवन का हिस्सा है भागने से काम नहीं चलेगा। महज़ सपने देखने से सफ़लता नहीं मिलती याद रखिए अथाह मेहनत और चाणक्य नीति से हर चुनौतियों का सामना करने वालों की गुलाम होती है सफ़लता।

कुछ लोगों को किस्मत को कोसते हुए भी देखा है। क्या ईश्वर ने कभी किसीके सपने में आकर कहा कि मैं हर इंसान की लकीरों में किस्मत लिखकर भेजता हूँ? नहीं.. हमनें लकीरों को अपनी किस्मत मान लिया है। दर असल दो हाथ देकर ईश्वर ने अपनी तकदीर खुद लिखने का हमें अधिकार दिया है। ईश्वर ने सबको एक समान इंसान बनाकर भेजा है जिनके पास सर में एक दिमाग, दो हाथ, दो पैर और दो आँखें इतने औज़ार है वह इंसान सबसे धनवान होता है, और जिनको इन औजारों का सही उपयोग करना आ गया उसने अपनी तकदीर बना ली, और जिनको उपयोग करना नहीं आया वह लकीरों में अपनी किस्मत ढूँढते रहे।

ज़िंदगी माँ नहीं जो सफ़लता प्यार से परोसेगी, ज़िंदगी गुरु है लाठी हाथ में लेकर खड़ी होती है। ठोकर को हार मत मानों लगने दो चोट और हर ज़ख़्म पर हौसलों का मरहम लगाकर वापस खड़े हो जाओ। संघर्ष से लड़ने का हुनर सीख लो, मेहनत के पाठ पढ़ लो, हर परिस्थिति में खुद को आत्मविश्वास के साथ ज़िंदगी के सामने रखो परिस्थितियों को अपने सामने झुकने के लिए मजबूर करो। अपनी शख़्सियत को ऐसे गढ़ो की किस्मत को आप पर गुरुर महसूस हो। ज़िंदगी झुकती है जनाब झुकाने वाला चाहिए। टाटा, बिरला, अंबानी, अदानी लकीरों के भरोसे नहीं बना जाता, दिन रात एक करने पड़ते है। बेशक बार-बार हराएगी ज़िंदगी, पर हार कर बैठे न रहो लगातार कोशिश करके जीत को अपनी आदत बना लो। ज़िंदगी को जश्न बनाना है तो युवावस्था को मेहनत की आग में तपाओ, पसीने की खुशबू बुढ़ापा महकाएगी। जिसने जवानी अमन-चमन में उड़ा दी उसकी पूरी ज़िंदगी जूझने में बितेगी। तो 'सपने' भी देखो, 'संघर्ष' से न घबराओ और खुद के अंदर 'सफ़लता' को पाने का जुनून जगाओ और मंज़िल तक पहुँचने की हर वह कोशिश करो जब तक अपने लक्ष्य तक पहुँचकर परचम न लहरा लो। तीन 'स' को समझकर भाग्य बदल लो।

लघुकथा

डॉ० दलजीत कौर
(चंडीगढ़)

काश !

पिता ने वह पत्रिका अपने स्कूटर की डिग्गी में छिपा ली ।जिसमें बेटी की तस्वीर छपी थी ।आए दिन बेटी की तस्वीर कभी अख़बार में तो कभी पत्रिका में छपती रहती ।वह शहर के जाने -माने कॉलेज की प्रिन्सिपल बन गई थी ।उसके सम्मान की खबरें छपती रहती ।वे छिपा कर अपने मित्रों को दिखाते ।पर घर में इस बारे में बात भी न करते ।बेटी को कभी सराहना के दो बोल न बोले ।वे तो उसे दसवीं तक पढ़ा कर ब्याह देना चाहते थे ।मगर यह बेटी की मेहनत और कोई दैवीय चमत्कार ही था कि वह पढ़ लिख कर इस पद पर थी ।आज भी उन्हें अफ़सोस था - काश ! बेटी की जगह बेटा उनका नाम रौशन करता ।

" साहित्यकार"

उसने हिंदी एम ०ए ० में दाख़िला लिया ।उसके ताऊ जी ने कहा - something is better than nothing (कुछ न करने से कुछ कर लेना बेहतर है)

उनके बच्चे हिसाब पढ़ रहे थे ।उन्हें अपने बच्चों को इंजीनियर बनाना था ।उसकी बुआ के बच्चे विज्ञान पढ़ रहे थे ।उन्हें डॉक्टर बनना था ।उन्होंने भी नाक -मुँह सिकोड़े ।

कुछ तो डॉक्टर, इंजीनियर नहीं बने ।जो बने ।उन्हें भी कोई नहीं जानता था ।

भाषा पढ़ने वाले साहित्यकार को पूरा क्षेत्र पहचानता था

सीमा रंगा इन्द्रा
हरियाणा

"ज्ञान अहमियत रखता है ना कि अंक"

आजकल परीक्षा में ज्यादा अंक लाने की प्रवृत्ति दिन- प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। अभिभावक चाहते हैं कि मेरे बच्चे पूरे के पूरे परीक्षा में अंक लाएं। चारों तरफ बस होड़ लगी हुई है एक- दूसरे से ज्यादा अंक लाने की ।इस बात पर जोर क्यों नहीं दिया जाता कि अंको की अहमियत तभी है जब हमें पूरे पाठ्यक्रम का ज्ञान होगा। कई बार ऐसा होता है, आप लोगों ने सुना भी होगा और देखा भी है, कम अंक लाने वाला विद्यार्थी जीवन में सफल हो जाता है और हमेशा कक्षा में अव्वल रहने वाला विद्यार्थी कई बार पीछे छूट जाता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि दोनों ने पढ़ाई नहीं की दोनों ने पढ़ाई की होती है परंतु कई बार बच्चे सिर्फ किताबों तक ही सीमित रह जाते हैं। वास्तविकता से उन्हें कोई लेना- देना नहीं होता ।बच्चों को किताबी कीड़ा बनाने की बजाए शिक्षा के साथ-साथ उन्हें खेलकूद के क्षेत्र में भी योगदान देने की कहे। ताकि बच्चे हर क्षेत्र में अपने हाथ आजमा ले और जीवन में तनाव की स्थिति पैदा ना हो क्योंकि ज्यादा अंक प्राप्त करने की स्थिति में बच्चे चिड़चिड़े और हठी हो जाते हैं । कई बार बच्चे अवसाद से ग्रसित होकर छोटी सी उम्र में ही परेशान रहने लगते हैं ।

किसी का कहना नहीं मानते और कई बार तो बच्चे मौत को भी गले लगा रहे हैं क्योंकि ज्यादा अंक लाने की प्रवृत्ति उनके अंदर इतना घर कर चुकी होती है कि उनको ज्यादा अंकों के सिवा कुछ नहीं दिखाई देता। अगर कई बार परीक्षा में बच्चे का पेपर अच्छा नहीं होता तो बच्चा सोचता है अब मेरे अभिभावक क्या बोलेंगे? हमारे पड़ोसी क्या बोलेंगे? जिससे वह तनाव में आकर यह कदम उठा लेता है।बच्चों को सिर्फ ज्यादा अंक लाने के लिए दबाव न डालें उन्हें अपनी मर्जी से अपने विषय लेने दे और उन्हें ज्यादा अंक लाने की बजाय यह समझाएं कि आपको अच्छे से पढ़ना है अंक चाहे जितने भी आ जाए। पहले हमारे समय में बच्चे के ऊपर इतना दबाव नहीं होता था ।पहले पढ़ाई के साथ -साथ बच्चे खेलकूद, घरेलू कार्यों में अपना योगदान देते थे। दादा -दादी ,नाना- नानी के पास बैठते थे। जो आज बिल्कुल खत्म होता जा रहा है।

बचपन अच्छे से जीते थे,आजकल तो बच्चों ने पढ़ना शुरू किया नहीं कि मां-बाप खींचना शुरू कर देते हैं कि तुझे अच्छे नंबर लाने हैं सबसे ज्यादा नंबर लाने है ।बस इसी की दौड़ में लगे रहते हैं ।कई बार तो ऐसा होता है सोसाइटी के दूसरे बच्चे और उनके दोस्त के बच्चे अच्छे नंबर ला रहे। तो अभिभावक चाहते हैं उनके बच्चे भी ऐसे ही नंबर लाए। अपना नाम ऊपर करने के लिए या दिखावा करने के लिए लोगों के सामने यह बोलते हैं हमारे बच्चे कितने नंबर आए। एक बच्चे का दूसरे बच्चे के साथ तुलना करते हैं जो बिल्कुल गलत है। क्योंकि सब बच्चों में अलग-अलग प्रतिभाएं होती हैं। क्या हमारे अभिभावकों ने कभी ऐसा किया था? जो आज हम अपने बच्चों के साथ कर रहे हैं।

फूल से मासूम है
जी लेने दो उन्हें बचपन
हंसने दो ,खेलने दो, मुस्कुराने दो
खुली हवा में सांस लेने दो
एक बार आता है बचपन
चला गया ,लोट कर कभी नहीं आएगा

डॉ . मुश्ताक़ अहमद शाह "सहज़"
हरदा मध्यप्रदेश

“ईश्वर के साथ आत्मा का संगठन ही योग है " -श्रीमद्भगवतगीता”

शरीर की स्वस्थता , उपचार एवं सुधार के लिए व्यायाम अत्यंत आवश्यक है। यह हड्डियों को मजबूत बनाता है . बीमारियों को बढ़ने से रोकता है , मांस - पेशियों को सुदृढ तथा स्वस्थ बनाता है और जोड़ों , नसों तथा स्नायु तन्त्रों को लचीला बनाने में मदद करता है। योगाभ्यास शरीर को आन्तरिक रूप से स्वस्थ बनाना है और मन को शान्ति प्रदान करता है तथा इनका नियमित अभ्यास करने से अनेक प्रकार की बीमारियों से बचा जा सकता है। यौगिक क्रिया , आसन तथ्या प्राणायाम योग के भौतिक आधार का गठन करते हैं।

जीवन की समान्य स्थिति बनाए रखने के लिए शारीरिक व्यायाम करना अति आवश्यक है। प्राकृतिक व्यायाम का अभाव कमजोरी तथा अस्वस्थता का एक मुख्य कारक है। व्यायाम शरीर के भीतर रक्त प्रवाह को सुधारता है तथा रक्त की विषकतता को दूर करता है। विभिन्न प्रकार के व्यायाम किए जा सकते हैं - वायुजीव (एरोबिक) व्यायाम , स्ट्रेचिंग (खिंचाव) व्यायाम , योगासन आदि। वायुजीव (एरोबिक) व्यायाम जैसे टहलने , तैराकी करने , साइकिल चलाने , दौड़ने आदि में अत्यधिक वायु (सांस) तथा ऑक्सीजन शरीर के भीतर लेनी होती है। स्ट्रेचिंग , व्यायाम न केवल मांसपेशियों तथा जोड़ों में खींचाव तथा फैलाव लात हैं बल्कि यह शरीर के अन्य भागों तथा ग्रन्थियों को मालिश भी करते हैं , सुदृढ़ीकरण तथा शारीरिक संरचना अभ्यास भी शारीरिक स्वायता के लिए सहायक होते है। मांस पेशियों तथा जोड़ों के लिए व्यायामों में योगासन सबसे प्रमुख व्यायाम है। योगासन करने से शरीर स्वस्थ होता है तथा मस्तिष्क को शान्ति मिलती है। यह तनावों को दूर करने में भी सहायक होता है। चाहे वह शारीरिक , मानसिक अथवा भावनात्मक तनाव ही क्यों न हो। यदि व्यायाम को गोली के रूप में पैक किया जा सकता तो यह विश्व में व्यापक रूप से एकमात्र निर्धारित तथा लाभदायक औषधि होता।

" योग " शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के " युज " शब्द से हुई है जिसका अर्थ है बांधना , प्रहण करना अथवा जोड़ना। इसका अर्थ संगठनन भी है। यह सत्य है कि ईश्वर की इच्छा के साथ हमारी इच्छा संगठित होती है। भारतीय दर्शन को छः परम्परागत प्रणालियों में से योग भी एक प्रणाली है। योग प्रणाली हमें उन कारणों को बताती है जिसके द्वारा " जीवात्मा " (व्यक्तिगत मानव - अन्तरात्मा) " परमात्मा " (सर्वोच्च सार्थचोमिक अन्तरात्मा) में संगति होती है और हमें मोक्ष की ओर ले जाती है।

" व्यक्तित्व का संपूर्ण रूप से विकास ही योग है " -श्रीमद्भगवतगीता ,

" ईश्वर के साथ आत्मा का संगठन ही योग है " -श्रीमद्भगवतगीता

" मस्तिष्क की विभिन्न मनोदशाओं में रुकावटेंडालना ही योग है " -योगदर्शन ,

योग वह पद्धति है जिसके द्वारा अशांत मस्तिष्क को शांति मिलती है और संपूर्ण शरीर में ऊर्जा का संचार होता है। जैसे एक विशाल नदी में उपयुक्त रुप से बांध तथा नहरें बनाकर एक बड़ा जलाशय बनाया जाता है जो कि दुर्भिक्ष अकाल तथा बाढ़ की रोकथाम करता है और उद्योगों के लिए ऊर्जा उपलब्ध कराता है। इस प्रकार जब मस्तिष्क सन्तुलित होता है तो वह शांति रुपी जलाशय उपलब्ध कराता है तथा मानव का उत्थान काने के लिए पर्याप्त ऊर्जा उत्पन्न करता है। योग का अर्थ मानव का शारीरिक , बौद्धिक , मानसिक तथा आध्यात्मिक रूप से संपूर्ण विकास करना है। योग का पूरा लाभ प्राप्त करने के अनुक्रम में व्यक्ति का समुचित तरिके से अभ्यास करना आवश्यक है क्योंकि योग एक वैज्ञानिक प्रणाली है। इसलिए इसको एक विशिष्ट तरीके से करने की आवश्यकता है। यदि आसन , प्राणायाम , बंध तथा मुद्रा को प्रचलित विधि के अनुसार नहीं किया जाता है तो यह केवल अभ्यास ही रह जाएगा तथा इसके संतोषजनक परिणाम नहीं होंगे।

****

मीनाक्षी शुक्ला
'पूर्णिया ,बिहार
प्रकाशित पुस्तक- विश्वासघात(उपन्यास)

"गांवों का शहरीकरण"

शहरी लोगों के मन में गांवों का एक रेखाचित्र खींचा रहता है कि गांव ऐसे होते हैं... जैसे ही गांव घुसेंगे एक बड़ा सा बूढ़ा बरगद उसके इंतज़ार में पलकों की छावनी करेगा और ठीक उसी समय कुछ महिलाएं पानी लेकर प्रकट हो जायेगी, इसमें भी अलग अलग विशेष क्षेत्र की महिलाएं अपनी परंपरागत वेशभूषा में दिखाई देंगी; मसलन... उत्तरी भारत में सूती साड़ी डाले... नगण्य आभूषण... एक गोदी में बच्चा और एक अंगूली थामे हुए भी जिसकी नाक से घी का निश्चित तौर पर बहाव होगा ही और दूसरे हाथ में भरी हुई बाल्टी। राजस्थानी महिलाएं घाघरा चुनर डाले सारे साजो शृंगार किए... बड़े बड़े नथ मांगटीका लगाए और सुंदर चित्रकारी से सजे एक मटका माथे पर और दूसरा कमर पर डोलता हुआ.. सही कहा न! ये सारी मानसिक उपज कहानीकारों.. कुछ कवियों और बाक़ी कसर सिनेमा टीवी ने पूरा कर दिया।

आगे बढ़ते ही, बैलगाड़ी दिखती है। सिर पर सूती गमछा बांधे काका लम्बी हांक मारता है मीठे सुर में और बैल के गले में बहती घंटी टुनटुन का राग देती सप्त लहरियों सा सुकून देने को ही होती हैं कि पुरवाई बहने लगती है। सामने से शहरियों के लटे बलखाने लगती हैं और मन ही मन हिंदी फिल्मों के कुमार सानू जी के गाने अपने अपनों को याद करके इंद्रधनुषी छटा बिखेरने लगते हैं।

गाँव का कच्चा खपरैल घर... मिट्टी की खुशबू याद दिलाये उससे पहले अमराई हवा लीची और आम की ताजी सुगंध थथुने में फड़फड़ाने लगती है। जीभ से चिपचिपा लार टपकने को होता है कि दूर आस पड़ोस की काकी आकर आपकी बलाएं लेने लगेगी... इतने में, दादी... अम्मा... फलने की बहू... चिलाने की कन्या दस बारह बच्चे लेकर साक्षात् दर्शन देने के लिए स्वयंभू आ जायेगी... सब खींचा तानी करेंगे अपने अपने घर ले जाने के लिए...
ओ बबुआ, जागो! बहुते बदल चुका है भई अपना गांव... न... न... अपना तो खोखला हैं। विकास की तेज आंधी में कोई भी जड़ जमीन से जुड़ा नहीं रहना चाहता... एक तो बारिश की अलग टेंशन, दूजे कब भू स्खलन में जमीनें खिसक जाए। इसका खतरा कौन उठाए तो मृदा अपरदन में सहयोग के लिए बूढ़ा बरगद कब का आरामगृह में अपनी सेवा देने के लिए स्थानांतरण करवा चुका है। चूंकि, बूढ़ा गया तो चबुतरे का क्या प्रयोजन?

सरकार हर घरों में अब जी जान से पीने का पानी पहुंचवा रही हैं तो ये वास्तव वाली समस्या पहले से कहीं कम हुई है। एवज में, गांव वाले सड़क किनारे अपनी जमीं खोदने देते हैं, इस वादे के साथ कि भविष्य में इसका उपयोग किसी छेड़छाड़ वाले कार्य से नहीं करेंगे। इस बार तो गांव से गुजरते हुए गैस लाइन की मोटी मोटी पाइपें भी दिखी। कृषि प्रधान देश में कोई युवा जीविकोपार्जन के लिए कोई काम चुने तो प्राथमिकता कभी भी कृषि को नहीं देता। वह सबसे पहले किसी तरह बाहर निकलने की ही सोचता है। यहां तक कि एक खेतिहर भी यहीं सोचता है कि किसी तरह बेटा पढ़ लिख कर बढ़िया नौकरी लें या फ़िर बाहर ही कमाने चला जाए... आख़िर, किसानी में अब रखा ही क्या है??? पढ़ा लिखा बैलों के बजाय ट्रैक्टर से खेत को जोतेगा... गाय, अन्य पशुओं के लिए अब चारा की समस्या अलग ही रहती है। पैकेट वाला दूध लेना नहीं है... लेकिन, सबसे अधिक धड़ल्ले से गाँवो में यहीं बिकती है। खेतों में काम करने वाले मजदूर शहरों को निकल गए। फसलों की बुआई, कटाई और बाकी कामों के लिए मजदूरों की जगह मशीनों और विरानियों ने ले ली।

जनसंख्या बेकाबू हैं और कंक्रीट के जंगल कैक्टस पर भी उग रहे हैं। सरकार की योजना आज भी एक रूपये में सोलह पैसे ही पहुंचती हैं। शिक्षा, चिकत्सा और रोज़गार तीनों आवश्यक हैं, इसके बिना रोटी, कपड़ा और मकान भी सहज उपलब्ध नहीं है। तो, कई कारक है कि युवा या फ़िर ग्रामीण इलाकों के लोग पलायन को मजबूर हैं। और, शहरों में बसने के बाद गांव नहीं भाता। कभी मजबूरी तो कभी अपनी इच्छा से वो चमक दमक से दूर नहीं जा पाते।

अधिकांश, विवाह भी अगर ग्रामीण क्षेत्रों में हो तो भी अच्छे से देख भाल लिया जाता है कि लड़का बाहर तो रहता है न! ऐसे में, कौन नहीं चाहेगा शहर रहना।

आज जब गांव पहुँचो तो एक अलग ही सन्नाटा पसरा मिलता है। पगडंडियों वाली सड़क चौड़ी हो चली है और अब फलाने के बेटे ने आपस में बंटवारा कर के इधर ही मेन रोड के पास घर बनवा लिया है। तीनों बेटे अपना परिवार लेकर अलग रहते हैं। उनके मां बाप पुराने डीह पर ही रहते हैं और सबसे अलग अपना खाना भी अलग ही पकाते... क्या फायदा तीन तीन बेटे होने का??? उनके बच्चों का भी आपस में बोलचाल... आना जाना बंद हैं।

लोग कहते हैं, अरे भई हम तो बड़े शहरों में रहा करते हैं... लेकिन, बहुत अकेलापन है। हमारे पड़ोस में कौन है हमें पता नहीं होता? तो, क्या यहीं कल्चर अब गांवों में नहीं उठकर आ गया...???

बड़े हो रहे बच्चे कुछ पन्द्रह साल के भी लड़कों से मिलो तो उसे नशा करने के कई सारे उपाय और जगह पता है... छोटी छोटी लड़कियां बड़े चाव से इंस्टा के रील्स और यूट्यूब पर दिख जाती हैं। उसके लिए स्वतंत्रता का मतलब शहरों जैसे पहनावा को अपनाना और देर रात तक स्कूटी या बाइक पर घूमना बाहर से खाना खाना... बड़ी बात, अपने आप को मॉर्डन दिखाने के चक्कर में बड़ों के लिए आंखों तक का आदर भूल जाना... इसके लिए कौन जिम्मेदार? बिल्कुल ठीक, हम... हमारी पीढ़ी!

गांव में रहने वाले को लगता हैं कि शहर... ख्वाबगाह है! वहां आराम ही आराम हैं। घूमना फिरना.. मौज मस्ती और बहुत हद तक ये सोच हमारी फिफ्थ टेक्नोलॉजी की भी है। हर साइड पर स्टेट्स जैसा फीचर... एक छोटा सा कैमरा हमारे बड़े से घर में हर कोने में फैला हुआ है।

अब गांव घुसने पर अलग ही शहर बसा नज़र आता है। न पुरवाई चलती है और न ही कोई पड़ोस के काका स्नेह से खींचकर अपने आँगन दशहरी आम खिलाने ले जाते हैं। क्योंकि, वो काका अपने शहर गए बेटे और सटे मकान में रह रहे बेटे का राह तकता है और इसी ऊपापोह में दशहरी आम सड़ने लगता हैं! मसला यहां भी ख़त्म नहीं होता... बेटा शहर से लौटा हैं तो क्या लेकर आया है? उम्मीदें परिवार वालों की आंखों में चमक पैदा करती है.. साथ ही उस पर लगे मूल्य का भी ख्याल रखती है। उसने क्या कमाया... कितना बचाया और कितना लेकर आया? किस पर खर्चा किया... क्यों किया... कैसे किया... यहां क्यों नहीं किया? वहां की हर छोटी से छोटी बातों का हिसाब चाहिए होता हैं। कोई यह नहीं पूछता कि तुम वहां कैसे रहते हो? शहरों में माचिस के डिब्बे जैसे घर में गुजारा कैसे करते हैं? भावनाएं कटने लगती है... एक दूसरे से बातें छुपाने लगती है... अपना दुख और सुख बताने से घबराती है..!

कॉमन सेंस की बात करते-करते लोग कॉमन चीजों को भूलने लगे हैं। जो चीज गांव को शहर से अलग बनाती थी, वहीं चीज़ें अब हर जगह मिल जाती हैं। ऐसे में, गांवों का गांव बने रहना मुश्किल है।

नीना सिन्हा
पटना,बिहार

लघुकथा

"विध्वंस"

सवेरे की चाय हाथों में थी तभी कहीं आसपास के इलाके से एक बड़ी जोरदार भयानक 'धड़ाम' की आवाज हुई और पूरा मोहल्ला दहल गया। पक्षी चीं-चीं करते आसमान में उड़ने लगे, आवारा कुत्ते भौंकने लगे। मैं हड़बड़ाया हुआ चप्पल डाल आवाज की दिशा में चल पड़ा। अन्य कई लोग भी उसी दिशा में दौड़े जा रहे थे। कुछ सौ मीटर पहुँचते ही हौलनाक दृश्य दिखा। वही विवादित बिल्डिंग धराशायी थी, जिसके बिल्डर ने सबसे आहिस्ता-आहिस्ता कर पैसे ले लिए थे और कब्जा देने को तैयार ही नहीं था। खबर आई थी लोगों के पैसे हड़प कर बिल्डर नें एक फाइव स्टार होटल खोल लिया था। जब पैसा कहीं और खर्च दिया हो तो वह बिल्डिंग पूरी करके देता कहाँ से? फ्लैट पाने के लिए कईयों ने उसपर मुकदमा कर रखा था। महीनों मुकदमा चला, बिल्डर को जेल हुई तो उसके परिजनों ने कर्मचारियों की मदद से ने जैसे-तैसे परियोजना को पूरा करवाया और मालिकों को फ्लैट सौंप दिया।

विचारों से ध्यान हटा तो नजरें घटनास्थल की ओर गईं। सब तरफ चीख-पुकार मची हुई थी। कुछ कहना मुश्किल था कि किसके साथ क्या हुआ होगा? मेरे एक परिचित भी इसी में रहते थे, पर मैं क्या पूछूँ और किससे पूछूँ? उस अपार्टमेंट के गिर जाने से बगल की एक दुमंजिला इमारत भी ध्वस्त हो चुकी थी। बुरा हो मुये बिल्डर का, जिसने सीमित आमदनी वाले लोगों के पैसे हड़पे और जब फ्लैट देने का दबाव पड़ा तो आनन-फानन में नींव से लेकर ऊपर तल्ले तक सूखी इमारत खड़ी करवा दी। निम्न स्तर की सामग्री लगाई, छड़ में कंजूसी की, निर्माण पर न कभी पानी का छिड़काव कराया और न ढलाई के परिपक्व होने के न्यूनतम मियाद का इंतजार किया।

इमारत की नींव धँसने तथा तरफा झुककर गिर जाने कई बेचारे जीते जी मारे गए। कुछ का अंत यथार्थ में हुआ और कई आर्थिक रूप से कंगाल हो जाएँगे। निर्माण के दौरान मेरे मित्र ने बरती जा रही लापरवाही के विषय में कुछ सवाल किए थे। पर उसके समक्ष ज्ञान बघाड़ा गया था कि आजकल ऐसी सामग्री आने लगी है कि निर्माण को तरियाने की जरूरत ही नहीं पड़ती, यूँ ही सेट हो जाता है। वह दिन था और आज का दिन। इमारत का हश्र देखकर कलेजा मुँह को आ रहा था और उसमें रहने वाले बाशिंदों के लिए मन द्रवित हो रहा था, "हे प्रभु! रक्षा करो।"

सरकारी मदद पहुँचने लगी थी ताकि पीड़ितों को इमारत से निकाला जा सके। मैं भी घर को रवाना हुआ क्योंकि लाचार तमाशाई बनने से सीने में दर्द के गोले उठ रहे थे।

जयश्री बिर्मी
निवृत्त शिक्षिका
अहमदाबाद

"प्रथम नारी जासूस को नमन"

२६ जुलाई को जिनकी पुण्य तिथि है ,उन नीरा आर्य को शत शत नमन।५ मार्च १९०२ को उत्तर प्रदेश के मेरठ के खेकड़ा गांव में कुलीन जाट परिवार में जन्मी थी।

माता– पिता की बीमारी के कारण बहुत कर्ज होने की वजह से सारी मिल्कियत साहूकारी द्वारा कुर्क कर ली गई और अपने छोटे भाई बसंत कुमार साथ दर दर भटक ने की नौबत आ गई।इसी भटकन के दौरान हरियाणा के सेठ छज्जूमल मिले जो बड़े व्यापारी थे और वैश्य समाज में उनका बहुत बड़ा नाम था।वैसे वह खुद हरियाणवी जाट समाज से थे।छज्जूराम दानवीर और देशभक्त थे।उन्हों ने दोनों भाई– बहन को गोद ले लिया और अच्छे से लालन पालन करने लगे।कलकत्ता में उनका बहुत बड़ा कारोबार था और वे पक्के आर्यसमाजी भी थे।वीर भगतसिंह भी एकबार पुलिस से छिपते हुए उनके वहां महीना भर रहे थे।सेठजी ने नीरा का ब्याह श्रीकांत जयरंजन दास जो शिक्षित और धनवान भी थे।किंतु वह ब्रिटिश खुफिया विभाग में अफसर थे ये उनकी जानकारी में नहीं आया था।बाद में जब नीरा को पता लगा उनका पति देशद्रोही हैं और अंग्रेजो के तलवे चाट ने वाला गुलाम हैं तो वह बहुत दुखी हुई।पहले उसे राजा महेंद्र प्रताप और बाद में सुभाष चंद्र बोस की जासूसी में अंग्रेजो ने लगा रखा था।जब नीरा ने आवाज उठाई कि देशद्रोह का काम छोड़ ने के लिए कहा तो उसे कहा गया कि उनको वहां से जितना पैसा मिलता हैं उससे उनकी आने वाली कई पीढ़ियां बिना कमाए ही ऐश करेगी।तब देश भक्ति में रंगी नीरा ने पति का साथ छोड़ चले जाने की बात कही तो जवाब मिला कि पैसे हैं तो पत्नियां बहुत मिल जायेगी।और नीरा छज्जूरामजी के घर लौट आई।

उनके कई रिश्तेदार आजाद हिंद फौज में शामिल थे उनसे सुना की नेताजी ने झांसी रेजिमेंट बनाई हैं तो वह खुश हो गई और मुंहबोले भाई रामसिंह को बताया कि वह भी नेताजी के सैन्य में भर्ती होने इच्छा रखती है ,तो उनके साथ वह भी आजाद हिंद सेना में भर्ती हो गई।झांसी रेजिमेंट में उसे नेताजी ने अंग्रजों की जासूसी का काम दिया।अपने साथियों के साथ भेष बदल अंग्रेजो की छावनियों में जासूसी करने जाती थी।उन्हे आदेश था कि जासूसी करते पकड़े जाने पर अपने आप को गोली मार मर जाना किंतु जिंदा अंग्रेजों के हाथ नही लगना।एक बार उनकी एक साथी जिंदा अंग्रेजों के हाथ लग गई,उसे छुड़ाने अपने साथियों के साथ छावनी पर हमला कर दिया राजमणि को बचा तो लिया लेकिन पांव में गोली लगने से सदा के लिए लंगड़ी हो गई।

एकबार नेताजी अपने साथियों के साथ टेंट में सो रहे थे और नीरा को वहा का पहरा देने का कार्य मिला था।वह बंदूक लिए निडर खड़ी थी कि एक साया नजर आया एक आहट के साथ ,देखा तो उनका पति श्रीकांत ,जो नेताजी को मार लाख रूपिए का इनाम लेने की फिराक में था,वह दिखा।तो उसे वहां से चले जाने के लिए बोला लेकिन वह नेताजी की ओर बढ़ रहा था,उसने सोचा भारतीय नारी अपने पति को नहीं मार सकती,नीरा ने अपनी बादुक में लगा छुर्रा उसके पेट में दे मारा तो श्रीकांत ने उन पर गोली चलादी।एक गोली कान के पास से और दूसरी गर्दन को छू कर गुजर गई। बेहोश रखी बहन नीरा को स्वयं नेतेजी ने उठा जीप में डाला और डॉक्टर के पास ले गए और उसे कुछ नहीं होना चाहिए ऐसा बोल इलाज करवाया।

अपने देश भक्ति के कई जलवे आजाद हिंद फौज में दिखा चुकी नीरा अंग्रेजो के हाथ लग ही गई जब जापानी सैनिकों ने धोखा दिया और जापान का साथ अमेरिकन हमले से की वजह से कम हो गया।कालापानी भेज बहुत यातनाएं दी गई।बहुत ही दुर्व्यवहार कर नेताजी का अता पता पूछा गया।नीरा का आंचल फ़ाड़ लुहार के प्लास से स्तनों को नोंचा गया,अंधेरी तंग कोठरी में रखा गया,मल और पेशाब से सनी कोठरी दुर्गंध से सड़ रही थी।एक हाथ से बांध कर बेहोश होने तक लटकाया गया।अन्न पानी भी कम और दूषित दिया जाता था।आर्यसमाजी शाकाहारी नीरा को मांस खिलाया जाता था।एक बड़े गोल चक्कर में खूब घुमा कर अधमरी नीरा को एक खतरनाक टापू पर फेंक दिया गया।

होश आने पर खतरनाक आदिवासियों के बीच अपने को पा नीरा डर गई।उसने भगवान को याद किया ऊं बोल के तो उन्होंने उसे देवी मान लिया।नीरा ने उन्हें अपनी भाषा में आपबीती सुनाई तो वह थोड़ा बहुत समझ आया ,लेकिन ये समझ गए की नीरा की ये हालत अंग्रेजों ने की थी।उन्हों ने एक मजबूत नांव बना कर खूब खाने की चीजे और पानी दे भेज दिया।जैसे तैसे वह हैदराबाद पहुंची तब तक आजादी का बिगुल बज चुका था।

कमजोर शरीर वाली नीरा हैदराबाद में झोपड़ी बना फूल बेच कर गुजरा करने लगी।हैदराबाद मे कट्टरपंथ चरम पर था,माथे पर तिलक लगाने वाली निरा पिटाई कर फूल फेंक दिए।आर्यसमाज का सत्याग्रह अपनी आंखो से देखने वाली नीरा ने अपना तिलक नहीं हटाया।

बूढ़ी हो चुकी नीरा एकबार अपने गांव भी आइ किंतु किसी ने न पहचाना और न ही मदद की,पास के गांव के क्रांतिकारी करणसिंह तोमर ने उन्हें पहचाना और सरकारी मदद लेने के लिए अभ्यर्थना करने को कहा,लेकिन नीरा ने माना कर दिया।उनके पास रहने बोझ नहीं बनना चाहती थी वे सो हैदराबाद लौट आई।

सरकारी जमीन पर बनी झोपड़ी भी तोड़ दी गई थी। एकदिन तेज बुखार से बेहोश बुड्ढी नीरा को हिंदी दैनिक वार्ता के पत्रकार तेजपालसिंह धामा ने देखा तो अपनी पत्नी मधु धामा के साथ मिल नीरा को अस्पताल में भर्ती करवाया।होश आने पर नीरा ने अपनी आपबीती सुनाई।२६ जुलाई १९९८ के दिन अस्पताल में धमाजी के पास अंतिम सांस ली,धामाजी उनके अंतिम संस्कार का प्रबंध करने गए वापस आए तो उनकी पत्नि नीरा का शब लिए बाहर खड़ी थी,अस्पताल वालों ने ज्यादा भीड़ होने से बाहर निकल दिया था।तिरंगे में लपेट उनका अंतिम संस्कार सम्मान के साथ किया गया।उनका अस्थि कलश,डायरी,पुराने फोटो और अन्य सामान एक मंदिर में आज भी पड़े हैं,स्मारक बन ने की प्रतिक्षा में।

देश की प्रथम महिला जासूस,आजाद हिंद फौज की महान क्रांतिकारी कैप्टन ,नेताजी की राखी बहन,देश भक्त चौधरी छज्जुराम की बेटी,कालापनी की कष्ट भरी सजा भुगतने वाली नीरा आर्य को भारत वासियों के शत शत नमन

काव्य

कनक किशोर

राँची (झारखंड)

"क्षणिकाएं"

१

ऐसी - तैसी करके रख दी

जल, जंगल और जमीन
संग- संग उसके वासियों की
बाजारवाद और विकास ने
ऐसी - तैसी करके रख दी।

२

उलगुलान

जंगल ही जन्मदाता है
उस उलगुलान का
जिसने दिया हमें
बिरसा आबा को।
वनवासियों को रोका गया
जंगल जाने से,
मना किया गया उन्हें
जरूरत की लकड़ी
फल, फूल लाने से,
बिरसा बोल उठा
ऐसा कदापि नहीं होने दूंगा
और छेड़ देता है
एक नई जंग
उलगुलान।

३

हरित उलगुलान

बिरसा आबा ने कहा था
आऊंगा मैं
जल्द ही अपनों बीच।
धरती आबा के
खून से जली उलगुलान की आग
कभी नहीं बुझेगी
कभी नहीं
इस धरती से,
जल, जमीन और जंगल हेतु
लानी होगी एक नई उलगुलान
हरित उलगुलान।

४

प्रकृति

प्रकृति को
असंतुलित
कोई और नहीं
हमनें किया है,
तो हवा, पानी, धरती
गर्मी, ठंडा, बारिश
सबकुछ सामान्य कैसे?

५

फलाफल

अब
नदी से पानी नहीं बालू
पहाड़ों से औषधि नहीं गिट्टी
पेड़ों से छाया नहीं लकड़ी
पेड़ों से छाया नहीं लकड़ी
खेतों से अनाज नहीं नगदी फसलें
फलाफल
आज हमारे सामने।

६

अस्तित्व की धुन

प्रकृति के लय - स्वर
अपने में छुपाए रहती है
ओंकार की ध्वनि,
नाद और अनहद की गूंज
जो प्रकृति पैदा करती
उसे नहीं सुन पाते हम
भोतिकता के दौर में,
आनंद और अस्तित्व की
धुन से
दूर हो रहे हम
नतीजा
जिंदगी एक बोझ।

७

नाभिनाल - संबंध

आदिवासियों के लिए
जीविका का साधन मात्र
नहीं हैं जंगल,
सांस्कृतिक और आत्मिक
रिश्ता है जंगलों से,
प्राण हैं उनके जंगल,
जंगल से उनका
नाभिनाल- संबंध जो ठहरा।

८

जंगल - स्नान

जंगल - स्नान
प्रकृति चिकित्सा का
सर्वोत्तम संसाधन।
जंगल की हरियाली
पत्तों - फूलों के विविध रंग
फलों - फूलों का सुगंध
वृक्षों की डालियों से
छनकर आती किरणें
नदियों - झरनों की कल-कल करती
आवाजें
शारीरिक, मानसिक, अध्यात्मिक
उर्जा की सकारात्मक स्रोत हैं
जो हमें मिलता है
जंगल से
जंगल स्नान से।

दीपक कुमार त्यागी
वरिष्ठ पत्रकार व राजनीतिक विश्लेषक

आलेख

विलक्षण प्रतिभा के धनी अनूठे गीतकार और शायर 'शिवकुमार बिलगरामी'

हमारे देश में हर क्षेत्र में विलक्षण प्रतिभाओं की कोई कमी नहीं है, कमी है तो बस समय रहते हुए सक्षम लोगों के द्वारा प्रतिभाओं को पहचान कर उन्हें उचित मंच पर जीवन की दशा व दिशा को परिवर्तित करने वाले एक बहुत ही महत्वपूर्ण अवसर देने की है।
लेकिन देश-दुनिया में हमेशा कुछ ऐसी विलक्षण प्रतिभाएं अवश्य होती हैं जो कि सर्वशक्तिमान ईश्वर के आशीर्वाद से विपरीत से विपरीत परिस्थितियों में भी अपने बुलंद हौसलों के बलबूते अपनी पहचान बनाने में कामयाब हो ही जाती है। देश की ऐसी ही एक बहुत ही बेहतरीन शख्सियत हैं कवि, शायर, गीतकार, लेखक शिवकुमार 'बिलगरामी'।

इनके निजी जीवन की बात करें इस शानदार व्यक्तित्व वाले इंसान शिवकुमार 'बिलगरामी' का जन्म 12 अक्टूबर, 1963 को एक आम साधारण परिवार की घरेलू महिला माता लक्ष्मी देवी पिता रघुबर सिंह की संतान के रूप में उत्तर प्रदेश के हरदोई जनपद की बिलग्राम तहसील के गांव महसोना मऊ (कटरी ज़फ़रपुर) में हुआ था, इनके दो भाई व चार बहनें हैं, जिसमें यह पांचवें नंबर की संतान हैं। इनके पिता खेती किसानी करके अपने परिवार का जीवन यापन करते थे, इनकी प्रारंभिक शिक्षा बी 'जी आर इंटर कालेज बिलग्राम' से हुई, बाद में उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय से अंग्रेज़ी साहित्य में एम ए किया। इनको प्रारंभिक जीवन से ही लेखन, शायरी आदि शौक था, अपने इस हुनर को यह छोटे-बड़े मंचों से समय-समय पर दिखाते रहे। लेकिन शिवकुमार 'बिलगरामी' के अपने इस हुनर को सार्वजनिक मंच पर पहचान वर्ष 2012 में दिल्ली हाट के एक कार्यक्रम में मिली, जहां उपस्थित अतिथियों, सहयोगियों व दर्शकों ने उनके हुनर की दिल खोलकर तारीफ की, जिसके पश्चात कवि व गीतकार के रूप में शिवकुमार 'बिलगरामी' को नितनये अवसर मिलते चले गये और जीवन पथ पर वह सफलता की सीढ़ियां चढ़ते चले गये, उन्होंने फिर कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा और अपनी लगन व मेहनत के बलबूते शिवकुमार 'बिलगरामी' आज के दौर के देश के एक बहुचर्चित गीतकार और प्रतिष्ठित शायर हैं। वर्तमान में आप भारतीय संसद के लोकप्रिय सदन लोकसभा में संयुक्त निदेशक पद पर कार्यरत हैं और दिल्ली में निवास करते हैं।

शिवकुमार 'बिलगरामी' की हिन्दी, उर्दू , संस्कृत और अंग्रेज़ी भाषा पर बेहद मजबूत पकड़ हैं, इन्होंने इन सभी भाषाओं में विभिन्न काव्यों का सृजन किया है। वैसे तो आप मूलतः गीत और ग़ज़ल विधाओं में काव्य सृजन करते हैं लेकिन हिन्दी काव्य की अन्य विधाओं में भी आप बख़ूबी कलम चलाते हैं।

अभी तक इनके दो ग़ज़ल संग्रह 'नई कहकशां' और 'वो दो पल' नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। 'नई कहकशां' हिंदी और उर्दू में द्विभाषी ग़ज़ल संग्रह है। 'वो दो पल' हिन्दी देवनागरी लिपि में प्रकाशित ग़ज़ल संग्रह है, इस ग़ज़ल संग्रह को 'उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान' द्वारा वर्ष 2018 में प्रतिष्ठित 'अदम गोंडवी' सम्मान से नवाजा गया है। इनकी "नई कहकशां" और "वो दो पल" की कई ग़ज़लों को देश-विदेश के कई प्रतिष्ठित ग़ज़ल गायकों के द्वारा भी गाया गया है, जिनमें से प्रमुख नाम इस प्रकार हैं- शाद ग़ुलाम अली , पं० अजय झा , रियाज़ खान (मुंबई), राजेश सिंह , सतीश मिश्रा, आख्या सिंह, कालू सिंह कमल , विजय पटनायक, ग़ुलाम साबिर इत्यादि। इनकी ग़ज़लों को म्यूजिक टॉवर (Musictower) यूट्यूब चैनल पर भी सुना जा सकता है।

एक शायर होने के साथ-साथ शिव कुमार बिलगरामी एक अच्छे गीतकार भी हैं। इनके लिखे गीतों को बहुत प्रसिद्धि मिली है। इनके लिखे एक गीत - "जयहिन्द वन्दे मातरम्" को अनुराधा पौडवाल, साधना सरगम, के एस चित्रा, जसपिंदर नरूला, हेमा सरदेसाई, महालक्ष्मी अय्यर, सुरेश वाडेकर, अभिजीत, शान और कैलाश खेर जैसे बॉलीवुड के प्रतिष्ठित गायकों ने अपनी सुरीली आवाज दी है। इनके लिखे एक अन्य गीत "पृथ्वी मंथन" को उड़ीसा की 'लता मंगेशकर' कही जाने वाली 'सुस्मिता दास' ने अपनी सुरीली आवाज़ में ढालने का कार्य किया है। इस गीत को कई राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। यह गीत यूट्यूब पर पृथ्वी मंथन (Prithvi Manthan) के नाम से सर्च कर सुना जा सकता है।
शिवकुमार 'बिलगरामी' द्वारा लिखी गई कुछ अन्य रचनाएं वर्तमान दौर के हिन्दी संस्कृत साहित्य की सर्वश्रेष्ठ कृतियों में से एक हैं। श्री गणेश स्तुति, शिव स्तुति, दुर्गा स्तुति (जय जगदम्बे), श्री राम स्तुति तथा श्री हनुमत् ललिताष्टकम् इनमें से प्रमुख रचनाएं हैं। उक्त रचनाओं में से अधिकतर को 'सुश्री आख्या सिंह' ने गाया है और ये संस्कार म्यूजिक (Sanskar Music) तथा म्यूजिक टॉवर (Musictower) यूट्यूब चैनलों पर उपलब्ध हैं । इनके अलावा यह विश्व के सभी ऑडियो प्लेटफॉर्म पर सुनी जा सकती हैं।

शिवकुमार 'बिलगरामी' को इनके साहित्यिक योगदान के लिए देश की कई प्रतिष्ठित साहित्यिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित किया गया है। इनके कुछ मशहूर शेर इस प्रकार हैं।

न तो अक्स हूं न वुजूद हूं मैं तो जश्न हूं किसी रूह का
मुझे आईनों में न देख तू मुझे ख़ुशबुओं में तलाश कर।

बात करने का सलीक़ा मैंने पाया जिसमें
इक वही शख़्स मुझे शहर में ख़ामोश मिला।

हंसते रहते हो ग़म-ओ-रंज छुपाने के लिए
तुम भी क्या ख़ूब पहेली हो ज़माने के लिए।

हमदर्द कैसे-कैसे हमको सता रहे हैं
कांटो की नोक से जो मरहम लगा रहे हैं।

मेरी ज़बान में ऐसा तिलिस्म हो कोई
जिसे हसीन कहूं वो हसीन हो जाए।

शिवकुमार 'बिलगरामी' अपनी इस विलक्षण प्रतिभा को 'माँ सरस्वती' दिया हुआ विशेष आशीर्वाद मानते हैं, वह कहते हैं कि मैं आज जीवन में जिस भी मुकाम पर पहुंचा हूं, वह मेरे माता-पिता, गुरुजनों, परिजनों, शुभचिंतकों की देन है।

।। जय हिन्द जय भारत ।।
।। मेरा भारत मेरी शान मेरी पहचान ।।

बृज राज किशोर 'राहगीर'

ईशा अपार्टमेंट, रुड़की रोड, मेरठ

गज़लें

(१)

वक़्त को भी वक़्त थोड़ा दे दिया जाए कभी।
सोचता हूँ आजकल, ऐसा किया जाए कभी।

रसभरी यादें इकट्ठा कर मथानी से मथूँ,
रस यही फिर, घूँट भर-भर कर पिया जाए कभी।

ज़ख़्म सब रिसते हुए खुलकर उधेड़ूँ एक दिन,
बैठ तेरे सामने, उनको सिया जाए कभी।

दाग़ ये रुसवाइयों के बस मुझी पर क्यूँ लगें,
नाम तेरा, सामने सबके लिया जाए कभी।

बोझ ढोने की भला क्यूँ है बुरी आदत मुझे,
याद से दामन छुड़ा कर भी जिया जाए कभी।

२)

इतने अरसे से मेरा साथ निभाने वाले।
मेरी गलती तो बता रूठ के जाने वाले।

तू मेरी जान का दुश्मन तो नहीं हो सकता,
सारी दुनिया में मेरी जान कहाने वाले।

मुझको मौक़ा तो मिले तेरी मदद करने का,
अपने अहसानों का अहसान जताने वाले।

तूने देखी ही नहीं प्यार की ताक़त अब तक,
दिल के दरिया में उतर, खूँ में नहाने वाले।

तेरा दामन भी है नज़दीक इन्हीं शोलों के,
सबके हाथों में मशालों को थमाने वाले।

(३)

ज़िंदगी भर जो वफ़ाओं की क़सम खाते रहे।
वक़्त आने पर दग़ा देकर निकल जाते रहे।

बेहतर करने चले थे जो हमारी ज़िंदगी,
हाथ से मेरे निवाला छीन कर खाते रहे।

खोखला करते रहे हैं नींव जो इस देश की,
घूम-फिर वे ही सियासत में जगह पाते रहे।

बस मियाँ, ईमान की तो बात ही मत कीजिए,
झूठ को ही सच बताकर सामने लाते रहे।

हाथ में जिनके चमन की आबरू सौंपी गई,
बोलियाँ वे ही चमन की रोज़ लगवाते रहे।

डॉ. कान्ति लाल यादव
एसोसिएट प्रोफेसर (हिंदी विभागाध्यक्ष)
माधव विश्वविद्यालय पिंडवाड़ा सिरोही

"पुस्तकें मानव के जीवन का ज्ञानाधार हैं"

पुस्तकों का महत्त्व हर युग में रहा है और आगे भी रहेगा। पुस्तकें हमारे जीवन का बहुत बड़ा खजाना है। पुस्तकों का जितना खर्च करने पर, उपयोग करने पर यह खजाना सदा बढ़ता रहता हैं। पुस्तकें मानव को जीवन जीने की कला को सिखाती हैं। एक इंसान को सही रूप से इंसान बनाने का काम करती है। पुस्तके मानव के लिए बौद्धिक खजाना है। उसे तार्किक बनाती है।विवेकी बनाती है। आदरणीय एवं सम्मानीय बनाती है।अच्छी पुस्तकें इंसान को ज्ञान-मान- सम्मान दिलवाती हैं। इससे बड़ी बात एक इंसान को सच्चा इंसान बनाती है। बुराइयों का नाश करने हेतु इंसान को प्रेरित कर एक आदर्श समाज, राष्ट्र की प्रेरणा देने का उत्तम कार्य करती।पुस्तके हमें प्रेम करना सिखाती है एवं सदाचरण और उत्तम व्यवहार का संदेश देती। पुस्तकें बचपन से बुढ़ापे तक की साथी है। पुस्तकें मनुष्य को अमर कर देती है। मानव मर जाता है किंतु व्यक्ति के विचार पुस्तकों के माध्यम से जिंदा रहते हैं। स्वस्थ जीवन की तरह स्वस्थ मन को पुष्ट करती है। सदा सद्कार्य की ओर प्रेरित करती है।विश्व पुस्तक के रूप में यूनेस्को ने 23 अप्रैल 1995 को इस दिवस को मनाने की शुरुआत की थी।पेरिस में हुई एक आम सभा में यूनेस्को ने यह फैसला लिया था कि पुस्तकों के प्रति रुचि पैदा करने हेतु यह दिवस मनाया जाए।

23 अप्रैल को विलियम शेक्सपियर और प्रमुख स्पेनिश इतिहासकार इंका गार्सिलासो डे ला वेगा और मिगुएल डे सर्वेन्सट्स की पुण्यतिथि का प्रतीक है तो मैनुएल मेजिया वल्लेजो और मैरिस ड्रूम इस दिन पैदा हुए थे। इन साहित्यकारों को ध्यान में रखते हुए यूनेस्को ने यह फैसला लिया था कि इन साहित्यकारों की जन्म और मृत्यु इसी तारीख को होने की वजह से विश्व पुस्तक दिवस के रूप में मनाई जाए।"वर्ल्ड बुक डे" और विश्व कॉपीराइट डे 23 अप्रैल को मनाने की घोषणा हुई थी।

आज विश्व पुस्तक दिवस दुनिया के 100 से अधिक देशों में मनाया जाता है। हर वर्ष इस दिवस की थीम होती है जो हमें एक नया संदेश देती है। 2021 की थीम "एक कहानी साझा करें" थी। 2022 की थीम "पढ़ें तो आप कभी अकेला महसूस ना करें" है।कार्लाईल ने कहा था पुस्तकों का संकलन ही आज के युग का वास्तविक विद्यालय है।" डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर ने कहा था -"जिस दिन मेरे देश के युवा मंदिर-मस्जिदों की कतारों के बजाय पुस्तकालयों में कतार लगाने लग जाएंगे उस दिन भारत का निर्माण स्वत: होने लगेगा।" उनके निजी पुस्तकालय "राजगृह" में 50000 से भी ज्यादा किताबें थी।

सबसे शांत व स्थिर है, वे सलाहकारों में सबसे सुलभ और बुद्धिमान होती हैं और शिक्षकों में सबसे धैर्यवान तथा श्रेष्ठ विद्वान चार्ल्स विलियम इलियट ने कहा था-" पुस्तकें मित्रों में होती है।

" डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने कहा था "पुस्तके वह साधन है जिसके माध्यम से हम विभिन्न संस्कृति एवं समाज के बीच सेतु का निर्माण कर सकते हैं।"

श्रेष्ठ पुस्तकें हमारे लिए ज्ञानार्जन कराती है।मार्गदर्शन देती है। हमारे भविष्य का निर्माण करती है और हमारे व्यक्तित्व का निर्माण करती है। अच्छी पुस्तकें एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक ज्ञान को पहुंचाकर हमारे ज्ञान संपदा को बढ़ाती है। पुस्तकें ज्ञानियों को रत्नों से जड़ित माला के समान आनंद प्रदान करती है।मन को प्रफुल्लित करती है। सद्साहित्य सदा संस्कृति का गौरव होता है। अच्छी पुस्तकें मानवीय मूल्यों का निर्माण कर आदर्श जीवन का मार्ग प्रशस्त करती है। उत्तम किताबें ज्ञान -ध्यान- विज्ञान और तर्क- वितर्क से अवगत तो कराती ही है साथ में एक नवीन दिशा भी प्रदान करती है। किताबें हमें संकट के समय मार्गदर्शन और दिग्दर्शन करती हैं। साथ में हमें किसी भी परिस्थिति में एक समान सम-नम रहने की शक्ति प्रदान करती है। हमे सदा किताबों से मित्रता करनी चाहिए। पुस्तकों से बड़ा कोई श्रेष्ठ मित्र नहीं है।पुस्तके मनुष्य जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है बाकी सब किस्सा है। सत्यता की कसौटी पर कसी हुई और यथार्थ से परखी गई पुस्तकों में बहुत बड़ी ताकत है।वह पीढ़ियों को बदलने का सामर्थ्य रखती है।विश्व पुस्तक दिवस पर अच्छी पुस्तकों का संकलन कर उसे जरूर पढ़ें और औरों को भी पढ़ाएं उनमें (पाठकों में) जिज्ञासा तथा रुचि पैदा करनी चाहिए।अच्छी पुस्तकें हमारे अंत करण का परिमार्जन कर आत्माभीव्यक्ति का सशक्त माध्यम बन जाती है। आज के युवाओं को पुस्तकों को पढ़ाने के लिए पुस्तकालय की ओर रुख करना चाहिए। पुस्तकालय हमारे बौद्धिक संपदा का भंडार है। नालंदा और तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालयों में पुस्तकालय विश्व के गौरवशाली पुस्तकालयों में से थे।

आज के बच्चों के हाथों में हथियार के बजाय और मोबाइल के बजाय पेन और अच्छी पुस्तकों की जरूरत है। इन्हीं संस्कारों से परिवार, समाज, राष्ट्र और दुनिया में एक सकारात्मक बदलाव लाया जा सकता है। जिसकी आज दुनिया में सबसे ज्यादा जरूरत है।आज के इंटरनेट के जमाने में ई- बुक तो सहज प्राप्त होती है किंतु साथ ही मन को दूषित करने वाला ज्ञान भी सहेज मिल रहा है।इससे बच्चों को एवं युवा पीढ़ी को बचाने की भी आवश्यकता है। तभी चरित्रवान पीढ़ी का कल्याण संभव है। पुस्तकों की दुनिया अपनी निराली है। इंटरनेट अपनी जगह है। पुस्तक और पुस्तकालय की हॉड़ इंटरनेट कभी नहीं कर सकता है। हमें, इंटरनेट कभी भी पुस्तकों की गंध । पुस्तकों से खुशी नहीं दे सकता है।

आध्या रेणु
उदयपुर , राजस्थान
मौसम भीगा - भीगा सा anthology में रचनाएं प्रकाशित।
नवोदित लेखिका

"रायचंद"

वैसे हमारे देश मे, रायचंदो की कमी नहीं... अरे नहीं समझे, वही जो हर गली, हर मुहल्ला और हर घर में पाए जाते है, यहां तक कि बच्चों में भी रायचंद खूब मिलते है, अब भी नहीं समझे.. अरे वहीं मुफ्त के सलाहकार, ओहो अब तो समझे ना, चलो अच्छा है समझ तो गए। हां तो मैं ये बता रही थी कि ये लोग.. इनमें मैं भी एक नंबर की रायचंद हूँ, कभी जरूरत पड़े तो हमको तकलीफ दीजियेगा, एक से बढ़कर एक राय देंगे (चलो ये तो हुआ अपना प्रचार) हाँ तो फिर विषय पर आते है, मैं कह रही थी कि ये लोग हर जगह पाए जाते है...आपका भी पाला इनसे पड़ा होगा, नहीं तो सलाहकार तो आप भी बने होंगे।

ऐसे सलाहकार यानी कि रायचंद आपकी हर मुश्किल को यूँ चुटकियों में हल कर देंगे.. हाँ किन्तु कभी - कभी आपका बंटाधार भी हो सकता है,... कैसे?.. अभी बताते है. हुआ यूँ कि हमको जुकाम हुआ और क्या.. हम सोचे doctor के पास जाएंगे समस्या बढ़ जाये उससे पहले, अब क्या करे पहले जैसा कुछ रहा नहीं, अब तो छींक आए तब भी डॉक्टर को दिखाना जरूरी है, हम निकलते उससे पहले हमारी अम्मा जी बोली "बात - बात पर डॉक्टर का बिल बढ़ा दो, जाओ अदरक वाली काली चाय पियो" हमने कहा ठीक है, चाय पीकर देखते है, चाय पी ली, पर चाय पीने मात्र से जुकाम जाता है भला, हमारी भाभी आयी बोली, "अम्मा जी को क्या पता, हम बताते है बढ़िया नुस्खा", हमने कहा आप भी बताओ, वो अदरक काली मिर्च, लोंग जाने क्या -क्या कूटकर ले आयी बोली पियो हमने वो भी पी ली.. फ़िर बोली "कुछ मिला आराम.?" हमने कहा" पीते ही मिलेगा क्या?" भाभी बोली "ठीक है फिर तुम आराम करो" कहकर निकल ली..।

शाम को हमारे मित्र आये और बोले " सुना है तुम्हारी तबियत खराब है", हमने कहा " हाँ, जुकाम लगा है ".. वो बोले "अरे यार, तेरे लिए तो जान भी हाजिर है, देख तेरे जुकाम के लिए रामबाण इलाज लाए है, इससे जुकाम क्या, corona के बाबुजी भी तुम्हारे पास नही पटकेगें, हमारे मशहूर हकीम की दवा है ".. हम खुश हमारे मित्रगण को हमारी कितनी चिंता है, खैर हमने दवा ली और उन्होंने विदा ली,.. अब क्या बताये, हमने सबकी राय मानी जिसने जो कहा सब किया, बस Doctor के पास ही ना गए,..अब जुकाम के लिए Doctor के पास कौन जाता है, किंतु अब मौसम गडबडा रहा था, अब क्या कहें , दवा का असर तो हुआ पर जहां होना था वहीं ना हुआ।

अब तो जाना ही है डॉक्टर के पास और बिल भी बनेगा लम्बा, क्या करे जुकाम तो मामूली ही था, पर सलाह महंगे हो गए। अब पूरा चेकअप कराएंगे।

इसी बात पर एक किस्सा याद आया जो कमलेश जी ने सुनाया था, और उसका महत्व अब पता चला... तो आप भी सुनिए हुआ यूं कि कमलेश जी के मित्र है कोई, पाठक साहब, उन्होंने रेस्टोरेंट खोला, अब बेरोजगार आदमी कुछ तो करेगा ही ना, बहुत शानदार रेस्त्रां और लज़ीज़ पकवान, खाना क्या ही कहने किन्तु उनकी आदत थी जो भी customer आते पूछते

"आपको कैसा लगा खाना",

सबका test अलग अलग होता है, तो सब सलाह देते इसमें ये होना चाहिए, वो होना चाहिए, कुछ भी ना मिलता तो यही सुनने को मिलता

"भाई सहाब आपका खाना बहुत महंगा है",...

धीरे - धीरे पाठक साहब परेशान हुए, सोचे इतनी कमियां है कि क्या बतायें, और क्या करे, उन्होंने कमलेश जी से कहा

"मित्र, ये रेस्तरां खोलकर गलत तो ना किया मैंने",

कमलेश जी ने पूछा, "क्यों, क्या हुआ,..?".. वो बोले "जो भी आता है, कमियाँ निकालता है और, सलाह और देकर जाता है, हम बडे परेशान हो गए, क्या करे हमारे customer असन्तुष्ट है,".. कमलेश जी बोले, "भाई तब तो तुम कभी सफल नहीं हो पाओगे, " पाठक जी पूछे," क्यों? ".. कमलेश जी बोले "भाई बात ऐसी है कि आपके काम से कोई भी, कभी भी संतुष्ट नहीं हो पाएगा, आज आप रेस्तरां बंद कर दोगे, कुछ नया करोगे फिर कोई कुछ कहेगा आप वो भी बंद कर दोगे फिर सफ़ल कैसे होंगे?" पाठक साहब बोले" सही कह रहे हो भाई, कमलेश जी.."

हाँ मैं तो सही कहता हूँ और सही राय देता हूँ, और सब ही सही राय ही देते है, किंतु आपको उनमें से क्या लेना है और क्या छोड़ना है खुद ही तय करना होगा" नहीं तो अपना बंटाधार कीजिए,"।

जैसे हमने कराया, अब हम चलते डॉक्टर के पास, आप ज़रा विचार कीजिए नहीं समझ आये तो हमसे सलाह लीजिए, यानी कि राय, ऐसे सलाहो का झोला भरा है हमारे पास।

प्रोफेसर शामलाल कौशल
मकान नंबर 975 बी
ग्रीन रोड
रोहतक 124 001 हरियाणा

क्या मैं पागल हूं?

पागलपन दिमाग की एक ऐसी स्थिति है जब आदमी उसी तरह ना तो सोच सकता है और ना ही उसी तरह व्यवहार करता है, जिस तरह की उससे ऐसा करने की आशा की जाती है? जब आदमी को ऐसा लगे कि वह पागल है तो उसकी तर्कशक्ति काम नहीं करती, वह ठीक और गलत में फर्क नहीं समझ पाता, वह कोई भी निर्णय लेने में अपने आपको समर्थ नहीं समझता! कई बार आपने देखा होगा कि कोई आदमी किसी समस्या या किसी व्यक्ति से तंग होकर यह कहता है... इसने तो मुझे पागल कर दिया है! कई बार हम किसी व्यक्ति के व्यवहार को ध्यान में रखकर क्या कहते हैं..... पागल है साला! शेक्सपियर के अनुसार.... हर आदमी किसी ना किसी तरह से पागल तो होता है, लेकिन आश्चर्यजनक बात यह है कि वह इस बात को कभी स्वयं स्वीकार नहीं करता, हां, इस किस्म की बात वह दूसरों के बारे में पुरजोर दावे से जरूर कहता है! पागल आदमी को कुछ याद नहीं रहता, वह जल्दी-जल्दी भूलने की बीमारी से ग्रस्त हो जाता है! कई बार वह किसी काम को करके भूल जाता है और जिस काम को नहीं किया होता, उसे लगता है कि उसने यह काम कर लिया है! कई बार तो अपनी जान पहचान के लोगों को वह पहचानने में गलती कर बैठता है! साहब, 78 की उम्र पार कर चुका हूं! कई बार मुझे लगता है कि शायद मैं भी पागल हो गया हूं! बहुत सारी बातें भूलने लगा हूं, याददाश्त शक्ति कम हो गई है, कई बार नहा कर या टूथपेस्ट कर कर वापस आता हूं तो कुछ टाइम के बाद मुझे ऐसा लगता है कि जैसे मैंने अभी तक ना तो टूथपेस्ट किया है और नहाया भी नहीं! कई बार तो रोटी खाने के बाद भूल जाता हूं और महसूस होता है अभी तक मैंने रोटी नहीं खाई! साहब, यह सब पागलपन के लक्षण नहीं तो और क्या है! इस मामले को लेकर मैंने बहुत सारे लोगों से सलाह मशवरा किया है, वह सीधे-सीधे स्पष्ट तौर पर तो मुझे कुछ नहीं कहते, लेकिन उनसे बातचीत करने के बाद मुझे अप्रत्यक्ष तौर पर उनके चेहरे को देखकर उनकी सहमति का एहसास जरूर होता है! आजकल मैं इसी पागलपन में लिखने लिखाने का काम कुछ ज्यादा ही करने लगा हूं, फेसबुक पर तथा व्हाट्सएप पर कुछ ज्यादा ही सामग्री डालने लग गया हूं, दूसरों की पोस्ट को अपेक्षाकृत ज्यादा ही लाइक या कमेंट करने लगा हूं, ऐसा करते करते कई बार रात को 2 बज जाते हैं फिर भी सोए सोए यह महसूस होता है कि मैंने अमुक काम तो किया ही नहीं! क्या मेरी इन हरकतों को देखकर आपको लगता नहीं कि मैं पागल हो गया! हां, इस बात को मैं स्वीकार करता हूं की कई बार घर गृहस्ती के विभिन्न झमेले मुझे जरूर पागल कर देते। कई बार मैं इतना क्रोधित हो जाता हूं कि बाद में मुझे महसूस होता है कि मैं कहीं पागल तो नहीं हो गया।

पागल आदमी कई बार अपने आप ही हंसता रहता है, अपने आप ही बोलता रहता है, अपने आप से खुद बातें करता रहता है, कभी तो बहुत समझदार लोगों की तरह बात करता है और कभी बिल्कुल बेवकूफ, लापरवाह तथा अनाड़ी आदमी की तरह व्यवहार करता है। हां एक आपको राज की बात बताता हूं। वह यह कि आजकल मैंने अपनी तरह बहुत सारे लोगों को पागलपन का दौरा पड़ते हुए देखा है। पागलपन में क्रोध में अपने बाल नोचने लग जाते हैं,, चीजों को उठाकर तोड़फोड़ करनी शुरू कर देते हैं, दूसरों के साथ मारपीट करना शुरू कर देते हैं, और कई बार अपना सर पकड़ कर जमीन पर बैठकर रोना शुरू कर देते हैं और कई बार तो पश्चाताप करना शुरू कर देते हैं। एक अनुमान के अनुसार हमारे देश में लगभग 7% लोग पागल हैं। जिन्हें नियमित तौर पर इलाज के लिए मनोवैज्ञानिक डॉक्टर के पास जाने की जरूरत है।

पागल आदमी का दिमाग कभी भी संतुलन में नहीं रहता।

कोई भी आदमी बिना किसी बात के पागल नहीं होता! अपना मानसिक संतुलन नहीं खोता। पागल होने से पहले आदमी अत्यधिक मानसिक तनाव या फिर किसी समस्या के दबाव में होता है जिसका समाधान वह नहीं ढूंढ पाता, उसे चिंता, फिक्र, डर या फिर कोई अनहोनी घटना डराती रहती है। कई बार पारिवारिक झगड़े भी हमारी मानसिक तनाव का कारण बनते हैं। बेटे और बाप की नहीं बनती, सास बहू की बनती, बेटा घर से अलग होना चाहता है, बहु घर से भाग गई, बेटी शादी से पहले किसी और के साथ भाग गई। ऐसी स्थिति में आदमी बेबस तथा लाचार हो जाता है, किंकर्तव्यविमूढ़ की स्थिति में पहुंच जाता है। उसे समझ में नहीं आता की वह क्या करें और क्या ना करें। सभी लोगों की अपनी अपनी समस्याएं होती हैं जो कि उसके पागलपन के लिए जिम्मेदार होती हैं। पढ़ लिख कर नवयुवक अपनी पसंद की नौकरी बहुत ऊंचे वेतन पर चाहता है, वह उसे मिलती नहीं। परिणाम स्वरूप उसके दिमाग पर अप्रत्याशित तौर पर बहुत ज्यादा तनाव का प्रभाव हो जाता है। उसे अपने सुनहरे सपने टूटते हुए दिखाई देते हैं। कई बार आदमी अपने व्यापार में बहुत सारा पैसा निवेश करता है, घरबार गहने आदि सब कुछ गिरवी रख देता है, बैंकों तथा मित्रों से लोन लेता है, कई बार अपने विश्वास के एक दो पार्टनर भी रखता है। दुर्भाग्यवश वह काम नहीं चलता। मित्र लोग भी धोखा दे

जाते हैं , सिर्फ अपना पैसा ही नहीं डूबता बल्कि बैंक लोन वापस करने की भी समस्या उत्पन्न हो जाती है। परिणाम स्वरूप तनाव,,,,,,,. पागलपन के तौर पर ही आता है! कई बार वह जीन परिवार जनों, मित्रों, सहयोगियों, रिश्तेदारों के साथ ईमानदारी तथा समर्पण भावना के साथ रहता हो, वे सब उसकी सीधे पन, ईमानदारी, कठिन मेहनत, सच्चाई को उसकी मूर्खता मानकर उसका दुरुपयोग करते हैं, उसका मजाक करते हैं, उसे..... नाटक बाज..... कहते हैं! उसके साथ ईर्ष्या करते हैं! वह यह सब सहन नहीं कर पाता, उसका दिल टूट जाता है, वह बहुत परेशान हो जाता है, कई बार आत्महत्या करने पर भी उतारू हो जाता है, अगर वह ऐसा नहीं करता तो उसके मन पर अत्यधिक तनाव तो बरकरार ही रहता है इसकी वजह से उसका किसी के साथ बातचीत करने को मन नहीं करता, खाने-पीने को दिल नहीं करता, उसे कुछ अच्छा नहीं लगता,! ऐसी स्थिति में कई बार वह पागल हो जाता है!

पागलपन के कई और भी कारण हो सकते हैं! पागल असमंजस की स्थिति में रहता है! उसके मन में निराशा, हताशा तथा किसी काम को करने में कोई दिलचस्पी नहीं रहती! बहुत बार उसका मन किसी को गोली मार देना वह करता है, कभी कभार निराशावश वह आत्महत्या करना ही सभी समस्याओं का समाधान समझता है। कई बार आपने देखा होगा की गंभीर अवस्था वाले तथा हिंसा पर उतारू पागलों को अस्पताल में बिस्तर पर चैन से बांधकर रखा जाता है। कुछ पागल इलाज करने वाले डॉक्टर को गालियां भी निकालते हैं, उनके साथ मारपीट भी करते हैं। ऐसी आक्रमणता वाले मरीजों को डॉक्टर नींद का इंजेक्शन लगा कर सुला देते हैं। वैसे तो कोई भी आदमी किसी भी उम्र में पागल हो सकता है। लेकिन 15 से 35 साल तक की उम्र के मरीज ज्यादा पागल हो जाते हैं उसका मुख्य कारण उनकी महत्वाकांक्षा, सुनहरी सपनों का टूटना, उनकी इच्छा अनुसार कुछ भी ना होना, प्रेम में असफल होना, जीवनसाथी या घनिष्ठ मित्र का सदा सदा के लिए बिछड़ जाना, परीक्षा में उम्मीद के मुताबिक ऊंचे अंको का प्राप्त ना होना आदि आदमी को पागल बनाने के लिए काफी है

पागलपन एक मानसिक समस्या है। अगर किसी आदमी को कोई गंभीर बीमारी है, वह अकेला जीवन व्यतीत कर रहा है, वह अपने मन की बात किसी से नहीं कह सकता, वह अवसाद में चला जाता है, वह अपने मन की भड़ास नहीं निकाल पाता। उसके दिमाग पर बहुत सारा तनाव हावी हो जाता है जोकि उसके पागलपन का कारण बनता है। यह परिवार, समाज, मित्रों तथा शुभचिंतकों का कर्तव्य है की अगर कोई व्यक्ति किसी कारण से तनावग्रस्त है, निराश है, बहकी बहकी बातें कर रहा है, उसका किसी काम में या बात में मन नहीं लगता, उसको सांत्वना दी जाए, मनोवैज्ञानिक चिकित्सक के पास ले जाया जाए,, उसका इलाज कराया जाए, उसे परमात्मा पर भरोसा रखने की सलाह दी जाए तथा बहुत शीघ्र ठीक हो जाने का आश्वासन देने की कोशिश की जाए, उसे कभी भी अकेला ना छोड़ा जाए, उसके तनाव को कम करने के लिए उसकी काउंसलिंग की जाए और उसे आवश्यक दवा भी दी जाए। सरकार को भी चाहिए बेकार लोगों को उनकी योग्यता तथा अनुभव के अनुसार वेतन देकर उनको काम दे, माता-पिता को भी चाहिए कि वे अपने बच्चों को परीक्षाओं में अच्छे नंबर लेने के लिए ज्यादा से ज्यादा मेहनत तो कराएं लेकिन अगर दुर्भाग्यवश आशा अनुकूल नंबर नहीं आते तो वह लोग अपने बच्चों का मनोबल बढ़ाने की कोशिश करें, उन्हें सांत्वना दें और अगली परीक्षा में और ज्यादा अच्छे अंक प्राप्त होने की उम्मीद दिलाएं, उनके मन में एक सीमा से ज्यादा महत्वाकांक्षा पैदा ना करें। पागलों के प्रति हमारा रवैया सहानुभूति वाला होना चाहिए।

जब मैं उपर्युक्त बातों को बहुत बार अपने पर लागू करने की कोशिश करता हूं, तो कई बार मुझे ऐसा लगता है की मैं भी पागल हो गया, लेकिन कुछ समय के बाद मैं अपने आप को समझाता हूं कि नहीं ऐसी कोई बात नहीं। हां, यह बात अलग है कि कभी कभार मैं किसी ना किसी बात को लेकर पागलों की तरह है व्यवहार जरूर करने लग जाता हूं, जिसका की बाद में मुझे पछतावा भी होता है।

हास्य कविता

बलविंदर बालम

ओंकार नगर गुरदासपुर पंजाब

"ओ चाचा "

संत श्री अकाल ओ चाचा।
क्या है तेरा हाल ओ चाचा।
किधर चला है किधर से आया,
मस्त बड़ी है चाल ओ चाचा।
ठाठ जवानी तीरों जैसी,
मगर बुढ़ापा ढ़ाल ओ चाचा।
बारिश भांति आंसू गिरते,
किस का पास रूमाल ओ चाचा।
इतने मीठे सुर में गाते,
वाह बहुत कमाल ओ चाचा।
चेहरे पर झुर्रियां नहीं पड़ती,
आयु कितने साल ओ चाचा।
पहले थोड़ी पीनी थी ना,
ख़ुद को अब संभाल ओ चाचा।
अब तो शर्म हया कुछ कर ले,
चांदी हो गए बाल ओ चाचा।
सुन्दर मुखड़े सुन्दर होते,
बच कर रह भूचाल ओ चाचा।
कब्रिस्तान में क्या ढूंढे है,
किस की तुम को भाल ओ चाचा।
खुशबूओं को ढूंढ रहा है,
सूख चुकी यह डाल ओ चाचा।
बालम ढूंढ रहा है तुझ को,
तेरी जांच पड़ताल ओ चाचा।

दिनेश गंगराड़े
निपानिया, इंदौर,452010मप्र

हास्य व्यंग्य

"बदी कर,समंदर में डाल"

अब वो जमाना ना रहा,जब लोग नेकी कर भूल जाया करते थे, उस भलमनसाहत को दरिया में डाल दिया करते थे।नेकी,अब लोग भूलने लगे हैं और 'नेकनीयती' गधे के सिर से सींग की तरह गायब हो रही है।"बदी का बोलबाला,नेकी का मुंह काला" सा चलन बन गया है।नेकी सिसकने,बदी सिर पर चढ़कर बोम मारने लगी है।बदी ख़रीखट्ट और नेकी पर लोग शक करने लगे है।कोई सच उगले तो संदेह तथा झूठ बके तो सत्य जान पड़ता है।यदि गलती से भी नेकी घट जाए तो सामने वाले को झंझोड़-झंझोड़ कर लोग स्मरण करावे कि अगले ने तुम्हारे साथ निम्नानुसार 'नेकी' की वारदात की है।आमजीवन में 'बदी' इतनी घटने लगी है कि वो ख्यात, सुकर्म होने लगी है जबकि नेकी बेचारी बदनामी के कगार पर है?बदी की जगप्रसिददी के सम्मुख नेकी ठिगनी,फूहड़,गंदी, कालिखपुती सी दिखने लगी है, शरमाने लगी है।जब लोग नेकी करना भूलने लगे हैं तो उसे दरिया,नदी-नाले में डालने का तो प्रश्न ही पैदा नही होता?नेकी अब इतिहास की दर्लभ,संग्रहणीय, आकर्षित वस्तु होने लगी है।जब बताते हैं कि 'फलां' ने 'अमके' को दुर्घटना में मदद की या ढ़ीमके ने अमके को मौत से बचाया तो जनमानस इस कृत्रिम नेकी पर आश्चर्यचकित प्रतिक्रिया देते है।गोया नेकी न हुई,कोई संदेहजनक,अजूबा घट गया?दुनिया में चौतरफा 'बदी' की इतनी वाही-वाही, रुतबा,गरिमा बढ़ गई है कि बापड़ी नेकी आपराधिक गतिविधि सी लगने लगी है।इसका चलन विलुप्त प्रायः सा होने लगा है, जैसे कोई नेता सच बोल दें,वैसे ही कोई नेकी का कुत्सित,कालिखदार कुप्रयास करता है।पहले से ही नेकी सत्य के समर्थन से आगे बढ़ती आई है और बदी बेईमानी, बदकर्म, झूठ पर सवार होकर तशरीफ़ लाती रही है किंतु अब सब गिरगिट सा बदल रहा है।पहले नेकी में सत्य,बसता था,ईश्वर दिखता था।संकट,दुविधा, अपमान अब इसमें नजराता है।लोग नेकी का मार्ग त्यागने,भूलने लगे है।इससे दिक्कतें बढ़ी है।नेकी आज सबसे बड़ा दुर्गुण,सिरदर्द,कमजोर कड़ी लगने लगी है।

नेकी कुटाने,अपमानित होने तथा बदी सम्मानित हो रही है।नेकी में साहस,बदी में दुःसाहस मौजूद लगने लगा है।नेकी में न्याय बिलंब से मिलता है क्योंकि न्याय की देवी आंखों पर पट्टी चढ़ाए जो रहती है पर बदी तत्काल सच्चे न्याय का टेटबा दबाकर फर्जी न्याय दिलाती है।नेकी की राह भगवान को किंतु बदी का मार्ग आमजन को भाता है इसलिए लोग बदी अपनाते से दिखते है।नेकी का मुंह दमकता,बदी का थोबड़ा निस्तेज, उजला,चमकता प्रतीत होता है।बदी में शैतान बिराजता है,इसमें सुख,सम्पन्नता,ऐश,श्री,नजराती है,फलतः बदी की पक्की सड़के सबको रुचने लगी है।बदी में सुविधाएं पनपती,असुविधाएं विलुप्त होती दिखती है।बदी लालटेन है तो नेकी सूर्य सी है किंतु लोग झूठ के लालटेन के उजाले में काम करना पसंद करते हैं?दुनिया जानती है कि नेकी दमकता हीरा,बदी बुझता,टिमटिमाता दीया है फिर भी जनमानस बदी के "वेपरलेम्प" में रहना चाहते हैं।नेकनीयती बिंदास,बदनीयती शर्म,हिकारत में डूबी रहती है।बदी, नेकी को कभी नही स्वीकारती है परंतु नेकी अक्सर' बदी' को भी स्वीकार लेती है।

ज़माना बदी कर वाही-वाही लूटने का है,फलस्वरूप भलमनसाहत दुबकी सी लगती है।बदी कर लोग बहकने,चहकने लगे हैं और नेकी कर चमकने,चटकने?"नेकी ओर पूछ-पूछ" का ज़माना लदा, अब तो बदी कर और लूट-पाट कर गुर्राने का क्रेज चल पड़ा है।अब कबीर का दोहा यूं हो गया है-"बदी बराबर तप नही,नेकी बराबर पाप,जाके हिरदे बदी है,ताके हिरदे उजास?

विजय कनौजिया
अम्बेडकर नगर (उ प्र)

काव्य

"साथ दे दो चलो जीत हम जाएंगे"

वक्त की आंधियां आओ सह लें चलो
लड़खड़ाते कदम फिर संभल जाएंगे
आओ हम ही चलो आज झुक जाएंगे
टूटते रिश्ते फिर से संभल जाएंगे..।।

रिश्तों के खेत में हो उपज प्रेम की
खुशियों के उर्वरक से ही हरियाली हो
काट लें आओ मिलकर फसल प्रेम की
मन के खलिहान फिर से संवर जाएंगे..।।

जो कभी थे हमारे वो अब क्यों नहीं
प्रीति सच्ची थी पहले तो अब क्यों नहीं
आओ छोड़ो शिकायत ख़तम करते हैं
आज फिर पहले जैसे निखर जाएंगे..।।

अपनों से खेद ज्यादा उचित भी नहीं
रख लो मत भेद मन भेद फिर भी नहीं
अपनों से जीत जाना भी इक हार है
हार मानो चलो एक हो जाएंगे..।।

सच्ची निष्ठा प्रतिष्ठा सदा प्रेम से
जीवन में बस प्रगति अपनों के साथ से
एक जुटता से ही मिलता संबल सदा
साथ दे दो चलो जीत हम जाएंगे..।।
साथ दे दो चलो जीत हम जाएंगे..।।

संजय सिंह चौहान
उप निरीक्षक,इंदौर,
मध्य प्रदेश

विचार

लड़कें व लड़कियां समान(बराबर) क्यों हो?

भारत जैसे देश में जहां कन्याओं का पूजन किया जाता है, वहां लड़के व लड़कियां कैसे समान (बराबर) हों? और क्यों समान हों? सामाजिक व परंपरागत रूप से हमें यही सिखाया जाता है, कि कन्या देवी स्वरूप होती हैं, तो फिर लड़के के समान (बराबर) समझ कर उसे छोटा क्यों बनाया जाए? प्रायः देखने में आता है कि, किसी भी परीक्षा का परिणाम आने पर "लड़कियों ने बाजी मारी, लड़कियां फिर टॉप पर, लड़कियां पुनः अव्वल" इस तरह के शीर्षक आम दिखाई देते हैं। क्या इस तरह का "प्रतिद्वंदी" बीजारोपण ठीक है?

ईश्वर द्वारा रचित, नारी एवं पुरुष दो अलग-अलग तरह की रचनाएं हैं। एक वात्सल्य, प्रेम, सहनशीलता व धैर्य प्रकटीकरण की प्रतिनिधि है, तो वहीं दूसरी कठोरता, शक्ति, पौरुष व पालक(पालनकर्ता) का प्रतीक। ईश्वर की दो अलग-अलग एवं अनुपम रचनाओं(जो अपने आप में परिपूर्ण है) को हम जाने-अनजाने, किसी अवांछनीय प्रतियोगिता में क्यों डालना चाहते हैं? प्रतियोगिता के दो पक्षों में, "पक्ष" प्रतियोगी ना होकर प्रतिद्वंदी होते जा रहे हैं। प्रतियोगिता में एक पक्ष की जीत व एक पक्ष की हार होती है, और यहां पर दोनों पक्षों में हार किसी की भी हो, जीत किसी की भी नहीं होगी।और बात रही लड़के एवं लड़कियों में पक्षपात (भेदभाव) की तो कभी-कभी यह अच्छा है, पक्षपात अच्छा है जब पूजन लड़कियों का होता है। पक्षपात अच्छा है जब नारियों को प्रेम वात्सल्य एवं सहनशीलता की प्रतिनिधि माना जाता है। परंतु पक्षपात अनुचित है, जब अवांछित प्रतियोगिता में धकेला जा रहा हो।

कितना अच्छा हो यदि दोनों को, अपने-अपने स्थानों पर पूर्ण सम्मान के साथ, अपने गुणों के साथ, एक दूसरे को स्वीकार करने के लिए तैयार किया जाए। उनका नैसर्गिक विकास होने दिया जाए। भले ही समाज में लड़कियों का पूजन ना किया जाए, परंतु उन्हें उन्मुक्त रूप से, बढ़ने, सोचने-विचारने एवं निर्णय लेने का, निष्पक्ष एवं समान अवसर दिया जाए। वहीं लड़कों को अनावश्यक रूप से प्रतिद्वंदी ना बनाया जाए, परिणामों में उन्हें कमतर बताकर हीन भावना से ग्रसित न किया जाए। सामाजिक रुप से उन दोनों को, बुनियादी स्तर से ही आपस में प्रतियोगिता में ना डाला जाए, ना ही इस तरह का माहौल बनाया जाए कि वे दोनों एक-दूसरे को प्रतिद्वंदी माने। वह तो दोनों एक दूसरे के सहयोगी होकर ही, अधिक अनमोल, परिणामपरक, प्रेम पूर्ण रह सकते हैं, और सामाजिक रुप से यही उचित एवं अधिक आवश्यक है।

अतुल मोहन प्रसाद
बक्सर ,
(बिहार) 802101

लघुकथा

"पेट का पानी"

किसी घोटाले के अलग – अलग केस में पांचवीं बार नेता को कोर्ट ने दोषी पाया । जेल जाने की कार्यवाही प्रारंभ हुई । जैसा कि न्याय प्रणाली है नेता ने घटना जवानी में की थी , बुढ़ापे में जज ने फैसला सुनाया। कारावास जाने के पूर्व नेता जी कई रोगों के गिरफ्त में आ गये। अतः उन्हें अनेक प्रकार की बीमारियों की जांच से गुजरना पड़ा । अन्ततः नेताजी को कहना पड़ा- "मुझे जो रोग है उसका जांच तो डॉक्टर साहब ने किया ही नहीं । जब तक इस रोग की दवा नहीं हुआ तो मेरा कोई भी रोग ठीक नहीं होगा और सब तो इस रोग के अनुषांगिक लक्षण है ।"

"आपको क्या रोग है ?" – एक डॉक्टर ने आश्चर्य के साथ पूछा ।

"हमें अपना रोग मालूम है और उसका निदान भी ।"- वहां खड़े डॉक्टर एवं पुलिस वाले विस्फरित नेत्रों से नेताजी को देख रहे थे । -

"हां ! हां !! बताइए । हमलोग इस रोग के इलाज की व्यवस्था करेंगे ।" एक डॉक्टरने कहा ।

"जेल में सप्ताह – दस दिन में मेरे एक भाषण देने का कार्यक्रम का आयोजन जेल के मैदान में करा दीजिए । ऐसा नहीं होने से हमारे पेट का पानी पचेगा नहीं । पेट का पानी नहीं पचने से कई प्रकार की बीमारियां जन्म ले लेती हैं । यह किसी जांच में नहीं निकलेगा । समझे ।"

"जी सर !" – मुंह पर कोरोना का मास्क रहने पर भी डॉक्टर के चेहरे पर मुस्कान मास्क के बाहर आने लगी ।

" पिछले दिनों मैं जमानत पर था । तब डॉक्टर के लाख मना करने के बावजूद मैं सभा में भाषण देने पहुंच गया तब से भीतर से अच्छा अनुभव करने लगा था , "कहा नेता जी ने"

सत्यवान 'सौरभ'
रिसर्च स्कॉलर, कवि,स्वतंत्र पत्रकार एवं स्तंभकार
333, परी वाटिका, कौशल्या भवन, बड़वा (सिवानी)
भिवानी, हरियाणा – 127045

"सूना-सूना लग रहा, बिन पेड़ों के गाँव"

सूना-सूना लग रहा, बिन पेड़ों के गाँव।
पंछी उड़े प्रदेश को, बांधे अपने पाँव।।

पक्षियों को पर्यावरण की स्थिति के सबसे महत्वपूर्ण संकेतकों में से एक माना जाता है। क्योंकि वे आवास परिवर्तन के प्रति संवेदनशील हैं और पक्षी पारिस्थितिकीविद् के पसंदीदा उपकरण हैं। पक्षियों की आबादी में परिवर्तन अक्सर पर्यावरणीय समस्याओं का पहला संकेत होता है। चाहे कृषि उत्पादन, वन्य जीवन, पानी या पर्यटन के लिए पारिस्थितिक तंत्र का प्रबंधन किया जाए, सफलता को पक्षियों के स्वास्थ्य से मापा जा सकता है। पक्षियों की संख्या में गिरावट हमें बताती है कि हम आवास विखंडन और विनाश, प्रदूषण और कीटनाशकों, प्रचलित प्रजातियों और कई अन्य प्रभावों के माध्यम से पर्यावरण को नुकसान पहुंचा रहे हैं।

बदल रहे हर रोज ही, हैं मौसम के रूप।
सर्दी के मौसम हुई, गर्मी जैसी धूप।।
सूनी बगिया देखकर, 'तितली है खामोश'।
जुगनूं की बारात से, गायब है अब जोश।।

हाल ही की एक रिपोर्ट, 'स्टेट ऑफ द वर्ल्ड्स बर्ड्स' के अनुसार, दुनिया भर में मौजूदा पक्षी प्रजातियों में से लगभग 48% आबादी में गिरावट के दौर से गुजर रही है या होने का संदेह है। प्राकृतिक प्रणालियों के महत्वपूर्ण तत्वों के रूप में पक्षियों का पारिस्थितिक महत्व है। पक्षी कीट और कृंतक नियंत्रण, पौधे परागण और बीज फैलाव प्रदान करते हैं जिसके परिणामस्वरूप लोगों को ठोस लाभ होता है। कीट का प्रकोप सालाना करोड़ों डॉलर के कृषि और वन उत्पादों को नष्ट कर सकता है। पर्पल मार्टिंस लंबे समय से हानिकारक कीटनाशकों के स्वास्थ्य और पर्यावरणीय लागत (आर्थिक लागत का उल्लेख नहीं) के बिना कीट कीटों की आबादी को काफी हद तक कम करने के एक प्रभावी साधन के रूप में जाना जाता है।

आती है अब है कहाँ, कोयल की आवाज़।
बूढा पीपल सूखकर, ठूंठ खड़ा है आज।।
जब से की बाजार ने, हरियाली से प्रीत।
पंछी डूब दर्द में, फूटे गम के गीत।।

पक्षी प्राकृतिक प्रणालियों में कीड़ों की आबादी को कम करने और बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। पूर्वी जंगलों में पक्षी 98% तक बुडवार्म खाते हैं और 40% तक सभी गैर-प्रकोप कीट प्रजातियों को खाते हैं। इन सेवाओं का मूल्य 5,000 डॉलर प्रति वर्ष प्रति वर्ग मील वन पर रखा गया है, संभावित रूप से पर्यावरण सेवाओं में अरबों डॉलर डॉलर में अनुवाद किया जा सकता है। पक्षियों और जैव विविधता के नुकसान का सबसे बड़ा खतरा आवासों का विनाश और क्षरण है। पर्यावास के नुकसान में प्राकृतिक क्षेत्रों का विखंडन, विनाश और परिवर्तन शामिल है, जिन्हें पक्षियों को अपने वार्षिक या मौसमी चक्र को पूरा करने की आवश्यकता होती है।

फीके-फीके हो गए, जंगल के सब खेल।
हरियाली को रौंदती, गुजरी जब से रेल।।
नहीं रहे मुंडेर पर, तोते-कौवे-मोर।
लिए मशीनी शोर है, होती अब तो भोर।।

1800 के दशक के बाद से अधिकांश पक्षी विलुप्त होने के लिए आक्रामक प्रजातियां जिम्मेदार हैं, जिनमें से अधिकांश समुद्री द्वीपों पर हुई हैं। उदाहरण के लिए, अकेले हवाई में, आक्रामक रोगजनकों और शिकारियों ने 71 पक्षी प्रजातियों के विलुप्त होने में योगदान दिया है। कुछ पक्षियों का अवैध शिकार वाणिज्यिक और निर्वाह उद्देश्यों के लिए, भोजन के लिए, या उनके पंखों के लिए किया जाता है। ऐतिहासिक रूप से, कुछ प्रजातियों का अत्यधिक शिकार विलुप्त होने का प्रमुख कारण रहा है। स्थानीय स्तर पर निर्वाह के शिकार के परिणामस्वरूप शायद ही कभी प्रजातियों का विलोपन होता है। व्यावसायिक शिकार से किसी प्रजाति के मरने की संभावना अधिक होती है।

अमृत चाह में कर रहे, हम कैसे उत्थान।
जहर हवा में घोलते, हुई हवा तूफ़ान।।
बेचारे पंछी यहाँ, खेलें कैसे खेल।
खड़े शिकारी पास में, ताने हुए गुलेल।।

जलवायु परिवर्तन से आवास के नुकसान और आक्रामक प्रजातियों के खतरों के साथ-साथ नई चुनौतियों का निर्माण करने का खतरा है, जिन्हें पक्षियों को दूर करना होगा। इसमें आवास वितरण में बदलाव और चरम खाद्य आपूर्ति के समय में बदलाव शामिल है जैसे कि पारंपरिक प्रवासन पैटर्न अब पक्षियों को नहीं रख सकते हैं जहां उन्हें सही समय पर होने की आवश्यकता होती है। अन्य मानव निर्मित संरचनाओं के साथ टकराव भी एक इनकी मौत का कारण है। उदाहरण के लिए, पावरलाइन पक्षियों के लिए एक खतरा पेश करती है, विशेष रूप से बड़े पंखों वाले, और हर साल 25 मिलियन पक्षियों की मौत का अनुमान है। संचार टावरों का अनुमान है कि हर साल 7 मिलियन पक्षियों की मौत हो जाती है और रात में प्रवास करने वाले पक्षियों के लिए एक विशेष खतरा पैदा होता है।

वाहन दिन भर दिन बढ़े, खूब मचाये शोर।
हवा विषैली हो गई, धुआं चारों ओर।।
बिन हरियाली बढ़ रहा, अब धरती का ताप।
जीव-जगत नित भोगता, कुदरत के संताप।।

कीटनाशक और अन्य विषाक्त पदार्थ के कारण यूएस फिश एंड वाइल्डलाइफ सर्विस का अनुमान है कि हर साल लगभग 72 मिलियन पक्षी कीटनाशक विषाक्तता से मर जाते हैं। पक्षियों पर कीटनाशकों के वास्तविक प्रभाव का आकलन करना मुश्किल है: प्रदूषण और विषाक्त पदार्थ उप-घातक प्रभाव पैदा कर सकते हैं जो सीधे पक्षियों को नहीं मारते हैं, लेकिन उनकी लंबी उम्र या प्रजनन दर को कम करते हैं। कीटनाशकों के अलावा, भारी धातुओं (जैसे सीसा) और प्लास्टिक कचरे सहित अन्य संदूषक भी पक्षियों के जीवन काल और प्रजनन सफलता को सीमित करते हैं। तेल और अन्य ईंधन रिसाव का पक्षियों, विशेष रूप से समुद्री पक्षियों पर विनाशकारी प्रभाव पड़ता है। तेल पक्षियों के पंखों का सबसे बड़ा दुश्मन है है, जिससे पंख अपने जलरोधक गुणों को खो देता है और पक्षी की संवेदनशील त्वचा को अत्यधिक तापमान में झुलसा देता है।

जीना दूभर है हुआ, फैले लाखों रोग।
जब से हमने है किया, हरियाली का भोग।।
शहरी होती जिंदगी, बदल रहा है गाँव।
धरती बंजर हो गई, टिके मशीनी पाँव।।

दुर्लभ, लुप्तप्राय और संकटग्रस्त पक्षी प्रजातियों की रक्षा करें,महत्वपूर्ण जैव विविधता वाले क्षेत्रों में पक्षी सर्वेक्षण करना,पक्षियों की रक्षा के लिए आर्द्रभूमि की रक्षा करें संरक्षण रणनीति में जनसंख्या बहुतायत और परिवर्तन का विश्वसनीय अनुमान लगाना शामिल है। अधिक कटाई वाले जंगली पक्षियों की मांग में कमी के लिए नए और अधिक प्रभावी समाधान बड़े पैमाने पर लागू किए गए। हरित ऊर्जा संक्रमणों की निगरानी करना जो अनुपयुक्त तरीके से लागू किए जाने पर पक्षियों को प्रभावित कर सकते हैं।

रोज प्रदूषण अब हरे, धरती का परिधान।
मौन खड़े सब देखते, मुँह ढाँके हैरान।।
हरे पेड़ सब कट चले, पड़ता रोज अकाल।
हरियाली का गाँव में, रखता कौन ख्याल।।

पक्षी पर्यावरणीय स्वास्थ्य के अत्यधिक दृश्यमान और संवेदनशील संकेतक हैं, उनका नुकसान जैव विविधता के व्यापक नुकसान और मानव स्वास्थ्य और कल्याण के लिए खतरे का संकेत देता है। इस प्रकार, हमें तेजी से बड़े पैमाने पर विलुप्त होने की गति को कम करने के लिए प्रकृति पर बढ़ते मानव पदचिह्न को कम करने के लिए सरकार, पर्यावरणविदों और नागरिकों के समन्वित कार्यों की आवश्यकता है।

सच्चा मंदिर है वही, दिव्या वही प्रसाद।
बँटते पौधे हों जहां, सँग थोड़ी हो खाद।।
पेड़ जहां नमाज हो, दरख़्त जहां अजान।
दरख्त से ही पीर सब, दरख्त से इंसान।।

गज़ल

केशव शरण
वाराणसी 221002

(1)

चीज़ ये अवलोकने की चीज़ है
फूल भी क्या तोड़ने की चीज़ है

घुट मरोगे बंद रखते हो अगर
ये रहा दिल, खोलने की चीज़ है

इश्क़ से हो दूर जाने किसलिए
ये न ख़ुद को रोकने की चीज़ है

प्यार जो करता उसी से दूरियाँ
बारहा ये सोचने की चीज़ है

ये किया है वो किया है यार ने
ये न सबसे बोलने की चीज़ है

प्यार के व्यवहार में है गर कमी
ये बराबर टोकने की चीज़ है

आदमी से हो गई ग़लती अगर
ये उसे क्या ठोंकने की चीज़ है

****

(2)

न आँसू बहाते कराहा करेंगे
तुझे अब कभी यूँ न चाहा करेंगे

बढ़ेगी न किसकी भला बदगुमानी
अगर इस क़दर हम सराहा करेंगे

तुम्हारी मुहब्बत तुम्हारी वफ़ा भी
हमीं इक कहाँ तक निबाहा करेंगे

लगा दो वचनभंग पर दंड भारी
दिला दो वचन वो न डाहा करेंगे

यहाँ भी, वहाँ भी, कहाँ हम न गहरे
कहाँ तक हमें आप थाहा करेंगे

*****

डॉ. दिनेश कुमार गुप्ता
प्रवक्ता, अग्रवाल महिला शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय,
गंगापुर सिटी, जिला-सवाई माधोपुर (राज.) 322201

आलेख

"मूल्य शिक्षा एवं विद्यालयीकरण"

कहा जाता है कि आवश्यकता आविष्कार की जननी है। यह सत्य भी है, कोई भी आविष्कार, कोई भी अनुसंधान अथवा कोई भी खोज तभी होती है जब उसका अस्तित्व पहले से या तो होता ही नहीं है अथवा अभाव होता है या प्रतिक्रिया स्वरूप होता है। कहने का तात्पर्य है कि आवश्यकता तभी अनुभव में आती है जब अभाव अथवा प्रतिक्रिया हो। मूल्य शिक्षा की आवश्यकता के सन्दर्भ में भी यही कहा जा सकता है कि या तो शिक्षा में मूल्यों का स्थान है ही नही और यदि है भी तो उसका परिणाम दृष्टिगत नहीं हो रहा है। अथवा यों कहा जा सकता है कि वह प्रभावशाली नहीं हो पा रही है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विचार करने पर ऐसा नहीं कहा जा सकता है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था में मूल्यों का स्थान है ही नहीं। मूल्यों का स्थान तो अवश्य ही है पर उसके प्रभावशाली परिणाम नहीं मिल रहे हैं। शिक्षा में केवल मूल्यों को स्थान देना ही पर्याप्त नहीं है। उसके लिए आवश्यक है कि इन्हें वास्तव में महत्व देना और उनकी सफल क्रियान्विति हेतु व्यवस्था करना। अतः कहा जा सकता है कि वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में मूल्यों के सही अर्थों को स्थान देने की आवश्यकता महसूस होती है। दूसरे परिप्रेक्ष्य में वर्तमान वैज्ञानिक युग में सर्वत्र चकाचौंध दिखाई देती है। सांस्कृतिक संक्रमण का प्रभाव भी देखा ही जा सकता है। ऐसे समय में मूल्य शिक्षा की आवश्यकता और भी अधिक महसूस होती है। मूल्य प्रत्येक संस्कृति की धरोहर होती है। भारतीय संस्कृति तो मूल्य-प्रधान संस्कृति रही है। अतः इसको नई पीढ़ी को हस्तान्तरित करना आवश्यक ही नहीं वरन् अनिवार्य भी है। इसी से संस्कृति की सुरक्षा हो सकती है। हमारी संस्कृति "सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय" को महत्व देती है। इसलिए भौतिक विकास के साथ-साथ मूल्य जैसी धरोहर भी सुरक्षित रहे जो मानव जाति को सद्मार्ग की ओर प्रेरित कर सके। अतः इस सन्दर्भ में भी मूल्य-शिक्षा की आवश्यकता है। यों तो मूल्य शिक्षा की आवश्यकता कई सन्दर्भों में होती है पर मुख्यतया आन्तरिक पक्ष की सुदृढ़ता ही अनेक क्षेत्रों को प्रकाशित करती है।

शिक्षा राष्ट्र की रीढ़ मानी जाती है। जिस प्रकार विकृत रीढ़ व्यक्ति के स्वास्थ्य का सूचक नहीं है, उसी प्रकार विकृत शिक्षा व्यवस्था भी राष्ट्र की स्वस्थता का सूचक नहीं है। अर्थात् विकृत मूल्यों वाला राष्ट्र प्रगति नहीं कर सकता है। वह विकास की ओर न जाकर पतन की ओर बढ़ेगा। यह स्पष्ट है कि अच्छा आचार-विचार तथा व्यवहार ही विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। वर्तमान समय में मूल्यों का ह्रास एक महत्त्वपूर्ण समस्या है। इससे व्यक्ति ही नहीं वरन् पूरा राष्ट्र प्रभावित हुआ है। जीवन का ऐसा एक भी क्षेत्र नहीं है जहाँ मूल्यों की कमी न देखी जाती हो। इसका एक प्रमुख कारण है- शिक्षा में मूल्यों का अभाव। अर्थात् हमारी शिक्षा व्यवस्था अनेक आयामों को व्यक्त करती है लेकिन मूल्य शिक्षा अन्य आयामों की तरह समृद्ध अवस्था में नहीं कही जा सकती है। इस ओर विचारकों का ध्यान अवश्य ही केन्द्रित हुआ पर परिणाम अदृश्य ही रहा। यदि शिक्षा किसी भी रूप से मूल्यों से विमुख होती है या इससे बचती है तो यह शोभनीय नहीं माना जा सकता है। शिक्षा का कार्य ही है अच्छे व्यक्तित्व का निर्माण करना, अच्छाइयों को प्रकट करना आदि-आदि । मूल्य शिक्षा के विद्यालयीकरण का अर्थ है कि मूल्यों, शिक्षा और विद्यालय का एकीकरण। अर्थात् मूल्य शिक्षा को विद्यालय स्तर पर समाहित करना, विद्यालय का पूरा वातावरण ही मूल्यपरक बनाना। अतः इस विद्यालयीकरण की प्रक्रिया में विद्यालय में प्रत्येक सदस्यों, प्रत्येक क्रियाकलापों में मूल्यों का ही बोलबाला होगा। न कहीं अनैतिक आचरण होगा, न किसी प्रकार का उपेक्षा का भाव होगा। अर्थात् विद्यालय का वातावरण मूल्यों से ओतप्रोत होगा। यूँ तो मूल्य शिक्षा देने के और भी अनेक साधन हो सकते हैं लेकिन विद्यालयी शिक्षा एक औपचारिक शिक्षा है। इसके माध्यम से मूल्य शिक्षा का प्रचार-प्रसार सरलता से किया जा सकता है। अतः इस सन्दर्भ में विद्यालय का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। कहा गया है कि मूल्यों को थोपा नहीं जा सकता, उसे सीखा जाता है। इसलिए विद्यालय का पूरा वातावरण ऐसा बने कि विद्यार्थी मूल्य को सीखने हेतु, ग्रहण करने हेतु मानसिक रूप से तैयार हो सकें, उसमें रुचि पैदा हो सके। यह भी सत्य ही है कि वातावरण का प्रभाव भी सीखने के लिए महत्त्वपूर्ण होता है। अतः विद्यालयी वातावरण मूल्यपरक बनाने से राष्ट्र की समस्याओं का समाधान होगा तथा राष्ट्र विकास की ओर अग्रसर होगा। इसका परिणाम होगा कि व्यक्ति सुख-चैन पूर्ण जीवन जी सकेगा। अतः मूल्य शिक्षा के विद्यालयीकरण के लिए निम्न प्रयास आवश्यक है-

पाठ्यक्रम में मूल्यों का समावेश

विद्यालयी शिक्षा में पाठ्यक्रम अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। अर्थात् पाठ्यक्रम में जिन तत्त्वों को स्थान दिया जाता है वही शिक्षण का केन्द्र बिन्दु रहते हैं। अतः पाठ्यक्रम में मूल्यों का समावेश मूल्यों के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकेगा। जैसे अन्य विषयों का ज्ञान विद्यार्थी को अध्ययन के दौरान होता है, वैसे ही मूल्यों का ज्ञान हो सकेगा। ज्ञान के बाद ही आचरण की बात प्रकट होती है। ज्ञान के अभाव में आचरण का पक्ष कपोल कल्पना

ही कही जा सकती है। अतः इसके लिए ज्ञान पक्ष को सुदृढ़ करने का प्रयास करना आवश्यक होगा। इसके बाद ही आचरण पक्ष मजबूत हो सकेगा। अतः मूल्यों की सैद्धान्तिक जानकारी तथा उसके साथ उन्हें व्यवहारगत करने हेतु प्रायोगिक पक्ष भी आवश्यक माना जाता है। कक्षा स्तर के अनुरूप मूल्यों का स्तर भी हो। अर्थात् कक्षा के अनुसार विद्यार्थियों की योग्यता को ध्यान में रखते हुए मूल्यों का समावेश होना चाहिए। पाठ्यक्रम सुरुचिपूर्ण हो न कि बोझिल। रुचि का विषय विद्यार्थी कम समय में ग्रहण कर लेते हैं। मूल्य शिक्षा का संबंध आचरण से होता है। अतः यह सरल कार्य तो नहीं कहा जा सकता है। व्यक्ति का व्यवहार परिवर्तनशील तथा जटिल होता है। प्रत्येक व्यक्ति के अपने शीलगुण होते हैं जो उसके व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं। इसलिए इस व्यक्तित्व की जटिलता के कारण सभी पर इसका समान प्रभाव पड़े, यह भी आवश्यक नहीं है। फिर भी प्रयास तो किया जा सकता है। इसके लिए आवश्यक होगा कि पाठ्यक्रम को रोचक बनाया जाए जिससे उसके प्रति एक रूझान हो सके। पाठ्यक्रम में सत्य, अहिंसा, अचौर्य, मैत्री, सहयोग आदि महत्त्वपूर्ण मूल्यों का समावेश विद्यार्थियों को बचपन से मार्गदर्शन कर सकेगा। अतः पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय उपरोक्त महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को ध्यान रखना आवश्यक होगा।

शिक्षण तकनीक

पाठ्यक्रम में मूल्यों का समावेश कर देना ही इतिश्री नहीं मानी जा सकती है। अर्थात् मूल्य आधारित पाठ्यक्रम एक शुरुआत है, मूल्य दिशा में एक प्रस्थान है, मंजिल नहीं है। मंजिल तक पहुंचने के लिए अनेक प्रक्रियाएँ इसके साथ जुड़ती हैं तब कहीं मंजिल तक पहुंचा जा सकता है। कहा गया है शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति शिक्षण द्वारा ही होती है। अपवादों को छोड़कर शिक्षण के साथ सीखने का अथवा अधिगम का अनुबंध रहता है अर्थात् शिक्षण से अधिगम अधिक होता है। प्रत्येक विद्यार्थी का अधिगम का स्तर भी भिन्न-भिन्न होता है। इस दृष्टि से भी शिक्षण की तकनीक समान नहीं हो सकती है। दूसरी ओर विषय की प्रकृति भी भिन्न होती है। किसी विषय की प्रकृति सैद्धान्तिक होती है तो किसी की प्रायोगिक तथा किसी की अभ्यासात्मक। इसके अतिरिक्त किसी विषय में ये तीनों ही गुण विद्यमान रहते हैं। इतिहास जैसे विषय की प्रकृति सैद्धान्तिक है तो विज्ञान जैसे विषय की प्रकृति सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक है तथा खेल जैसे विषय अभ्यासात्मक अधिक हैं। योग जैसा विषय अथवा मूल्य जैसा विषय सैद्धान्तिक, प्रायोगिक तथा अभ्यासात्मक तीनों ही प्रकार का है। अतः विषय की प्रकृति को ध्यान में रखकर शिक्षण तकनीक को अपनाना आवश्यक होगा।

शिक्षण तकनीक का अर्थ है शिक्षण का वैज्ञानिक तरीका। इसके अन्तर्गत सीखने के लिए नई-नई विधियों-उपविधियों का समावेश किया जाता है। शिक्षण के लिए अनेक व्यूह रचनाएँ की जाती हैं, अनेक शिक्षण विधियों का समावेश किया जाता है। विषय की प्रकृति के अनुरूप ये विधियां लागू होती हैं। शिक्षण विधियों में कहानी विधि, खेल विधि, प्रश्नोत्तर विधि आदि महत्त्वपूर्ण है जो शिक्षण को रोचक बनाती है। साथ ही शिक्षण हेतु आवश्यक एवं उपयोगी सामग्री भी आवश्यक है। शिक्षण सामग्री उपयुक्त है तो अधिगम पर इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। अतः आधुनिक प्रचलित शिक्षण की उपयोगी सामग्री का समावेश कर उद्देश्यों की प्राप्ति की जा सकेगी, मूल्य विकास जैसी जटिल प्रक्रिया को सरल बनाया जा सकेगा।

शिक्षक की भूमिका

शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति शिक्षण द्वारा होती है। शिक्षण प्रभावशाली बनता है-शिक्षण तकनीक से। औपचारिक शिक्षा अथवा विद्यालयी शिक्षा के सन्दर्भ में पाठ्यक्रम तथा शिक्षण तकनीक के अतिरिक्त एक महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है शिक्षक की। पाठ्यक्रम भी है, शिक्षण तकनीक भी है लेकिन अध्यापक की भूमिका सकारात्मक न हो तो सफलता प्राप्त नहीं की जा सकती है। उसका कर्त्तव्य है कि वह विषय को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करे। विषय तथा विषय सामग्री का होना ही पर्याप्त नहीं होता है। उसे प्रस्तुत करना और वह भी प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करना और भी अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। इसलिए शिक्षक का व्यक्तित्व भी प्रभावशाली होना चाहिए। शिक्षक की विषय में पकड़ हो, साथ ही उस विषय को प्रस्तुत करने की कला भी उसमें हो। उसका आचार-व्यवहार सकारात्मक हो, मूल्यों से ओत-प्रोत हो तब कहीं मूल्यों की प्रस्तुति का प्रयास सफल हो सकेगा। शिक्षक की वैज्ञानिक सोच हो। वैज्ञानिक सोच के कारण उसका शिक्षण भी वैज्ञानिक ही होगा। वैज्ञानिक शिक्षण विद्यार्थी के व्यवहार में कम समय में अधिक सकारात्मक प्रभाव छोड़ेगा। शिक्षक केवल खानापूर्ति या अपने कर्त्तव्य की इतिश्री तक ही सीमित नहीं रहेगा वरन् परिणामों पर भी उसकी दृष्टि होगी। अर्थात् शिक्षक का शिक्षण व्यवहार परिवर्तन पर आधारित होगा। यही शिक्षा का उद्देश्य है, यही समय की मांग भी है। अतः शिक्षक की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। शिक्षक को सम्मान तथा आदर की दृष्टि से देखा जाता है क्योंकि वह अच्छी पीढ़ी का निर्माण करता है। समस्या तब होती जब शिक्षक ही अपने कर्त्तव्य को सही अंजाम नहीं देते हैं। मूल्य ह्रास के इस दौर में शिक्षकों का यह महत्त्वपूर्ण कार्य है कि वह अपने अच्छे आचरण, अपने गुणों द्वारा मूल्यों को पुनः स्थापित कर सकता है, शिक्षा की अपेक्षाओं को पूरा कर सकता है, समय की मांग को पूरा कर सकता है।

विद्यालयी कार्यक्रमों में मूल्य

मूल्यों की शिक्षा का समावेश विद्यालयी कार्यक्रमों में भी आवश्यक माना जाता है। अध्ययन, अध्यापन के अतिरिक्त प्रतियोगिता, खेल, नाटक, सांस्कृतिक कार्यक्रम, न जाने कितनी ही गतिविधियाँ हैं जो विद्यालयों में शिक्षा का अभिन्न अंग होती है। अतः विद्यालयी कार्यक्रमों में मूल्य विषयक सामग्री का समावेश विद्यार्थी के ज्ञान चक्षुओ को

खोलने में सहायक हो सकेगा। गद्यों, पद्यों तथा नाटकों में अनेक मूल्य भरे पड़े होते हैं, आवश्यकता है इन्हें उजागर करने की।

महापुरुषों की जीवनियाँ, उनके अनमोल वचन कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। अतः कार्यक्रमों के माध्यम से इन्हें व्यवहारगत रूप दिया जा सकता है। उदाहरणार्थ नाटक के माध्यम से महापुरुषों की जीवनी का चित्रण किया जा सकता है। साथ ही समसामयिक समस्याओं के दुष्परिणामों तथा इनसे समाधान के उपायों को चित्रित किया जा सकता है। मूल्य विषयक प्रदर्शनी का आयोजन किया जा सकता है। समस्याग्रस्त स्थितियों से साक्षात् करवाया जा सकता है जिससे भावात्मक स्तर पर इसका सकारात्मक प्रभाव पड़ सकेगा।

कहने का तात्पर्य है कि इन क्रियाकलापों के माध्यम से विद्यार्थी की चेतना को जगाया जा सकता है, वह सोचने के लिए विवश हो सकता है। अतः पुस्तकीय ज्ञान के साथ-साथ व्यावहारिक ज्ञान भी विद्यार्थी के भीतर परिवर्तन लाने में बहुत सहायक होता है। इसका कारण यह भी होता है कि विद्यार्थी इनमें रुचि लेते हैं। रुचि ही सीखने तथा उस ओर प्रेरित करने में सहायक होती है। अतः ऐसे कार्यक्रमों का समावेश मूल्य शिक्षा को विकसित करने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकेंगे।

विद्यालयी वातावरण में मूल्य

विद्यालय के सम्पूर्ण वातावरण में मूल्यों का समावेश हो, ऐसा प्रयास भी अवश्य करना चाहिए। विद्यालय की प्रत्येक गतिविधि में मूल्यों की झलक मिले, कर्मचारियों का व्यवहार मूल्यों से ओतप्रोत हो जिससे विद्यार्थी को अनुकूल वातावरण की प्राप्ति हो सके। समय-समय पर अभिभावकों तथा अध्यापकों का सम्मेलन होना चाहिए। इससे समस्याओं का समाधान सरलता से किया जा सकता है। प्राचार्य व अध्यापकों के मध्य अन्त:क्रिया विद्यार्थी व अध्यापकों के बीच अन्त:क्रिया, प्रबंध समिति के साथ अध्यापकों तथा प्राचार्य की अन्त:क्रिया आदि महत्त्वपूर्ण बिन्दु हैं जो मूल्य शिक्षा के परिणामों को प्राप्त करने में सहायक होंगे। ये आपसी सम्मेलन, ये अन्त:क्रिया सामूहिक रूप से एक मत को स्वीकार करते हैं। जहाँ सबका एक मत होता है वहां विवाद की संभावना भी नहीं रहती है। इससे प्रत्येक गतिविधि को जानने, समझने का मौका मिलता है तथा एक सर्वसम्मत निर्णय सामने आता है।

इस निर्णय की क्रियान्विति में सबका यथासंभव प्रयास रहता है। यह प्रयास अच्छे परिणाम के रूप में प्रकट होता है। अतः विद्यालय का वातावरण मधुर, सौहार्दमय होना चाहिए। सौहार्दमय वातावरण भावात्मक एकता को पैदा कर सकेगा। भावात्मक एकता ही समस्याओं का समाधान सरलता से कर सकेगी।

काव्य

मनीषा झा
सिद्धार्थ नगर (उत्तर प्रदेश)

"21 वी सदी की नारी "

हां मै 21 वी सदी की नारी हूं,
आदर करना जानती हूं,
तो अत्याचार के खिलाफ
सर कुचलना भी जानती हूं,
हां मैं 21 वी सदी की नारी हूं,

रीति रिवाज निभाने में भी सक्षम हूं,
पर अंधविश्वास को आंख मुन कर स्वीकारना
मुझे गवारा नहीं, संस्कारों की मर्यादा भी जानती हूं,
पर कुप्रथाओं के बोझ तले दबना मुझे गवारा नहीं,
हां मै 21 वी सदी की नारी हूं,

जीन्स पहना गवारा हैं,पर अंग प्रदर्शन कर
औरत जात की नाम की बेज्जती करूं ये गवारा
नहीं, नौकरी करना स्वाबलबी बनना जानती हूं,
पर उसका धौस अपनो को दिखाऊं ये गवारा नहीं,
हां मै 21 वी सदी की नारी हूं,

हां मै बहुत जल्दी धैर्य खो बैठती हूं,
पर खुद से खुद का
धैर्य बांधना भी जानती हूं,
दूसरे मुझे सभाले ये गवारा नहीं,
खुद का सम्मान भी बहुत करती हूं,
पर बुजुर्गों का कोई तिरस्कार
करें ये गवारा नहीं,
हां मैं 21 वी सदी की नारी हूं,

बहुत जल्दी टूट भी जाती हूं,
पर सबके सामने टूटकर बिखरना
हमें गवारा नहीं,खुद टूटती हूं,
बिखरती हूं,और खुद को ही समेटती हूं,
और मुझे आजादी भी पसंद हैं,
पर आजादी के नाम पर
माता पिता का सर झुकना हमें गवारा नहीं,
हां मै 21 वी सदी की नारी हूं,

****

अर्चना श्रीवास्तव 'आहना'
मलेशिया

"दुबई----एक सपनों का शहर"

मानव जीवन का दूसरा नाम एक अतंहीन यात्रा ही है,जो बाह्यजगत से शुरु होकर अंर्तजगत मे खत्म हो जाता है।यथार्थ के उबड-खाबड राहों पर हम पथिक अपनी कोमल संवेदनाओं और विविध भावों से लैश होकर जीवनपर्यंत यात्रा करते है।उम्र के सारे पडाव ,विभिन्न अनुभूतियों से रंगें यादों की रंग-बिरंगे ढेरों तस्वीरे हमें सफर के दौरान और परिणामस्वरूप प्राप्त होते है।हमारी अंदरुनी उत्कंठा, भीतरी ललक और नये और अनजाने के प्रति उत्सुकता निरंतर हमें जीवन की राहों का उल्लासित मुसाफिर बनाता है।

यह कलायात्रा का अंक भारतीय संस्कृति पर आधारित है।मै अपने दुबई प्रवास और यात्रा के दौरान एक भारतीय के तौर पर जो भारतीयता और भारतीय संस्कृति की झलक वहां देखी ,उसी अनुभव को मैने समेटने की कोशिश की है।किसी भी खास स्थान या देश की यात्रा वहां की सभी महत्वपूर्ण जानकारियां देने के साथ-साथ ,हमारी चेतना के बंद आयाम भी खोलती है।

वैसे भी 'मुसाफिर हूं यारो' के गाने के तर्ज पर पूरी दुनिया एक मुसाफिरखाना ही है,जहां दर्दों-गम से लिपटे कितने फँसाने है साथ मे हंसी-खुशियों के भी अनेक तराने मिलते है।यूएई जिसे संयुक्त अरब अमीरात के नाम से जानते है खाडी देशों मे अव्वल देश के रूप मे प्रतिष्ठित है।इंसानी जुनून, ताकत और उसकी दृढसंकल्पित विचारों का शानदार नमुना है ...यूएई।दूर-दूर तक फैला हुआ रेत का तिलिस्म ,तप्त जमीन ,सूर्य की तीखी किरणों का भयंकर ताप और चारों ओर घेरती अरब सागर का पानी दुबई(UAE) की प्राकृतिक विशेषताएँ जो उसकों अनोखी पहचान देती है।उसकी सबसे बडी खूबी ,ईश्वरीय वरदान है जो पेट्रोलियम पदार्थों के बहुतायत मात्रा मे उसकी धरती के अंदर मे मौजदूगी के रूप में मिला है।इस पेट्रो डालर ने खाडी देशों की पूरी कायापलट कर दी।एक खानाबदोश देश और संस्कृति से का धब्बा को साफ कर एक सपन्न,विकसित और प्रभावशाली देशों की श्रेणी मे ला खडा किया।विश्व मे तेल उत्पादक देशों मे UAE अग्रणी स्थान रखता है और दुबई जो इस देश का प्रमुख शहर है, मानव निर्मित आधुनिक शहरों मे एक अजूबा से कम नहीं है।

मुझे दुबई जाने का मौका मिला ,जो मेरे लिए एक बडे सपने साकार होने से कम नहीं था।उसकी चमक-धमक और बालीवुड चलचित्रों मे उसका विवरण ,पत्र-पत्रिकाओं मे उसके बारे मे अद्भुत वर्णन से मै पहले ही काफी रोमांचित थी ,साथ में पहले विदेश की यात्रा ने मेरी उतेजना का बुरा हाल कर दिया था।यह अवसर भी मुझे शादी के कुछ समय बाद ही मिला और साथ में झिझक, डर और घबराहट का भी साथ रहा ,क्योकि मुझे अपनी पहली हवाई विदेश यात्रा अकेले ही सम्पन्न करना था।वैसे तो रोमांच और पर्यटन मुझे काफी पसंद था ,लेकिन मै अकेले पहली बार और वो भी किसी मुस्लिम देश में यात्रा करने की कल्पना नही कर सकती थी।शादी के बाद वैसे भी साजों-सामान के साथ अरमान भी बढ़ जाते हैं ,ख्यालों के ऊंची लहरों के साथ।जब भी वायुयान हिचकोले खाता ,मै सहम जाती और दोनों तरफ के पुरूष सहयात्री होने के कारण मै ज्यादा ही खुद मे सिमट जाती।यह मेरी पहली अंतरराष्ट्रीय हवाई यात्रा थी और वो बिना किसी अपनों के।एक तो देश छोडने का गम,अपनो से बिछडने का गम और नयी जिन्दगी के सपने जो बिल्कुल सात समंदर एक नये देश मे शुरू होने वाला था।पूरी यात्रा मे एक घबराहट, हवाई यात्रा का खौफ और एक अनजाने देश के प्रति उत्कंठा ने मुझे झपकी तक नहीं लेने दिया।

सुबह जब मै हवाई अड्डे पर पहुंची,इमिरेंट जो वहाँ की सबसे बडी हवाई यात्रा कंपनी है,का विशाल ,आलिशान अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डा मेरे होश गुम करने को खडा था।

मुझे तो कुछ समझ नहीं आ रहा था कि मै किस तरफ कदम बढाऊ ,कौन-सा बाहर का रास्ता है।मै एकदम भौंचक थी,मेरे कदम थथमे हुए और मन मे एक अज्ञात भय ने घर कर लिया था।हर देश-विदेश के विभिन्न रंग-रूप ,भेष -भूषा मे इतने सारे लोगो मै पहली बार प्रत्यक्ष रूप से और वो बिल्कुल किसी परदेशी भूमि पर सामना कर रही थी।मै एकदम मूढता और दीनता की स्थिति मे आ गई थी ,जहां मेरा विवेक गुम हो गया था।तभी एक व्यक्ति को कोरिडोर के पास मेरे नाम का बैनर लिए खडा देखा ,जो हाथ हिलाकर मेरा अभिवादन कर रहा था।वह शायद मेरे पति द्वारा हायर किया गया था,मुझे बाहर तक सुरक्षित उस अति विशाल हवाई अड्डा से बाहर लाने के लिए...वरना पक्का मै उसमे कबतक भटकते रहती,पराये लोगो के बीच में।

खैर! उस व्यक्ति ने काफी आदर और प्यार से मुझे अपने साथ लेकर एक विशेष अत्याधुनिक गाडी जो सिर्फ हवाई अड्डा पर चलती है,पर बैठाकर मेरा सामान डिपाचर से उतारकर मुझे सलामती से वैभवशाली और अत्यंत चकाचौंध भरे जगह से बाहर की ओर ले जाने का प्रबंध किया।पूरे निकलने वाले कोरिडोर के रास्ते मे सुगंधित पदार्थों का छिडकाव हो रहा था। सफाई और फर्श की चमचमाहट ,चारों तरफ की चौंधियाती रौशनी
मुझे सपनों की दुनिया जैसा दिलासा दे रहा था।वाकई सबकुछ एक अजूबे से कम नहीं था।,सबकुछ एकदम वातानुकूलित था,किसी को यह भ्रम हो जायेगा कि
बाहर भी कितना ठंडा होगा।

जब मै बाहर आई तो बिल्कुल एक अजूबी दुनिया से मेरा सामना हुआ।एकदम सुबह ही दिनकर की पणें अपने पूर्ण स्वरूप मे अवतरित थी,यानि की प्रचंड गर्मी थी।मै अपने पति के साथ टैक्सी पर बैठी और रास्ते भर अपने निवास स्थल तक के रास्तें को एक अचरज से देखती रही।इतना आधुनीकरण किसी शहर का हो सकता है,मै आश्चर्य मे डूबी रही।ऐश्वर्य का अदभूत नमुना ...चिकनी सडके,आलीशान गाडियां, चप्पे-चप्पे पर सफाई और गरीबी की कोई निशानी नहीं।ऐसा दर्शन तो उस वक्त मैने किसी भारतीय शहर मे नहीं किया था,आज से दस साल पहले।दूर-दूर तक रेत के फैलाव मे चमकती धूप और उनपर बिछे अनंत ,सीधी-घुमाउदार सड़के पूर्व की अनुभूतियों को स्याह कर,नयी ऊजा का संचार कर रहे थे।
जब अपने गन्तव्य (निवास)पर पहुंची,तो एक 25माले की इमारत मेरे सामने खडा था।मै चक्करा गई।इससे पहले मैने इतनी ऊंची इमारते सिर्फ़ फिल्मों मे देखा था।

लिफ्ट से चौदवे माले के अपने फ्लैट पर पहुंचकर और भी आश्चर्य लगा ।उस बेहद तप्त देश मे सारी बडी इमारते लगभग सेन्ट्रलाइज एसी से ठंडी रहती थी।हलांकि सभी घरों मे ,कमरो मे अलग-अलग एसी की व्यवस्था थी।सभी बालकोनी छोटी होती ,क्योकि बाहर इतनी तेज गर्मी और कडक धूप होता कि बालकोनी बस कपडे सुखाने के लिए होता और मजा ये था कि कपडे तुरंत ही सुख जाते थे।

दुबई एक सपनों का ,शहर मानवी संकल्प शक्ति और कौशल का एक अनूठा उदाहरण है।रेत के टिलो मे मानवी प्रयासों से बिछाई गई हरियाली ,रोपी गई प्राकृतिक सुंदरता और पैदा की गई प्राकृतिक लावण्य एक चमत्कार से कम नहीं है।पैसे की ताकत ने शुद्ध मिट्टी विहीन ,मरूस्थलीय और खानाबदोशी देश को, एक सभ्य ,सफल देशों की श्रेणी मे खड़ा कर दिया है ,इसका साक्ष्य प्रमाण UAE है।ज्यादातार सडकों के किनारे बिछाई मिट्टी पर उगायी गई हरियाली ,सुंदर-2 पेड-पौधे ,फूलों के विविध पोधे किसी को यह आभास नही होने देते कि यह रेगिस्तानी इलाका है।फिर हर जगह करीने से उगाये गये खजुर के पेड,जो प्राय:सभी खाडी देशों की मुख्य ऊपज है,कोई जबाब ही नही है।सडक के दोनों तरफ बहुत ही सुंदर फूलो की क्यारियों से विभिन्न कलाकृतियों को उकेरा गया है ,हरी-हरी घास की सुंदर व्यवस्थित पट्टियों के बीच में।

दुबई सुंदर गहरे नीले समंदर के बीच और सुंदर और आलीशान माल के लिए काफी प्रसिद्ध है।यहां के दुबई माल,सिटी सेंटर,मेगा माल,इमिरेंटस माल काफी आलिशान और भव्य है।एक दिन मे तो कोई पूरा घूम भी नहीं सकता।अंदर मे रईसी और खरीदारी के सारे साजो-समान है,बस पैसे जेब मे होने चाहिए।स्वर्ण आभूषणों के दुकान तो पूरे विश्व प्रसिद्ध है।हर तरह के नक्कासी और डिजाइन के जेवर ,बिस्कुट (सोने के)वहां पूरी शुद्धता और विविधता मे उपलब्ध होते है।हालीवुड हो या बालीवुड सभी के सितारों का जमघट वहां शौपिंग और मौज-मस्ती के भ्रमण करते आपको सहजता से दिख जायेंगे।मेरा यह मानना है कि दस साल पहले पूरे एशिया मे इतना अत्याधुनिक और स्मार्ट सिटी कोई नहीं था।
सारे ट्रान्सपोर्ट बस वातानुकूलित और सडक आलिशान और कीमती गाडियों से भरा पडा था।इतनी महंगी और बडी गाडियों पर सवारी करना दुबई शेखों का शौक और शान था।मैने पहले जीवन मे इतने शानदार गाडियां नहीं देखी थी।लेकिन वहां का ट्रफिक व्यवस्था बिल्कुल अनुशासित और एटैमेटेड था,लेकिन भारत से नियम पूर्ण अलग थे। यदि आप सडक पार करना चाहते हो तो बडे शेख भी अपनी गाडियों को बडे सम्मान के साथ रोकर आपको रास्ता देते थे।अच्छा लगता था उनकी यह विनम्रता देखकर।बसों महिला यात्री को प्राथमिकता दी जाती थी और आप रात के ग्यारह-बारह बजे भी गहने पहनकर इत्मीनान से घूम सकते हो,बिना किसी डर भय के।क्योंकि अपराध का वहाँ कठोर सजा का प्रावधान था।ज्यादातर पर्यटकों वहाँ मौज-मस्ती और सैर-सपाटे के लिए वहां आते है।
चारो से समंदर का पानी और बीच-बीच मे शहर का निर्माण और वो भी पूरी खुबसूरती से,मै तो खो जाती थी शहर के आकर्षण मे।वहां का पाम जुमेरा बीच काफी आकर्षक था।साथ मे विश्व का सबसे ऊंचा निर्माण 'बुर्ज खलीफा'भी लोगो के बीच काफी लोकप्रिय था
वहां मौसम भी अनूठा ,पांच बजे से ही उबलती धूप ,बिना छाते और एसी गाडी के कोई चल नही सकता और शाम ढलते ही लोग पार्को ,माल ,समनंदर के किनारे दौड पडते।यानि कि शाम थोडा खुशनुमा और रातें तो दूर के रेगिस्तानी गांवो मे पूरी ठंडीं हो जाती थी।मैने बारिश बहुत ना मात्रा का देखा ,कभी-कभी रेतीला तूफान और उसके साथ हल्की बारिश की मै साक्षी बनी। वहां समंदर कज किनारे बहुत खुबसुरत पार्क बनाये होते थे।लोग शाम होते ही अपने पूरे परिवार के साथ खासकर अरबीवहां सब आराम और मौज-मस्ती के सामान के साथ पहुंचते थे और रात ढलने तक वहां समय बीताते थे।पूरी जगह रौशनी का बहुत अच्छा प्रबंध होता था।सबकुछ जगमग करता....समनंदर का पानी बहुत सुहाना दिखाई देता रात मे।साफ-सफाई तो दुबई की खास विशेषताएं है।कुत्ता मुझे

रोड पर कही नजर नहीं आया पर बिल्ली बेखौफ रोड पर घुमती नजर आती थी।सारे दुकान चाहे वो किसी का हो,पहले अल नाम जोडना जरूरी होतख था।शुक्रवार को लगभग सारे रेस्तरां दिनभर बंद होते थे।वहां ठंडे पेय पीने का प्रचलन बहुत था,अत्यधिक गर्मी की वजह से।

एक बात गौरतलब है कि सारे कामगार वहां भारतीय उपमहाद्वीप समूह देशों के है और इसके अतिरिक्त फिलीपींस देश की लडकियां बहुत कामगार के रूप मे मिल जायेंगी।शेख रईसी करते है ,क्योंकि उनके पास पेट्रोल की संपत्तियां है।बस मालिक होते है और सभी को अपने पैसे देकर अपना काम करवाते है,जो दुनिया का आम चलन है।

मैने भारतीय लोग,भारतीय संस्कृति और भारतीयता का भी अच्छा-खासा प्रभाव वहां देखा।अधिकांश अरबी शेख जो अधिकारी या सेवा क्षेत्र मे तैनात थे,हिन्दी भलीभांति से समझ और बोल लेते थे। यह बहुत सुखद एहसास था,अमीर शेख जो अपनी अरबी भाषा का बहुत महत्व देते थे,हिन्दी का सम्मान देते थे।वहां हिन्दी फिल्मों और गानों का प्रचलन था। अक्सर माल हो या कोई पार्टी ,हिन्दी गाने खूब बजते थे। मंदिर ,गुरुवारे के नाम पर एक स्थान था जहां सभी भारतीय अपनी ईच्छा से जाते थे और एक छोटा भारत वहां नजर आता ,अपने पूरी पहचान के साथ। दीपावली की छुट्टी तो नहीं मिलती पर कंपनी की तरफ से उपहार और डिजर्ट सफारी का मौका मिला।वो एकदम यादगार लम्हा है।मरूस्थलीय बालू के टिलों पर एक विशेष गाडी से सैर।वो इतना रोमांचक और अकल्पनीय था कि मै बच्चों की तरह चिखने लगी थी।पूरा घंटे भर का सैर एक डरावने और अनजाने सपने की तरह लगा।उबड-खाबड रेतों के टिले....कभी गहरी खाई से तो कभी पठार से ....अंदर गाडी मे बेल्ट बांधने के बावजूद पूरा शरीर अप्रत्याशित हिचकोलें खाकर डवांडोल हो गया था।दूर दूर तक ना कोई हरियाली और ना कोई परिंदा तक नजर आ रहा था। जिधर नजर डालों बालू का समनंदर नजर आ रहा था।मरूस्थल की हकीकत मे क्या है ,पहली बार महसूस किया।कोई अनजाना यदि भटक जाय तो वही पल मे डर से उसका दम घुट जायेगा...उस रेत के भयानक विराने मे।उस सफारी के भयानक रोमांच के बाद हमे शाम ढले एक ऐसे स्थान ले जाया गया जहां एक कृत्रित रूप से एक छोटा गोलाकार गांव का रूप दिया गया था।वो भी एक विराने मे था।पर उसके अंदर काफी चहल-पहल और रंगीनी थी।सभी पर्यटकों के लिए भारतीय विविध व्यंजनों की व्यवस्था थी ,साथ मे नृत्य संगीत का भी पूरा इंतजाम था।मैने पहली बार एकदम विशुद्ध अरबी लेडी का उतेजक अरबी डांस देखा।फिर भी माहौल मे भारतीयता का ही वर्चस्व था।वहां अरबी मेहंदी भी लगवाने की व्यवस्था थी।मुझे काफी लुफ्त आ रहा था,इनसबका अनुभव मै पहली बार कर रही थी।सभी पार्टी और डांस-संगीत का आनंद ले रहे थे और वो बीच रेगिस्तान के प्राकृतिक नजारे मे।हैरान करने वाली बात थी कि उस गोल रौशन घिराव जो फूस और कच्ची झोपडी के शक्ल मे किसी भारतीय गांव का भ्रम दे रहा था,इसके अलावा चारों

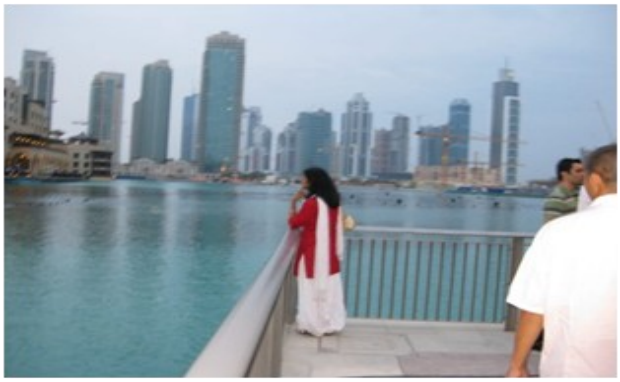

तरफ सिर्फ रेगिस्तान और अजीब सा डरावना विराना था। यादें तो बहुत सारी है,पर सबको समेटना आसान नहीं है।पर दुबई के ग्लोबल भिलेज हार्ट मे भी मैने भारतीय सामानों ,वस्त्रों, आभूषणों की ही भरमार देखी।मै भारत हर जगह और संस्कृति मे ढूंढ लूं तभी तो सच्चा भारतीत कहलाऊं।भारतीय होटल,स्पा,रेस्टोरेन्ट खासकर गुजराती ,दक्षिण भारतीय की तो मैने भरमार देखी।बस अब मै अपनी अन्य अनुभूतियों और यादों के पन्ने को बंद कर अपने यात्रा-वृत्तांत को यही विराम देती हूं, एक सुखद अनुभूति के साथ।

गज़ल

समीर द्विवेदी नितान्त

कन्नौज ,उत्तर प्रदेश

तेरी चौखट पे सब भुला बैठे ।।
माँगना क्या था माँग क्या बैठे ।।
हम बुज़ुर्गों के पास क्या बैठे ।।
सारी दुनिया का ज्ञान पा बैठे ।।
खुद मजाक अपना ही उड़ा बैठे ।।
उनको जो हाल ए दिल सुना बैठे।।
ढ़ाई आखर ही तो पढ़ाने थे।
जाने क्या क्या उसे पढ़ा बैठे ।।
जब से हक के लिए गुजारिश की।
सारे अपने खफा खफा बैठे।।
देख कर बेरुखी तेरे रुख पर।
क्यों न दिल बैठे हौसला बैठे ।।
ए नितान्त आज इस तरह गुमसुम।
किन खयालों में आशना बैठे ।।

****

रामनगीना मौर्य

कहानी की अब तक छह पुस्तकें प्रकाशित

साहित्य गौरव सम्मान','"डा. विद्यानिवास मिश्र" पुरस्कार ,"यशपाल पुरस्कार"
"साहित्य शिरोमणि सम्मान" ,"भारत गौरव सम्मान- 2022" आदि विभिन्न पुरस्कारों से सम्मानित
सम्प्रति- राजकीय सेवारत (उत्तर प्रदेश सचिवालय, लखनऊ में विशेषसचिव के पद पर कार्यरत।)

"शास्त्रीय-संगीत"

"और राऽग सब...बनेऽ बाऽराऽऽती..."

"अरे-अरे! ये क्या कर रहे हैं आप? बड़ी मुश्किल से तो बच्ची अभी-अभी सोई है। सुबह से रो रही थी। आपका ये शास्त्रीय-संगीत सुन कर अभी जाग जायेगी, तो फिर से आफत का परकाला हो जायेगी। मेरा तो शाम से ही जैसे दर्द से सिर फटा जा रहा है, और आपने दफ्तर से आते ही ये कैसेट लगा दिया...?"

परमानन्द बाबू ने शास्त्रीय-संगीत का ये नया कैसेट आज दोपहर में ही खरीदा था। दफ्तर से छूटते ही वो जल्द-से-जल्द घर पहुंच कर चाय की चुस्कियों संग, आंखें मूँदे इत्मिनान से इस कैसेट को सुनना चाहते थे। खैर...वो घर पहुंच गये थे। अपने पूर्व निर्धारित कार्यक्रमानुसार हाथ-मुंह धोकर, जैसे ही उन्होंने यह कैसेट लगाते, आराम कुर्सी पर आराम की मुद्रा धारण किया कि पत्नी सुलक्षणा देवी ने दूसरे कमरे से दौड़ते हुए आकर, टेप-रिकाॅर्डर बन्द करते उन्हें जोर से झिंझोड़ा।

"क्यों क्या हुआ बच्ची को? आज क्यों रो रही थी?" उन्होंने लगभग हड़बड़ाते हुए पत्नी से पूछा।

"आप के ऑफिस जाने के बाद लगभग ग्यारह बजे ही उसकी नींद खुल गयी। उसी के बाद रोना शुरू कर दिया। तीन-तीन बार दूध गरम करके पिलाने की कोशिश की। दूध ठण्डा भी हो गया पर उसने दूध के बोतल की तरफ देखा तक नहीं। निप्पल जैसे ही मुंह में लगाती, उबकाई आने जैसा मुंह बनाते, जीभ से ढ़केल देती। लगातार रोये जा रही थी। मैं तो उसके इस तरह रोने का कारण ही नहीं समझ पा रही थी।" सुलक्षणा देवी ने चिन्तित स्वर में कहा।

"तो क्या उसने आज दिन में कुछ भी खाया-पिया नहीं? सोई भी नहीं?" परमानन्द बाबू ने भी चिन्तातुर स्वर में पूछा।

"बिलकुल नहीं। पर मैं भी क्या करती? वो कुछ खा-पी ही नहीं रही थी। लगातार बस्स...रोये जा रही थी। किसी भी तरह मान नहीं रही थी।" सुलक्षणा देवी ने मानो असहायता जतायी।

"दूध चख कर देखा था? कहीं दूध का टेस्ट ही न खराब हो?" परमानन्द बाबू ने अपनी विद्वता झाड़नी चाही।

"नहीं, ऐसा नहीं है। मैंने दूध चख कर देख लिया था। दूध ठीक था, बल्कि मिठास के लिए ये सोच कर हल्की चीनी भी मिला दी थी कि क्या पता, स्वाद फीका होने के कारण न पी रही हो? पर सारे उपाय बेकार रहे।" सुलक्षणा देवी ने तनिक खीझते हुए कहा।

"कहीं इसके बोतल से दुर्गन्ध तो नहीं आ रही? जरा बोतल इधर तो ले आओ। सूँघ कर देखता हूँ।" परमानन्द बाबू ने एक विषय विशेषज्ञ की भांति जिज्ञासा की।

"ये लीजिए, और इत्मिनान से सूँघकर देखिये।" सुलक्षणा देवी ने इस बार लगभग तमकते, झट किचन से दूध की बोतल लाकर परमानन्द बाबू को थमाते हुए कहा।

"बोतल की गन्ध और दूध का टेस्ट भी ठीक है। पता नहीं क्या बात है?" परमानन्द बाबू ने बोतल को सूँघते, दूध की एक-दो बूँद जीभ पर रखते, अपने हिसाब से मौका-मुआयना करते, बुदबुदाते हुए कहा।

"इसके रोने की आवाज सुन कर तो बगल वाले माहेश्वरी अंकल भी अपनी पत्नी के साथ दरवाजे तक आ गये थे। कहने लगे...'परमानन्द भाई ने भी पता नहीं क्या खाकर पैदा किया है, जो ये बच्ची इतना जोर-जोर से रोती है।' जब मैंने कहा कि अंकल जी, जरा देखिये तो...? मेरे कहने भर की देर थी, उन्होंने बच्ची को गोद में लेते, उसे पुचकारते कहने लगे, 'बेटी वैसे तो तुम्हारी बच्ची जब शान्त हो खेलती-हंसती है, तो दुनिया की सबसे खूबसूरत बच्ची लगती है, लेकिन जब रोती है तो ऐसा लगता है, मानो आसमान सिर पर उठा लेगी।" सुलक्षणा देवी ने चिन्तातुर स्वर में दिन भर का वृत्तान्त कह सुनाया।

"अरे! बच्ची मेरी है। उस ससुरे को क्या दिक्कत है? ऐसे खलिहा, रिटाॅयरमेण्ट की कगार पर खड़े बकवास आदमी की बातें सुनती ही क्यों हो? दिन-भर तो फटी बण्डी, पटरे वाली जांघिया पहने अपने लाॅन में बैठा, देह खुजलाता रहता है। ऐबी-नसुड्ढा कहीं का?" परमानन्द बाबू ने यूँ अपनी खीझ उतारी।

"वैसे आदमी तो वो बहुत अच्छे हैं। बच्ची का बार-बार रोना सुनते ही पत्नी सहित दौड़ कर आये, और उसके रोने के पीछे ढ़ेर सारे कारण गिना गये। पूछने लगे...'बच्ची को ज्यादा कपड़े तो नहीं पहनाया गया है? बच्चों को गर्मी बहुत ज्यादा लगती है।' ये भी बता रहे थे कि 'कभी-कभी पेट में गैस के कारण अफरा सा महसूस होने, ऐंठन-दर्द होने के कारण भी बच्चे रोते हैं। बच्चे कुछ कह तो पाते नहीं, सिर्फ रोते-चिल्लाते ही हैं।' उन्होंने उसका पेट भी छूकर देखा। मेरी गोद से लेकर अपने कण्धे पर रखते, पीठ पर हल्की थपकी देते, उसे एक-दो बार डकार भी दिलाने की कोशिश की।" सुलक्षणा देवी ने परमानन्द बाबू के सामने माहेश्वरी अंकल की मुक्त कंठ तारीफ करनी चाही।

"अच्छा...?" ये कहते मानो, परमानन्द बाबू के चेहरे पर माहेश्वरी अंकल के प्रति सम्मान व प्रशंसा-भाव उमड़ आया हो। "और हां, ये भी कह रहे थे...'पहले बच्चे ज्यादातर मां-बाप को तंग करते हैं। उन्हें बच्चे पालने का अनुभव जो नहीं होता। पहले जमाने में संयुक्त परिवार हुआ करते थे। घर में दादा-दादी, बड़े-बुजुर्गों के हाथों में खेलते-कूदते सात-सात, आठ-आठ बच्चे पलते, हंसते-बोलते कब बड़े हो जाते, पता ही नहीं चलता था। पर आजकल के एकल परिवार में एक ही बच्चा पालने में मां-बाप को नानी याद आ जाती है।" सुलक्षणा देवी ने परमानन्द बाबू को तनिक विस्तार से समझाना चाहा।

"सो तो है। लेकिन राहत की बात यह है कि बच्ची अगर दिन में नहीं सोई है, तो रात में तो अवश्य ही सोएगी। जिससे हमारी नींद खराब नहीं होगी। कम-अज-कम मेरा इक्सपीरियन्स तो यही कहता है।" परमानन्द बाबू कुछ निश्चिन्त से लगे।

"लेकिन ये बात मेरे लिए राहत देने वाली नहीं हो सकती। वो नन्हीं सी जान, अगर भूखे ही सो गयी, तो भला मुझे कैसे नींद आयेगी?" सुलक्षणा देवी अभी भी चिन्तित थीं।

'उं...उं...वां...वाॅ...उं...वां...उं...वाॅ...'...लीजिए जाग गयीं नानी। बड़े आये इक्सपीरियन्स के नाती?" पति-पत्नी की इन बातों के बीच ही दूसरे कमरे में लेटी बच्ची जाग गयी, और रोने लगी।

"अब क्या किया जाये?" परमानन्द बाबू के चेहरे पर अनिश्चय-भाव सा छा गया।

"चलिए उठिये, उसे डा. बतरा को दिखा लाते हैं। अभी साढ़े सात ही तो बजे हैं। उनकी क्लीनिक खुली होगी।" सुलक्षणा देवी ने मानो रास्ता सुझाया हो।

"डा. बतरा ने अभी पिछले हफ्ते जो पीने वाली दवाई दी थी, उसे पिलाया था?" परमानन्द बाबू को जैसे कुछ याद आया हो।

"आपको कुछ पता भी रहता है? वो बूढ़ा पूरी शीशी, तीन दिन में ही पी चुकी हैं। जल्दी चलिए। स्कूटी निकालिए। डा. साहब अभी बैठे ही होंगे।" सुलक्षणा देवी ने लगभग झल्लाते हुए कहा।

"सही कह रही हो। हम हाथ पर हाथ धरे बैठे भी तो नहीं रह सकते।" परमानन्द बाबू ने प्रकृतिस्थ होते, आज्ञापालन के लिए खुद को तैयार किया।

'उं...उं...वां...वाॅ...उं...वां...उं...वाॅ...'...उनकी बातचीत के बीच ही, दूसरे कमरे से लगातार आ रही बच्ची के रोने की आवाजें अब तेज होती जा रहीं थीं। "बच्ची को उठा कर ले आओ। मैं उसे जरा कण्धे पर बिठा कर, चौराहे तक घुमा लाता हूँ। चाय की पत्ती खत्म हो गयी है, वो भी लेता आऊंगा। क्या पता घुमाने-फिराने, हवा-बयार लगने से चुप हो जाये? इस छोटे से दड़बेनुमा घर में दिन-भर बन्द रहने से किसका दम नहीं घुटने लगेगा? इतनी छोटी सी बच्ची को बार-बार अटर-पटर दवाइयां देना भी तो ठीक नहीं रहेगा।" परमानन्द बाबू ने पायजामा-कुर्ता पहनते हुए सुलक्षणा देवी से कहा।

"बच्ची तो चुप ही नहीं हो रही। पता नहीं आज क्या हो गया है इसे?" भुनभुनाते हुए सुलक्षणा देवी ने रोती हुई बच्ची को लाकर परमानन्द बाबू की गोद में दे दिया।

"आज तो बच्ची, जैसे चुप होने का नाम ही नहीं ले रही। बोतल में थोड़ा दूध बना कर दो। मैं कोशिश करता हूँ, शायद मेरे हाथों ही पी ले।" परमानन्द बाबू, लगभग आध-पौन घण्टे तक बच्ची को गोद में लिए-लिए काॅलोनी में घुमाने के बाद घर लौटे, और पत्नी से बोले।

बच्ची, एक पल के लिए चुप होती, अगले ही पल रोने लगती। परन्तु उसके रूदन स्वर में अब उतनी तीव्रता नहीं थी। मानो रो-रो कर उसका गला बैठ गया हो। आंखें रोते-रोते सूज कर लाल हो गयी थीं। जोर-जोर से सांस ले रही थी। उसका पेट भी खासा तना हुआ था।

"ठीक है, मैं थोड़ा दूध गरम करके लाती हूँ।" कहते, सुलक्षणा देवी किचन की ओर भागीं।

"तिराहे पर जो मंदिर है, वहीं नरायन चाची मिल गयीं थीं। कह रहीं थीं...'भला इस तरह भी कोई बच्चा रोता है? आप इसे किसी ओझा-सोखा को दिखाइये। क्या पता कोई हवा-बयार लगी हो?" परमानन्द बाबू ने, बच्ची को गोद में लिए-लिए, सीने से चिपकाये, पत्नी के पीछे किचन में आते, चिन्तित स्वर में कहा।

"आप भी कहां इन झाड़-फूंक की बात करने वालों की बातों में आ जाते हैं? कुछ नहीं हुआ है मेरी बच्ची को। मैंने अभी थोड़ी देर पहले, मम्मी से फोन पर बात किया है। कहने लगीं...'बच्चों को ज्यादा गर्मी लगती है। ज्यादा कपड़े नहीं पहनाना चाहिए। नवम्बर-दिसम्बर के हल्के जाड़े में ही प्यार-दुलार में तुम लोगों ने उसे दो-दो वूलन-इनर पहना दिया है। ऐसा भी क्या प्यार-दुलार की बच्चे की जान पर ही बन आये?' क्या पता उसी वजह से इसे ज्यादा परेशानी हो रही हो?" दूध की बोतल धुलने के साथ-साथ ही, पत्नी ने थोड़ी संशय भरी मुद्रा, थोड़ी समझाइश स्वर में कहा।

"मम्मी जी, शायद ठीक ही कह रही हैं। पुराने लोगों को इन सब बातों का गहरा अनुभव होता है। अब तो सुनते हैं कि यदि एक-डेढ़ साल के बच्चे को रोते हुए छोड़ दिया जाय तो यह उसके शारीरिक-मानसिक विकास के लिए बहुत अच्छा होता है। और सुनो...? लौटते वक्त चैराहे पर सब्जी का थैला लिए शर्मा साहब मिल गये। इसे रोता सुन वो कहने लगे...'आपकी बच्ची को किसी की नजर-वजर लग गयी है।' वहीं ठेले पर सब्जी बेचने वाला भी सब्जियां तौलते कहने लगा...'बाउ जी, बच्ची को किसी पीर-फकीर-ओझा को दिखलाइये। हो सके तो झाड़-फूंक भी कराइये। नजर लगी होगी तो बिलकुल ठीक हो जायेगी। हम तो हारी-बिमारी में अपने बच्चे को बरमअथान ही ले जाते हैं। आप भी ऐसा ही करिये, और हां, आप दून्नौ परानी नियमित रूप से पूजा-पाठ करिये। कोई मान-मनौती भी रख लीजिए।' जब मैंने बताया कि भई! मु्झे ऐसी बातों में खास दिलचस्पी नहीं है, तो वो कहने लगा...'आप एक काम तो

कर ही सकते हैं। एक घड़े में थोड़ा सा पानी रखकर किसी नदी या तालाब में प्रवाहित कर दीजिए। इससे बच्चे की सेहत सुधरेगी, और उसकी चिड़चिड़ाहट भी कम होगी। पानी-मिट्टी का संजोग होने से ऐसा होता है।"

"आप ऐसों की बकवास सुनते ही क्यों हैं? मैं ऐसा कुछ भी नहीं करने वाली।" सुलक्षणा देवी ने तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की।

"सही कह रही हो। यहां तो हर आदमी ज्ञानी और विद्वान है। जिससे भी पूछेंगे, मना नहीं करेगा। झट कोई-न-कोई लल्लन-टॉप आइडिया दे ही देगा। खन्ना जनरल-स्टोर पर चाय की पत्ती खरीद रहा था तो खन्ना साहब ने भी इसके रोने का कारण पूछा। जब मैंने उन्हें बताया...'अरे! कोई परेशानी वाली बात नहीं। आज सुबह से ही दूध नहीं पी रही है। भूखी है, इसीलिए रो रही है, तो जानती हो उन्होंने क्या सुझाव दे डाला?"

"अच्छा! तो अब उन्होंने भी आपको सुझाव दे डाला? क्या कहा उन्होंने...?"

"कहने लगे, इसके जूठे दूध को किसी काले रंग के कुत्ते को पिला दीजिए, और इसे जब भी दूध पिलाइये, दूध को चिमटे से हल्का सा 'टच' करा दीजिए, फिर पिलाइये। देखिये...दूध अवश्य पीयेगी।" परमानन्द बाबू ने तनिक सशंकित-भाव से कहा।

"तो क्या आपका इरादा ये सब ऊल- जलूल तरीके आजमाने का है...?" सुलक्षणा देवी ने, परमानन्द बाबू से थोड़ी तल्खी से पूछा।

"अरे! नहीं भई। सबसे पहले तो इसके वूलन-इनर उतारकर इसे एक सूती टी-शर्ट पहनाओ। थोड़ा दूध बना लो। मैं बहुत थक गया हूँ। एक कप चाय भी पिला दो। जब तक तुम चाय बनाओगी, मैं हमेशा की तरह इसे अपने पैरों पर झूलाते हुए सुलाने की कोशिश करता हूँ । क्या पता सो जाये?" पत्नी को ये सुझाव देते परमानन्द बाबू कुछ आश्वस्त से दिखे।

सुलक्षणा देवी ने बच्ची के वूलन-इनर को उतारते, उसे सूती टी-शर्ट पहनाकर परमानन्द बाबू की गोद में दिया, और किचन में चाय बनाने चली गयीं। अब परमानन्द बाबू ने टेप-रिकॉर्डर में शास्त्रीय-संगीत का अपना वही पसंदीदा कैसेट, पूरा सुनने वास्ते फिर से लगा दिया, और पांव मोड़ कर झूला बनाते, उस पर बच्ची को लिटाते, झुलाते हुए धीमें स्वर में संगीत सुनने का प्रयास करने लगे...'और राऽग सब बनेऽ बाऽराऽऽती...।

....बच्ची के रोने की आवाज नहीं आ रही है, जरा चलकर देखूं तो सही, क्या बात है...? यही सोच कर थोड़ी देर बाद जब सुलक्षणा देवी चाय का प्याला लेकर ड्राइंग-रूम में आयीं तो वहां का नजारा ही बदला हुआ था। परमानन्द बाबू की आंखें बन्द थीं, पर उनका मुड़ा हुआ पैर किसी स्वचालित यंत्र की भांति, झूले के मानिन्द दोलनमय था। बच्ची उनके पैरों के झूले पर झूलते हुए आराम से सो रही थी। टेप-रिकॉर्डर पर बिलम्बित लय में...'और राऽग सब बनेऽ बाऽराऽती...' शास्त्रीय-संगीत चल रहा था।

"सुनिये...?" पत्नी ने उन्हें धीमें से जगाना चाहा।

"क्या है?"

"श्-श्-श्...ये आपकी चाय। लगता है बच्ची सो गयी?" सुलक्षणा देवी ने बच्ची की ओर देखते, अपनी उंगली होठों से लगाते धीमें से कहा।

"हां, पर तुम भी धीमें बोलो, और टेप-रिकार्डर का वॉल्यूम थोड़ा कम कर दो।" परमानन्द बाबू ने चाय का प्याला पकड़ते हुए कहा।

परन्तु ये क्या...? उनकी खुसर-पुसर सुनकर, बच्ची ने अचानक ही अपनी आंखें खोल दी। लेकिन इस बार रोने के बजाय वो स्पीकर से आती आवाज की तरफ मुखातिब थी। शास्त्रीय-संगीत की स्वर लहरी, अब द्रुत लय में चल रही थी...'लट उलझी सुलझाऽ जाऽ बाऽलम....मोरे हाथन मेंहदी लगी...'

बच्ची, कभी स्पीकर की ओर तो कभी टुकुर-टुकुर, अपने मां-बाप की ओर ताकते मन्द-मन्द मुस्किया रही थी। उसी दौरान परमानन्द बाबू ने महसूस किया कि बच्ची सामने की दीवाल पर लगी, राजस्थानी, मधुबनी पेण्टिंग्स में भी रूचि लेती दिखी। पति-पत्नी एक-दूसरे की ओर भंकुआये से देखने लगे।

सुलक्षणा देवी को भी जाने क्या सूझा, वो दौड़कर किचन में गयीं और अगले ही पल दूध की बोतल लेकर हाजिर हुई। परमानन्द बाबू ने भी बिना एक पल गंवाए बच्ची के मुंह में दूध की बोतल लगा दी।

"लगता है, आपकी तरह आपकी बच्ची को भी शास्त्रीय-संगीत बहुत पसन्द है। जरा देखिये तो...भवानी जी को? मुंह में दूध की बोतल लगाये, स्पीकर की तरफ कैसे टकटकी लगाए देखते, संगीत सुनने की कोशिश कर रही है? मानों इसे शास्त्रीय-संगीत की कितनी गहरी समझ हो? धन्य हो देवी।" सुलक्षणा देवी के चेहरे पर विस्मय मिश्रित मुस्कान बिखरी हुई थी।

"हें-हें-हें! शायद तुम ठीक कह रही हो। ये तो चकित कर देने वाली बात हुई...?" परमानन्द बाबू भी विस्मित थे।

"हें-हें-हें...मैं आपका खाना यहीं लगा दूँ?" सुलक्षणा देवी के चेहरे पर बड़ी देर के बाद मुस्कुराहट लौटी थी।

"बिटिया रानी जब दूध पीकर इत्मिनान से सोयेगीं तब न...?" परमानन्द बाबू का संशय अभी भी बरकरार था।

"जरा, उसकी तरफ देखिये तो सही...। दूध खत्म हो गया है, और वो सो भी गयी है।" सुलक्षणा देवी अभी भी विस्मित थीं।

"अरे, वाह! ये तो सचमुच कमाल हो गया! अब तो मैं इसे हौले से दूसरे कमरे में लिटा सकता हूँ। तुम जल्दी से खाना लगाओ।" परमानन्द बाबू ने बच्ची को हौले से बेड पर लिटा दिया, और भोजन के लिए हाथ-मुंह धोने, वॉश-बेसिन के सामने जाकर खड़े हुए।

"आप जरा, ड्रेसिंग-टेबल के पास तो आइये। ये हुक लगा दीजिए। देखिये, ये ब्लाउज मुझ पर कैसा लग रहा है?" भोजन करके जब वे दोनों बेडरूम में आये तो सुलक्षणा देवी ने पिछले दिनों सिलवाकर लाये ब्लाउज को पहनते, परमानन्द बाबू से उसकी फिटिंग के बारे में जानना चाहा।

"ये ब्लाउज तो तुम पर एकदम फिट है। वैसे मैडम, आज ये किस पर बिजली गिराने का इरादा है? फिर...ये लाल रंग तो तुम्हारे गोरे बदन पर गजबै कहर ढ़ा रहा है?" परमानन्द बाबू तनिक मजाहिया मूड में थे, और जाहिर है...रिलैक्स भी।

"अब रहने भी दीजिए, ये लल्लो-चप्पों बतियाना। अभी बच्ची जाग जायेगी, तो आपकी सारी मदहोशी, एक मिनट में ही छूमंतर हो जायेगी।" सुलक्षणा देवी ने मानो परमानन्द बाबू को धरातल पर उतारना चाहा।

"अरे यार! तुम भी न बड़ी वो हो...?"

"मतलब...?"

"कठकरेजी...पथरकरेजी कहीं की...?"

"लेकिन, अब तो आपके पास अच्छा-खासा बहाना भी है।"

"बहाना...? वो क्या...?"

"फिर से शास्त्रीय-संगीत का वही कैसेट लगा दीजियेगा...'लट उलझी सुलझाऽ जाऽ बाऽलम...।" सुलक्षणा देवी ने चेहरे पर शरारत भरी मुस्कान लाते, लगभग गुनगुनाते हुए कहा।

"शायद तुम ठीक कह रही हो। क्या पता, मेरी बिटिया रानी भी कला पारखी हो? उसे भी मेरी ही तरह शास्त्रीय-संगीत प्रिय हो?" परमानन्द बाबू ने ये वाक्य सगर्व कहे थे।

"जब सूरत और रंग भी आपका ही पायी है, तो आदत भी तो आपकी ही पायेगी न? जितने समय ये पेट में रही, उतने समय आपने भी राग आधारित, ढ़ेर सारे गायकों के शास्त्रीय-संगीत के कैसेट्स खूब सुनें। आखिर, संग-साथ का कुछ असर तो इस भी पड़ेगा ही न? फिर, ये तो आपकी बेटी है। जाहिर है, इसने भी आपके शौक इत्यादि...सब कुछ आत्मसात कर लिया होगा। एही लिए तो अम्मा जी ने भी, इसके पैदा होने पर, इसे पहली बार देखते ही कहा था...'बाप -बेटी एक्कै गगरी के नहवावल हैं।" सुलक्षणा देवी ने मानो तंज किया हो।

"जहां तक मैं समझता हूँ, अच्छा संगीत तो वैसे भी सुकूनदायक होता है, फिर शास्त्रीय-संगीत की तो बात ही निराली है। ये कुदरत की अनमोल देन है। जितनी भी देर सुनिये, ऊबेंगे नहीं। देखा जाय तो, मन-पसन्द संगीत सुनने के दौरान, हम दुनियावी मसलों को भूले, किसी दूसरी दुनिया में ही खोये रहते हैं। कहा जाता है कि संगीत से गम्भीर बीमारियों का इलाज करने में भी मदद मिलती है। सुनते हैं कि संगीत तो पेड़- पौधों और जानवरों को भी पसन्द है। अगर ध्यान दिया जाय तो ये...सुर- राग- लय- ताल- खयाल- गमक- मुर्की- तोड़- झाला- आलाप...?"

"...अब सोना-ओना भी है, या सारी रात अपने शास्त्रीय-संगीत का ज्ञान-विज्ञान ही बघारते रहेंगे...?" परमानन्द बाबू शास्त्रीय-संगीत पर विस्तार से बतियाने के मूड में दिखे तो उनकी पत्नी ने उन्हें बीच में ही टोका। सुलक्षणा देवी, रात्रि के उस खुशनुमा प्रहर में, परमानन्द बाबू के ये असमय के अनमोल वचन-प्रवचन...? सुनने के मूड में कत्तई नहीं थीं। उन्होंने प्यार भरा गुस्सा जताया।

"हें-हें-हें....शायद तुम ठीक कह रही हो। हर चीज का एक वक्त होता है।" परमानन्द बाबू ने खिसियाते हुए हामी भरी। पति-पत्नी यूँ देर रात तक बतियाते, कब गहरी निद्रा में सो गये, उन्हें पता ही नहीं चला।

'...उं...उं...वां...वाॅ...उं...वां...उं...वाॅ...'...दूसरे कमरे से जब बच्ची के रोने से उनकी नींद खुली तो, गहरी नींद से जागते, अपने कपड़े ठीक करते, बाल संवारते, सुलक्षणा देवी ने सामने की दीवाल पर लगी घड़ी की ओर देखा। सुबह के सवा आठ बज रहे थे। सुलक्षणा देवी ने झट दूसरे कमरे में जाकर बच्ची को गोद में उठाया। गोद में उठाते ही बच्ची का रोना बन्द हो गया। वह अपनी मां की ओर टुकुर-टुकुर ताकने लगी। बच्ची को यूँ विस्फारित नेत्र, मगर प्यार से अपनी ओर देखते...'माथे की बिंदिया गिर गयी सेज पे...अपने हाथ सजाऽ जाऽ बाऽलम...मोऽरे हाथन मेंहदी लगी...' गुनगुनाते हुए सुलक्षणा देवी, उसके लिए दूध की बोतल तैयार करने वास्ते किचन में चली गयीं।

....लगता है सुलक्षणा देवी पर भी शास्त्रीय-संगीत का असर तारी होने लगा है...।' उधर बेडरूम में आँखें मूँदे, अधलेटे से, परमानन्द बाबू शायद नींद की खुमारी में बड़बड़ा रहे थे...।

काव्य

राजीव डोगरा
(भाषा अध्यापक)
गवर्नमेंट हाई स्कूल ठाकुरद्वारा
पता-गांव जनयानकड़

"अक्सर"

इश्क़ की रातें
और इश्क़ की बातें
अक्सर महँगी पड़ती है।
ज्यादा समझदारी और
लगी हुई इश्क़ बीमारी
अक्सर महँगी पड़ती है।
गैरों के साथ यारी और
अपनों के साथ गद्दारी
अक्सर महंगी पड़ती है।
जरूरत से ज्यादा समझदारी
और गैरों से वफादारी
अक्सर महंगी पड़ती है।

कृष्ण कुमार यादव

पोस्टमास्टर जनरल, वाराणसी परिक्षेत्र, वाराणसी-221002

विभिन्न विधाओं में अब तक कुल 7 पुस्तकें प्रकाशित ,उ.प्र. के मुख्यमंत्री द्वारा "अवध सम्मान", पश्चिम बंगाल के राज्यपाल द्वारा "साहित्य-सम्मान", छत्तीसगढ़ के राज्यपाल द्वारा "विज्ञान परिषद शताब्दी सम्मान" ,विक्रमशिला हिन्दी विद्यापीठ, भागलपुर, बिहार द्वारा डॉक्टरेट (विद्यावाचस्पति) की मानद उपाधि, राष्ट्रीय राजभाषा पीठ इलाहाबाद द्वारा "भारती रत्न"

"आवरण"

स्नेहा.....स्नेहा....ओ स्नेहा अभी तैयार नहीं हुई क्या, देखो तो शाम के 6 बज चुके हैं और ये मैडम अभी बाथरूम में हैं, अमन उसे छेड़ने के इरादे से बाथरूम का दरवाजा खटखटाता है। अभी आई अमन! प्लीज तुम थोड़ी देर आराम करो, बस मै जल्दी से तैयार हो जाती हूँ। ओके बाबा! कहता हुआ अमन बेडरूम में आ गया।

हँसती, मचलती, गुनगुनाते हुए स्नेहा बाथरूम से बाहर निकली। आखिर खुशी तो संभाले संभल नहीं रही थी। आज उनकी शादी की सालगिरह जो थी, सो दोनों एक दूसरे को सरप्राइज देने के मूड में थे। अमन ने उसे एक फाइव स्टार होटल में डिनर प्रपोज किया, तो स्नेहा ने बिना बताये चुपके से अमन के लिए गिफ्ट तैयार किया था।

बाथरूम से स्नेहा ने बेडरूम में कदम रखा तो देखा कि अमन बेड पर सोया पड़ा है। स्नेहा ने इसे अमन की एक शरारत समझी और शरारती अंदाज में अमन को बाहों में भर लिया। लेकिन ये क्या, अमन का शरीर तो बिल्कुल ठंडा पड़ा था। स्नेहा को कुछ भी समझ में न आया। अगले ही पल उसने तुरंत अमन की नब्ज देखी और पाया कि अमन उसे छोड़कर जा चुका है। स्नेहा स्तब्ध होकर निःश्वास बस उसे देख रही थी। अमन उसे ऐसे अचानक छोड़कर चला जायेगा, इसकी उसने कभी सपने में भी कल्पना नहीं की थी। अमन के सीने पर अपना चेहरा रखकर बेतहाशा काफी देर तक वह रोती रही। आँसू थे कि थमने का नाम ही नहीं ले रहे थे। अब तो एक पल जीवन जीना भी स्नेहा के लिए मुश्किल लग रहा था। अमन के बिना उसके जीवन में बचा ही क्या था? आखिरकार उसने भी अपना जीवन इसी के साथ खत्म करने की सोची कि अचानक उसे अपने पेट में पलने वाले उस नन्हें जान की सुध आयी। .....अरे यह मैं क्या सोच रही थी, ये तो अमन की निशानी है जो हमेशा पास रहेगा। अपने अमन की इस निशानी को मैं कैसे मिटा सकती हूँ। यह विचार आते ही वह फिर से अमन के सीने पर अपना चेहरा रखकर रोने लगी। अमन....अमन......अब मैं कैसे जिऊँगी, तुमने तो पूरा जीवन साथ निभाने का वादा किया था फिर मुझे मझधार में छोड़कर क्यों चले गये? बेसुध सी वह कभी अमन को बेतहाशा चूमती और फिर कभी अपनी चूड़ियाँ देखती तो कभी अपना श्रृंगार। आज के दिन को लेकर उसने क्या-क्या सपने संजाये थे, पर एक ही क्षण में सब खत्म हो गया।

स्नेहा की अभी उम्र ही कितनी थी। उसने तो अभी जीवन के 25 बसंत भी नहीं देखे थे।......एक नौजवान महिला जब विधवा होती है तो समाज उसे किन निगाहों से देखता है, यह उससे छुपा हुआ नहीं था। विधवा होने के नाम पर ही उसके सामने अपनी बुआ का चेहरा घूमने लगा। कितनी प्यारी और हँसमुख थीं बुआ। बात-बात पर खिलखिलाकर हँसना और दूसरों की टांग खीचने में कभी भी पीछे नहीं रहने वाली बुआ से उसने जिन्दगी के कई सबक सीखे थे। जब बुआ की शादी हो गई तो उनसे बिछुड़ने का गम कई दिनों तक सालता रहा। बस खुशी थी तो इस बात की कि फूफा जी भी उतने ही प्यारे और जिंदादिल थे। बुआ हमेशा कहा करतीं कि मैंने जरूर पिछले जन्म में कुछ अच्छे कर्म किये हैं तभी तो ऐसा पति पाया है।.... पर बुआ की इस प्यारी सी खुशहाल भरी जिंदगी को पता नहीं किसकी नजर लग गई कि सब कुछ एक झटके में खत्म हो गया। फूफा जी एक एक्सीडेण्ट में खत्म हो गये और उन्हीं के साथ बुआ का सब कुछ चला गया। अब बुआ का ख्याल रखने वाला कोई नहीं था पर नसीहतें देने वाले बहुत लोग थे। जो बुआ अपनी चंचलता के लिए जानी जाती थीं, उन पर ही तमाम बंदिशें आरोपित की जाने लगीं - ऐसे कपड़े न पहनो, बेड पर मत सोना, आज खीर मत खाना, शुभ काम में मत आया करो, किसी से बात मत करो, चेहरे पर हँसी मत लाना और भी न जाने कितने बंधन। आखिर इतने बंधनों के बीच कोई जिये भी तो कैसे? इतना ही नहीं रिश्तेदार भी बुआ के विधवा होने का फायदा उठाने के फिराक में लगे रहते थे। बुआ को उन लोगों की बुरी नजर से अपने ऊपर घिन आने लगी थी, अपने आप से उन्हें चिढ़ हो गयी थी......लेकिन ईश्वर की नियति मानकर उन्होंने जीना स्वीकारा। स्नेहा के दिलोदिमाग में बहुत सी बातें कौंध रही थीं। हर छोटी-छोटी बात अपने पति अमन से पूछकर करने वाली स्नेहा एकदम अकेली और असहाय हो गई थी।

बुआ का चेहरा रह-रह कर उसके सामने आता.....तो क्या मुझे भी इसी तरह जीना होगा? समाज के वहशी दरिंदों से अपने आपको मैं कैसे बचाऊँगी? माता-पिता की अनिच्छा के बावजूद अमन से लव-मैरिज करने के चलते अपने घर वालों से उसके संबंध नाममात्र के ही रह गये थे। अब वह किसके भरोसे यह जीवन काटेगी? अचानक स्नेहा ने एक अप्रत्याशित निर्णय लिया कि वह अपना शेष जीवन बुआ की तरह नहीं बनने देगी। यह सोचते ही आने वाले दिनों का खाका उसके दिलोदिमाग में उतरने लगा। अगले ही क्षण उसने गाड़ी निकाली और अमन को उसमें लिटाकर, स्वयं ड्राइविंग करते श्मशान घाट पहुँची। अमन के इस तरह चले जाने से और बुआ के बारे में सोचकर दुनिया

के रीति-रिवाजों से उसे नफरत सी हो गई थी। साहसिक कदम उठाते हुए उसने अमन के सारे संस्कारों को स्वयं करने का निश्चय किया। संस्कार पूरे करने के ठीक तेरह दिन बाद वह वापस घर पहुँची। यह सब करना एक पत्नी के लिए कितना कठिन होता है, लेकिन स्नेहा ने हिम्मत नहीं हारी।

अब स्नेहा बिल्कुल ही अकेली हो गयी थी। जिस घर की फिजा में उसके प्यार की गूँज उठती, वही घर अब उसे काटने दौड़ता था। उसने तो बस अपने पेट में पलने वाले अमन की निशानी की खातिर ही इस मौत से भी बद्तर जीवन को चुना था। समाज के मठाधीश और भला यह दुनिया किसी विधवा को कैसे स्वीकार कर सकती है? लोग उससे सिर्फ सवाल करेंगे.....सहानुभूति के नाम पर बुरी नजरें डालेंगे। विधवा को समाज में इस तरह स्वरूपित कर दिया गया है कि कोई पसन्द करने वाला नहीं होगा, सब उससे बचना चाहेंगे। स्नेहा के दिमाग में यही सब उथल-पुथल चल रहा था। वह आने वाले के लिए काफी चिंतित थी.....भला ऐसे में मैं अपने बच्चे की सुरक्षा कैसे कर पाऊँगी, उसे वो सब कैसे मिल पायेगा, जिसका वो हकदार है। अन्ततः स्नेहा ने प्रण किया कि वह अमन के न होने की बात किसी को नहीं बतायेगी। अमन की मौत एक राज की तरह उसके सीने में दफन हो जायेगी।

स्नेहा आर्थिक रूप से सक्षम थी और दृढ़-संकल्प भी। एक विधवा होते हुए भी वह इस राज को अपने तक ही रखना चाहती थी। पर उसके दिलोदिमाग में विधवाओं की स्थिति के बारे में सोचकर हमेशा विचलन होती। वह चाहती थी कि कुछ ऐसा करे जिससे विधवायें समाज में इज्जत के साथ जी सकें। उसने अपनी जैसी औरतों को जिन्हें जिल्लत भरी जिंदगी जीने के लिए छोड़ दिया जाता है, जिनके सूने जीवन में कोई रोशनी न देकर और अन्धेरा भर दिया जाता है, के लिए एक विधवा आश्रम बनाने की सोची। पर एक विधवा को भला यह समाज विधवा आश्रम क्यों चलाने देगा? यह सब करने के लिए तो उसे सधवा का ही रूप धारण करना पड़ेगा नहीं तो यह अन्धविश्वासी और पुरूष-प्रधान समाज उसकी राह ही रोक देगा। मन में ऐसा विचार आते ही अपने आँसुओं को वह रोक न सकी कि वह भी अब विधवा बन चुकी है।

स्नेहा का संकल्प अटल था, अतः अगले ही दिन से वह अपने मिशन में जुट गई। अन्ततः कई दिन की मेहनत और भागदौड़ के पश्चात विधवा आश्रम खोलने का उसका संकल्प पूरा हुआ। अपनी बुआ को उसने विधवा आश्रम के उद्घाटन के लिए आमंत्रित किया और उन्हीं को सम्मानपूर्वक उस आश्रम की संचालिका भी बना दिया। वक्त का कारवां गुजरता जाता और हर दिन सूरज नई रोशनी लेकर दुनिया में उजियारा फैलाता। स्नेहा को भी धीरे-धीरे अपनी मेहनत सार्थक लगने लगी। जितनी भी लाचार विधवा औरतें उस आश्रम में आतीं उन्हें नवजीवन का एहसास होता। ईश्वर द्वारा प्रदत्त इस अनमोल जिन्दगी, जिसे मानव ने अपनी सीमाओं में संकुचित कर घृणित रूप दे दिया था,का सुख वे फिर से प्राप्त करने लगी थीं। स्नेहा ने इस आश्रम में किसी भी चीज की कमी नहीं रखी। जो स्नेह का भूखा था उसे स्नेह, जो सम्मान का भूखा था उसे सम्मान और जो अंधेरे से परेशान थी उसे नवजीवन का प्रकाश मिला। आश्रम की सब महिलायें स्नेहा को खूब स्नेह और प्यार देतीं तथा फलने-फूलने का आशीर्वाद भी। सबकी आँखों में चमक देखकर स्नेहा को अपने झूठे आवरण को बनाये रखने में कोई बुराई भी नजर नहीं आती। इसी दरम्यान एक दिन आश्रम की एक बुजुर्ग महिला ने बातों ही बातों में उसके उसके पति के बारे में पूछ ही लिया। स्नेहा तो पहले सकपकाई पर अगले ही क्षण बनावटी हँसी के साथ बोली- मेरे पति बिजनेसमैन हैं और कार्य की व्यस्तताओं के चलते वे अक्सर बाहर ही रहते हैं। इतना कहते हुए वह तेजी से बाहर आ गई।

आज स्नेहा एकदम उदास और एकाकी महसूस कर रही थी। सुबह जगी तो ऐसा लगा मानो अमन ने अभी-अभी उसको प्यार से जगाया हो.....पर सपने तो सपने ही होते हैं। नींद खुलते ही स्नेहा को यथार्थ का अहसास हुआ। सपने में ही सही, पर उस प्यारे से कोमल अहसास को महसूस कर स्नेहा के सब्र का बांध टूट गया। वह बिस्तर पर ही फफक-फफक कर रोने लगी। आखिर आज स्नेहा का जन्म दिन था, फिर अमन कैसे न याद आता। अमन के साथ गुजारे हुए पिछले जन्म-दिन की सारी यादें उसके मनमस्तिष्क को झकझोर रही थीं।.....कहीं शायद इसलिए तो अमन ने सपने में आकर अपने होने का अहसास कराया हो, ऐसा सोचकर वह और भी उदास हो गई। वह जितना ही अपने अतीत को भुलाने की कोशिश करती, वह उतनी ही दृढ़ता से अमन के बहाने उसके समक्ष खड़ा हो जाता। अनमयस्क और बोझिल मन से वह आलमारी की ओर बढ़ी और उसमें रखी अमन की फोटो को देर तक निहारती रही। अतीत की यादें आपस में गुत्थमगुत्था होकर हिलोरें मारतीं और उसी के साथ स्नेहा की आँखों से आँसुओं का सैलाब भी बढ़ता जाता। जल्दी-जल्दी में वह आलमारी यूँ ही खुला छोड़कर बोझिल मन से बाथरूम में चली गई। स्नेहा के बदन पर शावर से गिरता पानी उसके दिलोदिमाग को ठंडा करने की कोशिश करता। स्नेहा कभी अपने भरे-पूरे बदन को देखती तो कभी थककर शावर के नीचे बैठ जाती। वक्त के तूफानी अंधड़ों ने स्नेहा को असमय ही बुजुर्ग बनाना आरम्भ कर दिया था।

स्नेहा जब बाथरूम में थी, इसी दौरान आश्रम की एक महिला उससे मिलने आई। आवाज देने पर भी जब स्नेहा नजर नहीं आई तो वह बेडरूम तक चली आई। बेडरूम में ज्यों ही उसकी नजर सामने खुली आलमारी पर पड़ी तो वह चौंक उठी। सामने खुली आलमारी में अमन की तस्वीर रखी हुई थी और उस पर माला चढ़ी हुई थी। उसके दिमाग में बार-बार कौंधने लगा कि जब भी स्नेहा से आश्रम की महिलायें उसके पति अमन से मिलने का अनुरोध करतीं तो स्नेहा किस तरह बात को टाल जाती थी। पता नहीं एक दिन किस भावावेश में स्नेहा ने आश्रम की महिलाओं को अमन की फोटो दिखा दी थी।.....पहले तो उस महिला को विश्वास नहीं हुआ, पर जब करीब आकर देखा तो यह वही इंसान था

जिसकी स्नेहा ने अपने पति के रूप में फोटो दिखाई थी। इससे पहले कि वह कुछ समझ पाती, तभी स्नेहा बाथरूम से सफेद साड़ी पहन कर निकली। स्नेहा की नजर उस महिला पर पड़ी तो वह अवाक् रह गई। उस महिला को भी सफेद साड़ी और माला चढ़ी फोटो देखकर समझने में कुछ देरी नहीं लगी पर वह इस विरोधाभास का कारण नहीं समझ पा रही थी। आखिरकार उसने स्नेहा से पूछ ही लिया-"यह तो आपके पति अमन जी की फोटो है, फिर उस पर माला कैसी?" अब स्नेहा के पास छुपाने के लिए कुछ नहीं था। उसे लगा जैसे किसी ने भरे बाजार में उसे नंगा कर दिया हो।

हारकर स्नेहा को सच्चाई बतानी ही पड़ी। वह महिला कभी स्नेहा का चेहरा देखती तो कभी अमन की फोटो। स्नेहा बोलती जा रही थी - "तुम तो विधवा हो और एक विधवा का दर्द समझ सकती हो। यह समाज इस बात को क्यों नहीं महसूस करना चाहता है कि पति की मौत पश्चात एक विधवा का सब कुछ तो वैसे ही छिन चुका होता है, फिर ये लोग उसका सहारा बनने की बजाय उसके इज्जत से जीने के हक को क्यों छीनना चाहते हैं ? एक पति के रूप में सहयोगी, भरण-पोषण करने वाला, प्रेम करने वाला, सम्मान देने वाला इंसान जो खुद ही खो चुका है, उस विधवा के जीवन में और क्या शेष रह जाता है, जो यह समाज उससे लेना चाहता है ? जिस क्षण उसे लोगों के स्नेह, ममत्व, अपनत्व की सबसे ज्यादा जरूरत होती है, लोग उसके बदन पर अपनी निगाहें टिकाये रहते हैं। मानो विधवा का पति के अलावा इस दुनिया में कोई रिश्ता ही नहीं है। माँ-बाप, भाई -बहन सभी बेगाने हो जाते हैं। क्या कोई स्त्री अपनी मर्जी से विधवा होती है, फिर समाज उसे कलंकित क्यों करता है? क्या किसी पुरूष की पत्नी की मौत हो जाने पर उसके साथ भी यही व्यवहार होता है.....नहीं, फिर स्त्री के साथ ही ऐसा दोयम व्यवहार क्यों होता है?" भावावेश में बहकर स्नेहा की आँखों से झर-झर कर आँसू गिरने लगे थे। ऐसा लगता मानो सब्र का बाँध जो लम्बे समय से रूका पड़ा था अचानक ही टूट गया हो। स्नेहा ने अपना सर उस महिला के कंधे पर रख दिया। वह जोर-जोर से रोती और बोलती की - "हाँ, मैं एक विधवा हूँ। मेरे पति की मृत्यु काफी पहले हो चुकी है। अमन को मैंने तब खोया था जब अपनी शादी की सालगिरह पर मैं बाथरूम में थी और अमन आॅफिस से लौटकर मेरा इन्तजार कर रहे थे। जब मैं बाहर आई तो मैं अमन को खो चुकी थी। तबसे आज तक मैं नहाने के बाद अपने इस वैधव्य रूप में रहती हूँ। मैं अमन को अब भी महसूस करती हूँ, अमन अब भी मेरे पास है, लेकिन शरीर रूप में नहीं एक अहसास के रूप में, एक सहारे के रूप में। इस दुनिया को यह रूप दिखायी नहीं देता और वो मुझे एक विधवा और लाचार समझकर मेरे साथ न जाने कैसे पेश आती, सो मैंने यह सधवा का आवरण ओढ़ रखा है। मैंने किसी को नहीं बताया कि मैंने अमन को खो दिया है..... नहीं चाहिए थी मुझे किसी की झूठी हमदर्दी। मैंने यह झूठा आवरण सिर्फ अपने आपको इस गंदे समाज की नजरों से बचाने के लिए ओढ़ा है। आज मैं सधवा हूँ तो लोगों ने मेरी सहायता की, मुझे सम्मान की नजरों से देखा। मैंने आश्रम खोलने के लिए इसीलिए सोचा क्योंकि मैं समझ सकती थी कि एक विधवा का जीना कितना मुश्किल होता है। विधवाओं के प्रति समाज की कुत्सित मानसिकता ने मुझे विधवा रूप में सबके सामने आने से रोका। मैंने अपनी पति का दाहसंस्कार सभी रूढ़ियों को तोड़ते हुए स्वयं अपने हाथों से किया और वो सब कुछ किया जिससे उनकी आत्मा को शान्ति मिले। अमन के जाने के बाद मैं बेहद अकेली हो गयी थी। मैंने तो अपनी जीवन-लीला भी खत्म करने की सोची लेकिन मेरे पेट में पल रही अमन की निशानी मुझे ऐसा करने से रोक रही थी। मैंने उसी समय निश्चय किया कि मैं किसी भी विधवा के साथ ऐसा दुव्र्यव्यहार नहीं होने दूँगी। इसी निश्चय के साथ मैंने अपने दुख को भूलकर दूसरों के दुखों को कम करने का मन बनाया।"

स्नेहा की बातें सुनकर वह महिला भी अपने आँसू न रोक सकी। जिस स्नेहा को वह क्या समझती थी और वह क्या निकली....यह सोचकर उसके आँसू थमने का नाम ही नहीं ले रहे थे। रूंधे गले से उसने कहा-"दीदी, आप कितनी महान हैं। दूसरों के दुख को कम करने के लिए आप अपना दुख हंसते-हंसते पी गईं। आपने हम लोगों को हंसाने के लिए, नवजीवन देने के लिए खुद का त्याग कर दिया। हम लोगों को सहारा देने के लिए आप अकेली होकर भी हमारी संबल बनीं। हमारे जीवन के सूनेपन को भरने के लिए आप अकेले ही सूनेपन का सामना करती रहीं।" दीदी! आपका ऋण तो हम कभी नहीं चुका सकते लेकिन एक वायदा आपसे जरूर करते हैं कि हम आश्रम की सब महिलायें एक ताकत बन कर रहेंगी तथा दूसरे का संबल बनेंगी और आपकी ही तरह दूसरी बहनों को नवजीवन जीने को प्रेरित करेंगी।

आज स्नेहा को अपना मकसद पूरा होते दिखा। उसने महसूस किया कि अब ये बेबस विधवा नहीं रहीं बल्कि अपनी शक्ति को पहचान चुकी सबल नारी हैं, जो इस समाज की कुदृष्टि, अपमान, सहानुभूति के नाम पर छलने का डटकर मुकाबला कर सकती हैं। अपने प्रयास को सार्थक होते देख स्नेहा की आँखें अमन को यादकर छलछला उठीं, उसके प्यार के बगैर यह सम्भव नहीं था।

गज़ल

लोकेश कुमार 'रजनीश'
भरतपुर (राजस्थान)

तू मुझसे मिलने को उतावला क्यूँ है?
तहज़ीब भूल गया है बावला क्यूँ है!?
संस्कार-विवेक मर गए क्या तुम्हारे
बात सुनकर हुआ रंग साँवला क्यूँ है!?
तुम इज़्ज़त मिट्टी में मिलाने पे तुले हो
जवाब दो आपके मुँह पे ताला क्यूँ है!?
मुझे औरों के ढंग की तराजू में तौल रहे
जुबां से ऐसा लफ्ज़ ही निकाला क्यूँ है!?

अपनी बातों से मेरा दिल तोड़ दिया तुमने
चलो तोड़ दिया फिर मुझे संभाला क्यूँ है!?

अर्चना त्यागी
व्याख्याता रसायन विज्ञान एवं कैरियर परामर्शदाता
जोधपुर (राज.)

कहानी

"ईश्वर सत्य है।"

एक बड़ी कंपनी के मालिक सेठजी बहुत अमीर थेसमाज में भी बड़ी प्रतिष्ठा थी। परन्तु अचानक कम्पनी घाटे में चली गई। देखते ही देखते वो कर्ज में डूब गए। हवेली भी गिरवी रखी गई। आमदनी के सभी स्रोत बन्द और व्यवसाय ठ्प्प हो गया। उद्दमी व्यक्ति थे, फिर से प्रयास करने लगे परन्तु बात बन नहीं रही थी। नौकरी भी तलाश की। मिली भी पर वक़्त बहुत सख्त था सो रुकी नहीं। अब दिन रात चिंता सताती की हवेली कैसे बचाई जाए।

सेट्ठजी अवसाद में डूब गए। मित्र मंडली जो कभी साथ नहीं छोड़ती थी, अब बचकर निकलने लगी। बहुत कोशिश करने पर भी हवेली को बचाने के लिए पैसे नहीं जुटा पाए।इतनी बड़ी रकम आसानी से कैसे मिलती। कोई उपाय नजर नहीं आता था।दिन रात पीने लगे। हवेली को बचाने की आखिरी उम्मीद भी उनकी गिरती सेहत के कारण धूल में मिलती नजर आने लगी।पूरा परिवार ही अवसाद में डूब चुका था। किसी को कुछ नहीं सूझता था। दो दिन बाद हवेली कि नीलामी थी।

अगले दिन शाम को उनके घर की घंटी बजी। सामने एक बहुत ही आकर्षक युवक खड़ा था।द्वार खुलने पर वह अंदर आया। सोफे पर बैठ गया। हाल चाल पूछे। कोई उसे पहचान नहीं पा रहा था। थोड़ी देर बातचीत करने के बाद उसने पूछा सेठजी कन्हा हैं ? सब चुप। वो रो दिन भर नशे में ही रहते थे। किसी से बात करना तो दूर कुछ दिनों से मल मूत्र का भी उन्हें आभास ना था। उनके पास जाने में भी बास आती थी।

उनकी बेटी ने चुप्पी तोड़ी। " पिताजी बीमार हैं। दूसरे कमरे में आराम कर रहे हैं।" क्या आप मुझे उनसे मिलने देंगी ?" आगंतुक ने विनम्रतपूर्वक आग्रह किया।" जी वो मिल पाने की स्तिथि में नहीं हैं।" उसने झिझकते हुए उत्तर दिया। "मै बहुत दूर से उनसे मिलने के लिए ही आया हूं। किसी भी हालत में मेरा उनसे मिलना जरूरी है। मेरी आपसे प्रार्थना है कि उनके पास मुझे ले चलें।" घर के सभी सदस्य एक दूसरे की और देखने लगे।फिर कुछ सोचकर बेटी ने ही चुप्पी तोड़ी।" जैसी आपकी इच्छा। आइए मेरे साथ।" कहकर घर के भीतर वाले कमरे की ओर चल पड़ी।

सैट्ठजी के कमरे में पन्हुचकर आगनतुक ने उनके चरण स्पर्श किए। फिर भाव विभोर होकर उनसे लिपट गया। उनकी हालत देखकर उसकी आंखों में आंसु थे। घर के सभी सदस्य हतप्रभ थे। किसी को कुछ समझ नहीं आ रहा था। कुछ देर बाद सेठजी ने आंखें खोली। "राघव" धीरे से उनके मुंह से निकला।" हां चाचाजी उठो। हवेली को छुड़ाने जाना है आज"। उसने उत्तेजित स्वर में बोला। सेठजी की आंखों से टप टप आंसु गिरने लगे। " नहीं बेटा हवेली अब नहीं बचेगी। तुम कुछ नहीं जानते हो"। मुंह पर दोनों हाथ रखकर रोने लगे। उसने अपने रुमाल से उनके आंसू पोंछे और उन्हें उठाने की कोशिश करने लगा।,"उठाे, चाचाजी हवेली छुड़ाने भी जाना है। मैंने सब व्यवस्था कर दी है लेकिन कागजी कार्यवाही के लिए आपको साथ जाना पड़ेगा।," परंतु तुम्हे कैसे...?" कहते कहते उनकी ज़बान लड़खड़ा गई। कृतज्ञता मिश्रित आश्चर्य का भाव उनकी आंसुओं से भरी आंखों में भी स्पष्ट दिख रहा था।" बताऊंगा, अभी आप मेरे साथ चलिए।" कहकर उसने उन्हें बिस्तर से उठाया और अपनी चमचमाती गाड़ी में बैठाकर ले गया। कुछ घंटों बाद वे दोनों वापिस लौट आए। हवेली के काग़ज़ उनके हाथ में थे। सेठजी उसके साथ सोफे पर ही बैठ गए। बहुत दिनों बाद सामान्य दिख रहे थे।सभी घरवाले भी उसी कमरे में बैठे थे।," मेरी कंपनी में काम करता था पहले,इसके पिता कैंसर के मरीज थे। उस समय इसकी मदद की थी जिसे इसने सूद समेत वापिस लौटा दिया है। बड़ा आदमी बन गया है अब।" सेठजी का एक अलग ही व्यक्तित्व आज नज़र आ रहा था। सभी घरवालों की आंखों में खुशी के आंसू थे। सब चुप थे, क्या बोलें समझ नहीं आ रहा था। इच्छा हो रही थी कि भगवान का दूत बनकर आए उस युवक के पैर छू लें। स्थिति को भांपकर उसने विनम्रता पूर्वक सेठजी से जाने की आज्ञा मांगी।," एक मीटिंग के सिलसिले में इस शहर में आया था चाचाजी। आपके बारे में पता लगा तो पहले यहां चला आया। अब मुझे जाना होगा, सब लोग मेरा ऑफिस में इंतज़ार कर रहे हैं। लेकिन आप अपना वादा पूरा करना चाचाजी।" उसने सेठजी की ओर मुस्कुरा कर देखा और चला गया। सभी जानना चाहते थे कि वादा क्या किया था सेठजी ने। सेठजी ने नज़रे झुका ली। धीमे स्वर में बोले," अब हैसियत में बहुत फर्क आ गया है। होनहार लड़का था इसलिए इसके पिता से बेटी से इसकी शादी कराने का वायदा किया था। लेकिन अब इसके कर्जदार होकर रिश्तेदार नहीं बन सकते हैं।" सब कुछ अप्रत्याशित था। सभी लोग एक दूसरे का मुंह देख रहे थे।

जीवन सामान्य हो गया था। पहले हवेली फिर कारोबार सब वापिस लौट आया था। सेठजी की बेटी भी अब उनके साथ ही काम कर रही थी। घर में सभी चाहते थे कि उस भगवान के दूत से उसका रिश्ता कर देना चाहिए। परंतु सेठजी हर बार चुप हो जाते थे। एक दिन सब घर पर ही थे तब राघव अपनी मां के साथ आया। सगाई की पूरी तैयारी के साथ। सेठजी के छोटे भाई ने अपनी ज़िम्मेदारी पर रिश्ता स्वीकार कर लिया। बिटिया रानी को राघव ने महारानी की तरह अपने घर में रखा है। सेठजी को अब भी गुरु के जैसा सम्मान देता है और सेठजी के छोटे भाई को अपने पिता समान ससुर का मान देता है। बाकी घरवाले उसे अब भी भगवान का दूत ही मानते हैं। हमारे अच्छे कर्म किसी न किसी मध्यम से हमें भगवान के दर्शन करवा ही देते हैं।

नीलू चोपड़ा

गुड गाँव

कहानी

"एक थी सुशीला"

एक लम्बी, तीखे नैन नक्श और भूरी भूरी आँखों वाली लगभग 32 साल की युवती मेरे सामने आ कर खड़ी हो गई । उसने बड़ी शालीनता से हाथ जोड़ कर मुझे नमस्कार किया । उसके साथ रमेश नाम का एजेंट भी आया था। रमेश, घरेलू काम करने वाली नॉकरानी प्रदान करने वाली एजेंसी का मालिक था। रमेश एजेंट ने मुझे उस लड़की का परिचय देते हुए बताया कि मैडम,यह सुशीला है। आपने अपने घर के लिए खाना बनाने और अन्य काम काज करने के लिए एक मेड के लिए मुझे फोन किया था उन बातों को ध्यान में रखते हुए मैं सुशीला को लाया हूँ । आधार कार्ड आदि सब इसके पास है। साथ में इसका पति बहादुर है जो इसे यहां छोड़ने आया है। बहादुर एक नेपाली युवक था मुझे अभिवादन करके खड़ा हो गया । सुशीला ने बताया कि वह पहले भी बहुत से शहरों में काम कर चुकी है परन्तु दिल्ली आने का पहला मौका है। उसका पति दिल्ली में ही किसी दूरस्थ कम्पनी में ड्राइवर है। सब कुछ तय होने के बाद एजेंट और सुशीला का पति बहादुर उसे हमारे घर छोड़ कर चले गए ।

पति के जाते ही सुशीला बड़ी फुर्ती से हाथ मुँह धोकर किचन में रात के खाने की तैयारी में जुट गई। यह देख कर मैनें उसे कहा कि सुशीला,आज तो तुम आराम कर लो । कल सुबह से काम शुरू कर लेना।अभी हम लोग बाज़ार से भोजन मंगवा लेंगे । यह सुन कर सुशीला बड़ी ही नम्रता से धीमे स्वर में बोली नहीं मैडम ,हम काम करने ही तो बच्चों को छोड़ कर इतनी दूर यहाँ नेपाल से आए हैं। चार पैसे कमा कर बच्चों को पढ़ा लिखा देंगे। मैं अब यहाँ खाली बैठ कर क्या करूँगी ? उसकी यह बात सुन कर मुझे अपने सुझाव पर शर्म आने लगी। मैं एक ईमानदार मेहनती,कर्मठ औरत को उसके कर्तव्य से विमुख करके आराम करने की सीख दे रही थी। ठीक है कह मैं आराम से टी वी देखने लगी। हमने उसे अपने नाश्ते,लंच और डिनर का समय सब बता दिया था पति पत्नी रात्री 8 बजे डिनर लेते हैं । ठीक 8 बजे वह एक कुशल वेटर की भांति दो थालियों मे खाना परोस कर ले आई। कहने को तो रोज़ की तरह वही दाल सब्जी और रोटी ही थी पर सुशीला ने उसमें ही अपने पाक कौशल का बेहतरीन नमूना पेश कर दिया था। ऐसा स्वादिष्ट भोजन की मन प्रसन्न हो उठा। अब हम दोनों को रोज़ ही नित नई चीज़ों का स्वाद चखने को मिलता । कभी वह इडली डोसा सांभर बना कर किसी भी दक्ष दक्षिण भारतीय महिला को मात दे देती तो कभी पूरन पोली बना कर महाराष्ट्र का स्वाद चखाती थी । गुजरात का खमण ढोकला तो वह ऐसा स्पंजी बनाती की जवाब नहीं होता वह जलेबी समोसा बनाने में भी दक्ष हलवाई को टक्कर दे सकती थी। अब मुझे मेहमानों के आने से घबराहट नहीं होती थी । हमारे घर अब मेहमान भी आने के बहाने खोजते लगे थे। मैं मन ही मन अपने भाग्य को सराहती रहती थी। घर की साफ़ सफ़ाई में भी कोई कोर कसर नहीं छोड़ती थी। घर शीशे की तरह चमकने लगा था । हर वस्तु यथास्थान रहती। हम दोनों पति पत्नी के कपड़े कब धुलते और कब इस्त्री हो होकर बड़े करीने से अलमारी में रख दिए जाते हमें पता भी नहीं चलता। सुशीला ने आराम करना मानो सीखा ही नहीं था। मैं मन ही मन डरती रहती कहीं मेरी कोई पड़ोसिन उसे अधिक वेतन का प्रलोभन देकर अपने घर न ले जाए ।

सुशीला हमसे खूब हिलमिल गई थी । वो हम दोनों से बहुत स्नेह करने लगी थी। उसने हमारे घर को ऐसे अपना लिया था मानो हमारी कोई पिछले जन्म की बेटी या बहू हो।

सोमवार के दिन हमारी कालोनी में हाट बाज़ार लगा करता था । जहाँ से सस्ते भाव में फल सब्जियां और अन्य जरूरी वस्तुएं बाज़ार की तुलना में बहुत सस्ती मिल जाती थीं। हम मध्यमवर्गीय लोगों के लिए यह बाज़ार वरदान सा था । खेतों से लाई एक दम ताज़ा फल और सब्जियां कम दाम में मिल जाती थी। मैंने तो कभी भी ऐसे भीड़ वाले स्थानों पर जाने की हिम्मत नहीं जुटा पाती थी। इस लिए हमारे पास दुकान या फेरी वालों से महँगे फल सब्जियों को खरीदने के सिवाय और कोई दूसरा विकल्प न था ।

सोमवार शाम होते ही हाट में जाने के लिए अनेक महिलाएं और पुरुषों की दौड़ शुरू हो जाती । सप्ताह भर के लिए सस्ते दामों में फल और सब्जियों को खरीदने का इससे अच्छा मौका उन्हें रोज़ नहीं मिलता था । मेरी कुछ पड़ोसिनों भी वहाँ जाया करती थीं । रोज़ मर्रा की चीज़ें ।अनाजों, मसाले और अन्य चीजों को खरीदने के लिए धक्का मुक्की के नज़ारे का आँखों देखा हाल मैं उन्हीं पड़ोसिनों के मुँह से बहुत बार सुन चुकी थी । वहाँ से बिना जेब कटवाए, धक्का मुक्का खाए, सकुशल वापिस आना भी एक जंग जीत कर आने के बराबर होता था।सुशीला ने जब इस हाट के बारे में सुना तो वह झट से बोली मैडम ,क्यों न मैं भी हर सोमवार को आप दोनों को डिनर करवा कर हाट से सस्ती फल और सब्जियां ले आया करूँ ?हम लोग इन फेरी वालों से दुगुने दामों में बासी सब्जियां क्यों खरीदें ? मेरें उसे बहुत मना करने के बावजूद भी वह न मानी और सोमवार को 2 या 3 थैले कंधों पर लटका कर हाट का महायुद्ध जीतने जाने लगी। लगभग 2 घण्टे में वह सामान से लदी फदी लौट कर आ जाती। उसके चेहरे पर न तो थकावट न किसी प्रकार की झुंझलाहट ही दिखाई देती थी। वह आते ही फल और सब्जियां को फ्रिज में रख कर आराम से बैठ कर बाजार का

आँखों देखा हाल मुझे सुना कर खूब हँसती और हमें भी हँसाती थी। सुशीला को हमारे घर काम करते हुए 6 महीने हो चुके थे। हम दोनों मन ही मन अपने भाग्य को सराहते। मेरे बेटी और बेटा जब कभी छुट्टियों में आते तो उनके लिए चाइनीज भोजन बनाती थी । उसे चाऊमीन , मो मो और न जाने कितने तरह के चाइनीज व्यंजन बनाने आते थे। ऐसा लगता था मानो सुशीला के हाथ में कोई जादू है वह लौकी, टिंडे और परवल जैसी सब्जियों में भी गजब का स्वाद भर देती।

खाली बैठना उसे बिल्कुल पसंद नहीं था पूरे दिन किसी न किसी काम मे लगी ही रहती । कुछ काम न हो तो मेरी छोटी सी बगिया की क्यारियों में मिट्टी उलट पलट करके खाद और पानी देती।जिससे हमारी सूखती बगिया भी रंग बिरंगे फूलों से लहलहाने लगी थी।

हर महीने की 4 तारीख को नियम से अपना वेतन लेकर नज़दीक के बैंक से अपने पति को भेज देती थी। पति बच्चो को भिजवा देता। हम बेफ़िक्र हो कर सुशीला पर घर की पूरी जिम्मेदारी सौंप सुख और आराम के झूले झूलने लगे थे। मैं अब अपनी सहेलियां और रिश्ते दारों से सुशीला की तारीफ़ करती नहीं थकती थी।

एक दिन सुबह को मैं सुशीला द्वारा बनाया लज़ीज नाश्ता करते करते टी वी देख रही थी । पति किसी जरूरी काम से शहर से बाहर गए हुए थे। अचानक मुझें उच्च स्वर में सुशीला के रोने की आवाज़ सुनाई पड़ी। मैं बुरी तरह घबरा गई। किसी अनहोनी की आशंका से मन काँप उठा। मैंने तुरन्त किचन में जाकर उसके रोने का कारण पूछा। हँसमुख सुशीला को ऐसे ज़ोर ज़ोर से रोते देख मेरा ममत्व उमड़ गया। मैं उसके सिर पर हाथ फेरते हुए उसे चुप कराने लगी। उसके रोने का कारण पूछने पर उसने बताया कि मैडम, अभी अभी मेरे पति की कंपनी से फ़ोन आया है कि मेरे पति की अचानक तबीयत खराब हो गई है उसे शायद दिल का दौरा पड़ गया है।उसके मालिक ने उसे अस्पताल भर्ती तो करवा दिया है और मुझे तुरन्त आने को कहा है। मुझे समझ नहीं आ रहा उधर पति की यह हालत है। इधर आपको ऐसे अकेले छोड़ कर कैसे जाऊं ? अंकल जी भी बाहर गए हुए हैं मैने उसे सांत्वना देते हुए समझाया कि मेरी चिन्ता छोड़ कर तुरन्त अपने पति के पास जाओ। मैं तो कुछ दिन के लिए अपनी बेटी को बुला लूँगी। वह रुआंसे स्वर में बोली ठीक है बस आप तो एक टैक्सी बुलवा दीजिए। मैंने जल्दी से टैक्सी बुलाने के लिए फोन किया। 15 मिनट में ही टैक्सी आगई। उसके पति की कुशलता की प्रार्थना करते हुए उसे विदा किया।

मैनें अपनी बेटी को फ़ोन करके अपने पास बुला लिया । सुशीला के पति की अस्वस्थता की खबर सुन कर मेरी बेटी भी चिंतित हो गई। हम दोनों ने मंदिर जाकर बहादुर के स्वस्थ होने की प्रार्थना भी । बहुत देर तक हम दोनों माँ और बेटी सुशीला के कर्मठता, अपनापन और पाक कला की की चर्चा ही करते रहे। घर भी सूना सा लग रहा था।

अगले ही दिन दूध वाले के बिल को चुकता करने के लिए जैसे ही मैंने अपनी आलमारी के लॉकर को खोला तो वो खाली था।। हर महीने की पेंशन हम बैंक से निकाल कर अलमारी के लॉकर में रख देते थे। जरूरत के अनुसार निकाल के खर्च करते रहते। इस महीने की आईं हम दोनों की पेंशन वहाँ से गायब थी। यही नहीं, हमने बेटी के जन्मदिन पर देने के लिए एक डायमंड की अंगूठी खरीदी थी वो भी नहीं थी। मैं सकते में आ गई अलमारी की चाब हमेशा मेरे तकिए के नीचे रहती थी। बाहर के किसी व्यक्ति का आना जाना नहीं था। मैंने तुरन्त सुशीला को फ़ोन लगाया परन्तु उसके मोबाइल में स्विच ऑफ़ का मैसेज आ रहा था । अब मैंने रमेश एजेंट को फोन किया वो तुरंत आया। पूरी बात सुन कर वह भी हैरान रह गया और बोला मैडम, मैं तो उसे आपके घर छोड़ कर चला गया था यहाँ से वो कहाँ गई इसकी मुझे कोई भी जानकारी नहीं है । आपकी तसल्ली के लिए मैं पता करता सबसे पहले उसने बहादुर को फोन किया तो वहाँ भी स्विच ऑफ का मैसेज आया पता करने पर पता चला कि वह बहुत पहले ही वह कम्पनी छोड़ चुका है। मैं बहुत शर्मसार हो उठी। मैनें अपने 32 साल के अध्यापन के कार्य काल में न जाने कितने विद्यर्थियों को अपनी सूझबूझ और स्नेह से सही मार्ग दिखलाया उनकी मनोवृति समझ कर उनका मार्ग दर्शन किया परन्तु आज उम्र के इस पड़ाव में एक अदनी और अनपढ़ सी लड़की के हाथों मूर्ख बन गई । मैं इसी उधेड़ बुन में बैठी थी तभी मेरी खास सहेली और पड़ोसिन स्नेह आ गई । मेरे चेहरे पर छाई उदासी को भांपने में उसे देर न लगी। वह बोली बड़ा सन्नाटा सा है । क्या बात है? चुपचाप क्यों बैठी हो ? क्या तुम्हारी तबीयत खराब है ? मैंने फीकी मुस्कान देकर उसके प्रश्नो को टालने की कोशिश की वो बोली चलो फिर अपनी सुशीला के हाथ की बढ़िया सी चाय पिलवाओ । चाय की चुस्की के साथ कुछ गपशप करेंगें । मैनें जब बेटी को चाय बनाने के लिए कहा तो वह बोली तुम्हारी नॉकरानी सुशीला कहाँ है ? दिख नहीं रही? हाँ मुझे वह सोमवार को हाट में मिली थी , कह रही थी कि खरीद दारी के लिए मैडम के दिए रुपए जल्दबाजी में घर ही भूल आई हूँ अब वापिस आने जाने से बहुत देर हो जाएगी आप 1000 रुपए दे दीजिए घर जाकर मेम साहब से लेकर लौटा दूँगी । उसने क्या तुम्हें नहीं बताया?यह सुन कर मैं हतप्रभ रह गई। अब मुझे सुशीला द्वारा किए गए धोखे की सब जानकारी स्नेह को देनी । पूरा वृत्तांत सुन कर वह बोली तुम बुरा मत मानना मैं तुम्हें इस बात के लिए बहुत पहले ही सावधान करना चाहती थी पर तुम्हें तो उस लड़की ने ऐसा सम्मोहित किया हुआ था कि तुम उसके खिलाफ़ कुछ सुनना पसन्द ही नहीं करती थी । उसने आगे बताया कि अक्सर सोमवार हाट में मेरे साथ मेरी सास और बेटा भी चले जाते हैं । वे दोनों पास वाले पार्क में बैठ जाते हैं मेरी सास खुली हवा का लाभ ले लेती है और मेरा बेटा खेल कूद का आनंद उठा लेता है । मैं हाट से खरीदारी पूरी कर उन्हें साथ लेकर घर लौट आती हूँ । उन दोनों ने मुझे बताया था कि अक्सर सुशीला पार्क में एक बैंच पर किसी पुरूष के साथ बैठी दिखती है । वे दोनों आपस में हँसते

हँसते बोलते, खाते पीते और मज़ा करते हुए दिखते हैं। उस समय मेरी भी आँखों पर सुशीला के गुणों का एक मोटा सा पर्दा पड़ा था उसके आर पार कुछ दिखाई ही नहीं देता था। मैंने इसको महज़ उन दोनों की नज़रों का धोखा कह कर उनकी बातों को झुठला दिया और सोचा कोई उससे मिलती जुलती शक्ल वाली लड़की होगी। वो दोनों भी चुप हो गए। स्नेह द्वारा बताई इस बात को सुन कर मुझे समझ नहीं आ रहा था कि मैं उस शातिर दिमाग लड़की के अभिनय को दाद दूँ या अपनी भावुकता और नासमझी का मातम मनाऊँ। मेरे मन में अनेकों सवाल उमड़ रहे थे। थोड़े से लाभ के लिए कुछ लोग दया , ममता और अपनत्व जैसी भावनाओं के साथ ऐसा खिलवाड़ क्यों कर जाते हैं ? जिसके फ़लस्वरूप अनेक मेहनती और जरूरत मन्द लोगों से भी विश्वास उठ जाता है। काश इन्हें अपनी आत्मा की आवाज़ सुनाई दे पाती।

पति ने जब वापिस लौट कर सुशीला द्वारा किए गए विश्वासघात के बारे में सुना तो आवाक रह गए। मुझे सान्त्वना देते हुए बोले दिल छोटा मत करो ,जो नुकसान होना था वह तो हो गया परन्तु भविष्य के लिए हमें सबक ले लेना चाहिए कि कभी किसी पर अंधा विश्वास नहीं करना चाहिए।कुछ देर बाद ही एक नेपाली युवती कुछ लोगों के साथ मेरे घर आई और बोली मैं आपकी नॉकरानी से मिलना चाहती हूँ कारण पूछने पर उसने बताया कि 6 महीने पहले मेरे पिता ने एक नेपाली युवक से मेरा विवाह किया था। पति बहुत अच्छा था वह कहीं दूरस्थ फेक्ट्री में काम करता था वह शनिवार शाम वह घर आते और सोमवार सवेरे चला जाता। मेरे पिता का मेरे सिवाए कोई नहीं है। इसलिये मैं अपने पिता के साथ ही रहती हूँ। मेरे पति भी अनाथ थे इस लिए हम सब एक दूसरे का सहारा बन गए। वह दामाद को पुत्रवत मानने लगे। मेरे पिता ने चाइनीज व्यजंन का काम करके बहुत पैसा कमाया था। अब वह आराम से घर पर ही रहते थे। सब कुछ ठीक चल रहा था इस शनिवार मेरे पति नहीं आए न ही कोई सन्देश आया तब हम लोगों ने चिंता वश उनकी खोज शुरू कर दी। इसी दौड़ भाग में हमने देखा कि मेरे सारे गहने और मेरे पिता की जमा पूँजी सब गायब थी। किसी ने बताया कि उसने 2 दिन पहले मेरे पति को स्टेशन पर आपकी नॉकरानी के साथ देखा था। इस लिए आपके घर पता करने आ गई। मैनें उसे कहा बिना किसी सबूत के मेरा कुछ कहना सही नही है । हमने उसे पुलिस स्टेशन जाकर रपट लिखवाने की सलाह दी और बताया कि हम भी अपनी नॉकरानी की पुलिस स्टेशन में रपट लिखवा चुके हैं तुम भी अपने पति के गुमशुदा होने की रपट लिखवा दो इससे उसे ढूढने में सहायता मिलेगी। उसने अपने साथ आए उसके पिता जब रपट लिखवाने के लिए जा रहे थे जाते जाते उन्होंने अपने मोबाइल से अपने दामाद की फ़ोटो दिखाई कि आपको कुछ सूचना मिले तो उन्हें सूचित कर दें। जब मैंने वह फ़ोटो देखी तो मैं आवाक रह गई वह और कोई नहीं सुशीला द्वारा बताया गया उसका पति बहादुर ही था।

मेरा मन ऐसे ढोंगी , फरेबी और लालची लोगों के प्रति कड़वाहट से भर उठा। अब वह दोनों न जाने किस शहर में किसे अपने धोखे का शिकार बना रहे होंगे। अपने लालच के चलते उनके कारण मानवीय रिश्तों से विश्वास उठ जाता है। जिसका परिणाम मेहनती और शरीफ़ लोगों को भुगतना पड़ता है। लोग ऐसे किस्से सुन शरीफ और मेहनती लोगों पर भी सहसा विश्वास नहीं कर पाते।

मेरे घर में सुशीला के पुराने कपड़े और कुछ सामान पड़ा था। मैंने उसे उठा कर नीचे जा रही कचरे की गाड़ी में फेंक दिया। ऐसे लोगों का यहीं असली स्थान होता है। इसके साथ ही मैनें सुशीला से जुड़ी सभी यादों का अंतिम संस्कार भी कर दिया।

काव्य

अर्चना रॉय
शिक्षाविद् एवं साहित्यकार
मुंबई महाराष्ट्र

"बादल का दिल कोई बादल कर दे"

सावन की घनघोर घटाएं
गरज-गरज कर किसे बुलाए,
जाने किसकी लगन लगी है
क्यूं बैरी यूं शोर मचाए !!

हूक उठी दिल में ये कैसी
सुनकर उसकी करुण पुकार,
मेरा मन बेचैन हुआ क्यूं
जाने हुई मैं क्यूं बेजार!!

शायद उसे भी याद आया है
कोई प्यारा बिछडा साथी,
शायद उसका भी मन रोया है
जैसे रोये दीये की बाती!!

बरस बरसकर ये काली घटा
आंखें मेरी भी खाली ना कर दे,
बडे जतन से रोका है खुद को
पागल पलकें ना
फ़िर भारी कर दे !!

इस बरसते बादल के
सूखे मन को गीला कर दे
हो कुछ ऐसा ऐ मेरे दिल
बादल का दिल भी
कोई बादल कर दे !!

दीपक कुमार
जन्म स्थान~ छपरा (बिहार)
स्थाई पता~ ग्राम +पो- चेंफूल
जिला - सारण (बिहार) - 841209

"आखिर साजन जागे"

मुंशीजी- यह शब्द उनके साथ ऐसे चिपका कि गाँव वाले उनका नाम तक भूल गये। आलम ये है कि वे यदा-कदा खुद अपना नाम भूल जाते हैं। बहरहाल मित्र, रिश्तेदार, समाज सब उनको मुंशीजी के नाम से ही जानते हैं। साहब रेल में नौकरी करते हैं, ओहदा क्या है, किसी को मालूम नहीं, परंतु कहते सब स्टेशन मास्टर ही हैं।

एकबार साहब चिलचिलाती धूप में बैग लिये चले जा रहे थे कि एक ग्रामीण ने टोका- परनाम मुंशीजी! कब आए? मुंशी जी ने क्षुब्ध होकर कहा- क्या? मैं तो दो महीने की छुट्टी काटकर आज वापस जा रहा हूँ काम पर। बेचारा सीधा-सादा ग्रामीण हैरान-परेशान! मुंशीजी दो महीने से गाँव में छुट्टी पर थे और उसे मालूम तक नहीं। दोष उसका भी नहीं। मुंशीजी की जीवनशैली ही ऐसी है। जिस दिन आते हैं, लोग देखते हैं और जब जाते हैं तब कोई देखता है तो देख ले वरना उनकी दुनिया अमोघ की माँ से शुरू होती है और अमोघ की माँ पर ही जाकर खत्म हो जाती है।प्रभावती देवी यानी अमोघ की माँ! पति को कैसे हैंडल करना है, कोई उससे सीखे। क्या मजाल कि उससे पूछे बिना मुंशीजी एक चाय तक पी लें।

एक दिन मुंशीजी बाजार में मिल गये। यह मेरे लिए आठवें अजूबा से कम नहीं था। पता नहीं कैसे और किन हालातों में मुंशीजी को परमिशन मिली होगी बाजार तक आने की। मैंने पूछा- चाय? वे बोले- नहीं, मैं पी चुका हूँ। दिन में दो चाय से अधिक हुई तो अमोघ की माँ जीने नहीं देगी?

मैंने पूछा- पान?

वे बोले- पिटवाने का इरादा है क्या? अमोघ की माँ ने लाल मुँह देखा नहीं कि सच में मार-मार कर लाल कर देगी। मैने कहा- उफफफफ! इतनी बंदिश, अच्छा चलिए, रेलवे से बहुत कमाए है, चलिए आज कुछ बीयर-सीयर हो जाए। मुंशीजी घबराए- बाप रे बाप..... आज तो तुम मुझे मरवा कर छोड़ेगे। अमोघ की माँ मेरे साथ-साथ तुमको भी धो देगी।तब मैंने पहली बार सोचा कि सबकुछ अमोघ की माँ यानी कि प्रभावती देवी ही डील करती है तो ये आदमी जी क्यों रहा है? इसे इस दुनिया का हिस्सा होने का कोई हक नहीं।

मुंशीजी के जिम्मे एक ही काम है- कमाना। उसे कहाँ और कैसे खर्च करना है, उनकी पत्नी प्रभावती देवी तय करती है। बेटों की शादी कब तय हो गई, कितनी दहेज मिली, इससे मुंशी जी को क्या, उन्हें तो एक रिश्तेदार की तरह आना है और ब्याह अटेंड करके काम पर लौट जाना है। बेटियों के लिए लडका ढूंढना हो, दहेज की बात करनी हो, शादी का दिन रखना हो, सब उनकी औरत के जिम्मे। मुंशीजी कहते भी हैं - पूर्व जन्म में कुछ पुण्य ही किया होगा कि अमोघ की माँ जैसी पत्नी मिली। बेचारी सब संभाल लेती है। मुझे तो बस नौकरी करने से मतलब है।

लेकिन नौकरी तो हमेशा रहने वाली थी नहीं। उम्र पूरी हुई और साहब आखिरकार रिटायर्ड होकर गाँव आ गये। महीना दो महीना तक तो मुंशीजी घर में पत्नी के आंचल तले ही खाकर -कभी चाय कभी समोसा तो कभी चप खा !दुबके रहे यदाकदा कोई मिलने आ भी जाता तो अंदर से !मोटा भी गये मुंशीजी घर पर -साहब खुद ही आवाज बदल कर बोल देते नहीं है।

मुझे तो सच में हैरानी होती है कि कोई आदमी इस कदर अपनी पत्नी के आकर्षण में बंध के कैसे रह सकता है कि स्वयं का अस्तित्त्व ही भूल जाए तो कभी-कभी उनसे प्रेरणा भी मिलती है और मुख से अनायास ही निकल जाता है- साजन हो तो ऐसा!

उनसे प्रभावित होकरकई बार मैंने भी अपनी धर्मपत्नी से टूटकर प्रेम करने का प्रयास किया परंतु विफल रहा! हर बार मेरे प्रेम को उसने मजाक में उड़ा दिया ! मैं समझ गया था कि न मैं मुंशी बन सकता हूं न मेरी पत्नी प्रभावती देवी की जगह ले सकती है। बहरहाल ,साहब में आजकल छोटे ही सही पर बदलाव नजर आने लगे हैं। रिटायरमेन्ट अपने आप में एक बिमारी होती है ,वो भी उसकी चपेट में आने लगे। कभी-कभार घर के बाहर चबूतरे पर बैठना आरंभ किये। आने जाने वाले लोगों से हाल-चाल भी होने लगा। इसतरह गांववालों को मालूम हुआ कि मुंशीजी की सेवानिवृत्ति हो चुकी है। एक दिन तो हद ही हो गया , साहब कुदाल लेकर खेतों की ओर चल पडे। रास्ते में कुछ लडकों ने चिढाया भी- अब खेती होगी क्या?

तब कभी मुंह न खोलने वाले मुंशीजी ने उन्हें असंख्य गालियों का आशीर्वचन भी दिया। गांव में गाली तरह के -सुनकर मजे लेने वालों की एक जमात होती है। तरह हथकंडे अपना कर वो सामने वाले को तंग करते हैं और उसकी गालियों में परमानंद की अनुभूति करते हैं। कुछ दिनों तक मुंशीजी उन लड़को का शिकार रहे। घर के बाहर कदम रखना शुरू ही किया था कि मनचलों ने हौसला पस्त कर कदा ये भी सुनने क़ो मिल -दिया था। मनचलों के मुंह से यदा लगता है मैडम का प्रोग्राम दिन में भी चालू हो -जाता था ,गया हैतभी तो मुंशीजी घर से बाहर हैं। अब इब प्रोग्राम का मतलब क्या था ,मुंशी जी मन ही मन समझने की कोशिश तो करते थे लेकिन अपनी पत्नी प्रभावती से पूछने की हिम्मत नहीं होती थी। कहीं बेलन-वेलन चला दे तो कौन बुढापे में

हड्डी का दर्द लेकर जिएगा।मुंशीजी की एक बेटी अभी कुंवारी थी। उसके लिए लड़का ढूंढा जा रहा था। इधर घर में आजकल रमेसर का आना-जाना शुरू हुआ था। कहां कब कोई लड़का देखा गया, लड़के की योग्यता क्या है, उसका घर द्वार कैसा है, ये सारी बातें प्रभावती और रमेसरा के बीच में होती थी। मुंशीजी की राय कोई मायने नहीं रखती थी। उन्हें तो सिर्फ दहेज के पैसे देने थे। मुंशीजी महान तो थे लेकिन इतने भी नहीं कि उनको बुरा न लगता हो लेकिन कुछ भी उखाड पाने की स्थिति में नहीं थे। पत्नी के सामने जाते ही गाय हो जाते थे और पुचकार कर कह देती थी- "बडा भाग्य मेरा कि आप जैसा पति मिला। आप तो देवता हैं।"और साहब लौट जाते थे क्योंकि देवता निर्विकार होते हैं।

आजकल रमेसर के अलावा दो- चार और लोगों ने भी आना शुरू कर दिया था। बाहर की कोठरी में वे सब दिन-दिन भर ताश खेलने लगे थे और बीच-बीच में प्रभावती अंदर से उनके लिए चाय-पानी भी भिजवाने लगी थी। एक दिन मुंशीजी से रहा नहीं गया तो ताश मंडली पर भड़क गये- "मेरे घर को धर्मशाला समझ रखा है क्या? अभी के अभी बंद करो ये सब नहीं तो थाने में कम्पलेन करूंगा।"

ताश खेलने वाले हैरान थे। मुंशीजी गुस्सा भी करते हैं, उन्हें मालूम नहीं था। हो-हल्ला सुनकर प्रभावती बाहर आई और पति पर ही बरस पड़ी- "आप तो जीवन भर बाहर रहे, गांव में सबसे बनाकर नहीं रखती तो घर-द्वार, खेती-बाड़ी, बेटा-बेटी की शादी, कुछ भी नहीं हो पाता। आपको समाज में उठना-बैठना नहीं आता तो पड़े रहिए न कमरे में। मुझ-पर छोड़ दीजिए सब, समझे।"

मुंशीजी कुछ कहना चाह ही रहे थे कि अंदर से लूंगी बांधते हुए रमेसर निकला- क्या हुआ भौजी?

रमेसर को देखकर मुंशीजी गुस्से से कांपने लगे, मुंह से कुछ बोले नहीं लेकिन हाथ पैर बुरी तरह कांप रहे थे- "लगता है इस घर का मालिक रमेसर ही है, मैं नहीं।"

उस शाम मुंशीजी अपनी छड़ी लेकर गांव में निकले तो दस बजे रात को लौटे। पत्नी ने पूछा- कहां थे अबतक तो जवाब मिला- जहन्नुम में।

अगले दिन भी वही हुआ और उसके अगले दिन भी और धीरे-धीरे यह मुंशीजी का रूटिन ही बन गया। शाम को निकलना और देर रात तक लौटना।

फिर कई दिनों तक मुंशीजी की मैंने खबर नहीं ली। मैं भी अपने काम में व्यस्त था, उधर रूख करने का मौका नहीं मिला। एक शाम बाजार से लौट रहा था तो खिड़की से प्रभावती देवी ने आवाज दी- "बाबू घर में आइए, कुछ जरूरी काम है।"बाहर की कोठरी में अब भी चार लोग ताश खेल रहे थे। मैं सीधे आंगन में गया, वहां मुंशीजी चारपाई पर लेटे थे। उनकी पत्नी बोली- "देखिए बाबू, बुढ़ापे में इनका चाल-चलन। रोज सांझ को निकलते हैं और देर रात उधर से दारू पीकर लौटते हैं।"मेरी हैरानी का ठिकाना न था। मुंशीजी और दारू....नहीं, नहीं ये नहीं हो सकता। तभी प्रभावती ने उनका तकिया सरकाया- देखिए.....तकिया के नीचे सिगरेट का एक पैकेट था और दारू की दो तीन छोटी-छोटी खाली शीशियां पड़ी थी। उनकी पत्नी बोले जा रही थी- " इनसे कहिए सुधर जाएं वरना सुधारना मुझे आता है और आजकल ये पेंशन भी उठाकर मुझे नहीं देते, अपने पास रखते हैं गुलछरे उड़ाने के लिए।"

मैने मुशीजी से कहा- "ये क्या सुन रहा हूं, आप ये सब करने लगे, आपका तो एक आदर्श पति कहलाते थे।" मुंशीजी भड़क गये- " बाबू तुम इसे नहीं जानते लेकिन अब मैं इसके तिरिया चरितर क़ो समझ गया हूं। जीवन बीत गई इसकी गुलामी करते-करते, मगर अब नहीं, अब एक पैसा इसके हाथ नहीं लगने दूंगा और मेरा जो मन होगा, वो करूंगा।"

प्रभावती गुस्से में बोली- " अभी बेटी की शादी बाकी है, तुम सुधरोगे या कुछ चाहते हो?"

इस बात पर तो मानों मुंशीजी की हड्डियों में जवानी का करंट आ गया, एक झटके में चारपाई से उठे और छड़ी तान कर चिल्लाए- " चुप एकदम चुप वरना सिर फोड़ दूंगा।" शोर सुनकर रमेसर अंदर आया, उसके साथ वो ताश के खिलाड़ी भी थे। उन्हें देखते ही मुंशीजी का क्रोध सातवें आसमान पर पहुंच गया। अभिमन्यु की तरह चक्रव्यूह में दनादन छड़ी चलाने- साले तुमलोगों ने मेरे घर को कोठा ही समझ लिया है। आज फैसला हो ही जाए।

दो-चार छड़ी लगते ही दुश्मन मैदान छोड़कर भाग चुके थे। प्रभावती देवी कोने में दुबकी तूफान के थमने का इंतजार कर रही थी।

मुंशीजी को पानी पिलाकर ठंडा किया और बाहर निकला तो देखा दरवाजे पर बड़ी भीड़ थी। लोगों ने पूछना शुरू किया- "क्या हुआ, क्या हुआ?"

मैंने कहा- कुछ नहीं भाई, अपने-अपने घर जाओ....कुछ नहीं हुआ, बस इतना समझ लो कि चोर-उच्चके दुम दबाकर भागे, आखिर साजन जागे।

काव्य

सलिल सरोज

आप ही सिपहसालार और आप ही सिहाग* हैं
फिर कौन है दूसरा , जिस ने लगाई ये आग है

हमें समझाने आते हैं सब लोग बारी- बारी
जो देखते नहीं, अपने गिरेबाँ में कितने दाग हैं

चाँदनी उतरा करती थी जहाँ पूरे शबाब पे
वो नदियाँ अब उल्टियाँ करती हुई झाग हैं

वो परिंदा बहुत खुश था अपना घोसला बना के
जिसे पता नहीं था सैयाद की गिरफ़्त में बाग़ है

यहाँ ना तो तूफ़ान हैं , ना ही अंधेरों का राज़ है
अब देखना है कि किस के हाथ में चराग़ है

घर का बँटवारा हुआ और बराबर हिस्सा मिला
अब मसअला ये है कि माँ किस के भाग है

मनोज मिश्रा
राष्ट्रीय बैंक से सेवानिवृत्त
अहमदाबाद

लघुकथा

"निःशब्द संवाद"

शब्दों की किरचें इधर उधर उछल रही थीं। जिस्म तो नहीं पर दिल को घायल बराबर कर रही थीं। घायल होने वाले और करने वाले भी अजनबी न थे बल्कि एक लंबा सफर साथ चल चुके थे। फिर भी न जाने क्यों एक दूसरे को कभी समझ ही न पाए। या शायद साथ रहते रहते एक दूसरे को तवज्जो देना ही भूल गए थे। बात की शुरुआत हमेशा किसी छोटी सी चीज से होती थी पर बातों बातों में बात इतनीं बढ़ जाती थी कि लगता था अब साथ मे जीना शायद संभव नहीं है। फिर पसरता था एक मौन। एक लंबा मौन जिसे चाहता दोनों में से कोई नहीं था पर तोड़ने की पहल भी कोई नहीं करना चाहता था। कशमकश में डगमगाती सी पर जीवन की गाड़ी चल रही थीL अगर इसे हम चलना मानें तो, क्यों आखिर इतना सब होने के बाद भी दोनों साथ ही थे। कभी कभी लगता है कि आदमी परिपक्व होने के नाम पर मनमानी पर उतर आता है। झगड़े तो तब भी थे जब दोनों का साथ हुआ पर तब उसे तब रुठना कहते थे क्योंकि मनाने पर दोनों ही मान जाते थे। अब तो मनाने में पहल कौन करे इसके लिए भी दोनों में से किसी को परवाह नहीं है। पहले संवाद मौन तोड़ने के लिए थे अब सिर्फ पेट भरने के लिए हैं - खाना परोसें, नाश्ता बन गया, अभी रात का भी खाना बनाना है। अपने अपने मोबाइल हैं अपने अपने डेस्क टॉप, लैप टॉप, जरूरत ही कहाँ है इंसान की। मशीनों से गुजरा हो जाता है। बड़ा हवादार मकान है अलग अलग कमरे हैं पर जहां देखो सिर्फ मौन पसरा है। कोई झुकने को तैयार नहीं। अपने को खुश दिखाने का जबरन प्रयास करते हुए लोग, जानते हैं भीतर से कि यह सही नहीं है पर जिद है कि सिर्फ हम ही सही हैं। कभी कभी दीवारों से टकरा कर कुछ आवाज़ें फर्श तक आती हैं पर ये आवाज़ें बड़ी खोखली होती हैं कोई सांत्वना नहीं कोई दिलासा नहीं बस अजनबी सी आवाज़ें, दोनों को एक दूसरे से जोड़ने के प्रयास की नाकामयाब कोशिश करती हुई। कभी कभी कामयाब भी हो जाती हैं, जब दोनों सब कुछ भूल कर सोचते हैं कि चलो जाने दो कितने दिन ऐसे ही रहेंगे आखिर इतना लंबा साथ है।

इस साथ के परिणाम भी अब तो घर से बहुत दूर रहते हैं उनके भी अपने घर, अपनी लड़ाइयां हैं पर सोच कर हंसी आ जाती है यही तो उस उमर में इनके साथ भी होता रहा था। उस उम्र से इस उम्र तक का यह सफर कैसे कहें कि माकूल है। कितना अच्छा होता अगर वहीं ठहर जाते, काल को रोक तो नहीं सकते तो उन्ही लम्हों के साथ ले आते हमेशा के लिए।

फिर खुद पर ही हंसी आती है कि कहां किसे दोष दे रहे हैं, सब हमारा ही तो किया कराया है। उधर भी जिद है कि उनकी उम्र हो गयी और इधर भी जिद है कि उमर तो इधर भी हो गयी है। सुलह आखिर हो तो कैसे? अब आदमी छत दीवारों और खिड़कियों से तो बोल बतिया नहीं सकता ना उंसके लिए तो आदमी ही चाहिए और आदमी है कि घुट रहा है पिस रहा है पर जिद किये बैठा है। रसोई में कुछ खटर पटर हो रही है। जाकर देख आऊं क्या कि क्या बन रहा है। पुरानी कहावत है कि दिल का रास्ता पेट की गलियों से ज्यादा अच्छे से तय होता है। गैस पर कुछ चढ़ा हुआ है पास जाने की हिम्मत नहीं है जाने पर न जाने क्या सोचें कि आखिर झुके न, हल्की सी चीख की आवाज़ आई। स्वतः ही मुंह से निकल गया अरे क्या हुआ? जल तो नहीं गयी। उत्तर में खामोशी..... फिर कुछ देर के बाद सन्नाटा टूटा..... नहीं जला नहीं है। मनुहार में निकला आखिर ऐसा क्या बन रहा है। बड़की ने भेज दिया था, इतना महंगा है, उसको मना करना होगा, आगे से नहीं भेजे। इतनीं सा है और इतना दाम। ठीक है मना कर देना। आखिर खामोशी टूटी। एक पीस दूं .....अरे दो ही तो है। तो क्या हुआ आखिर हम भी तो दो ही हैं। चलो खा लो। खिड़की से एक ताजी हवा का झोंका अंदर आया उसे भी शायद मालूम पड़ गया था कि अंदर का मौसम अब अब बदल गया है।

चन्द्रकान्ता

काव्य

गीतिका

किसी को स्वार्थ की खातिर बुरा लाचार करना भी|
न करना वार है हमको पलटकर वार करना भी |

हमारी सोच क्यों कुन्द हो गई दुश्वार है जीना ,
हमें क्यों झूठ में जीना पड़े स्वीकार करना भी |

बहुत सच की दुहाई दे रहे आवाज दे दे कर ,
मगर मुश्किल बहुत सच के लिए सत्कार करना भी ।

करें जो भेद आपस में भुला दें धर्म मर्यादा ,
मुनासिब बात करना है नहीं अब खार करना भी |

पडौसी देश ने डाली नजर है जब बुरी हम पर ,
जरूरी हो गया है अब हदों को पार करना भी |

किसी ने साथ सच का जब दिया फांसी लगी उसको ,
हिफाजत कर सकें मुश्किल हुआ इजहार करना भी |

श्यामल बिहारी महतो

प्रकाशन -बहेलियों के बीच कहानी संग्रह भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित तथा अन्य तीन कहानी संग्रह उबटन, बिजनेस और लतखोर प्रकाशित और कोयला का फूल उपन्यास प्रकाशित

पोस्ट तुरीयो पिनकोड 829132 जिला बोकारो, झारखंड

“विरासत का पंचनामा”

अभी अभी मैंने घर में कदम रखा था। पत्नी रसोई में थी और घर के ढाबे में पण्डुआ की मेहरारूघुंघट डाले उदास बैठी हुई थी। वह काफी चिंतित और परेशान लगी मुझे। थोड़ी देर बाद कपड़े बदल करमै बाहर निकला तो पता चला पांचवें नंबर काउनकाबेटाचार दिनों से काफी बीमार है...!

"बडका,हमरतुनूचायर दिन से बड़ी बीमार है, गांव के मोहन डॉक्टर कहो है,बाहर के कोइओ, बोड डॉक्टर के पास ले जा, हाथ में एको टका नाय.. पांच सौ उधार देअ,..पहिलकादू सौ आरइटादूनोएके बारी लौटायदेबो...!" एक ही सांस में अपनी पीड़ा और परेशानी बोल गयी थी पण्डुआ की मेहरारू। मै समझ रहा था कि दो माह पहले का लिया दो सौ को वह भूल गयी होगी पर उसे याद थी। अकस्मात मुझे वो दिन याद आ गये,जब बलदेव काका जीवित थे और घर में उनका राज था। तब गांव-ग्राम में भी उस घर का बड़ा नाम था। अक्सर देखा जाता था। सुबह होते ही रविदास टोले की, मोदी और लोहार टोले की औरतें अलमुनियम की ढूभा-डेगची बर्तन लेकर बलदेव काका के घर आ जाती और भर-भर डूभा घोर-मठठा हर दिन लेकर जाती थीं। काकी दिल की बहुत अच्छी थी। मांगने पर वह किसी किसी को दही भी दे देती थी। सालों भर इस तरह की औरतों का उस घर में आना-जाना लगा रहता था। उस घर में दूध-दही की नदियां सी बहती रहती थी। काका घर का घी का भी बड़ा नाम था -शुद्ध देशी घी। दूर दूर से लोग घी लेने आ जाते थे। कहने का मतलब काका-काकी के जमाने में उस घर में कभी किसी चीज की कमी का रोना रोतेनहीं देखा था। लोग उस घर में कुछ मांगने जरूर आते परन्तु उस घर के लोगों को बाहर किसी के सामने हाथ फैलाते नहीं देखा था आज तक हमने।

वर्षों बाद आज फिर बलदेव काका की याद आ गई थी। कमर में उटूंग सफेद धोती और सर पेमारकिन कपड़े की सफेद पगड़ी। दूर से ही पहचान लिए जाते थे। यही उनका पहनावा और वेश-भूषा था। उनका चिलम का शौकीन होना और मांदर बजाना भी पूरे गांव में मशहूर था। और काम के प्रति उनका जुनून तो आस-पास के गांवों में चर्चा का विषय बना ही रहता था -"पक्का कर्मयोगी है " लोग कहा करते थे।

बलदेव काका जब तक जीवित रहे, गांव में एक कर्मशील-कर्मयोगी किसान के रूप में लोग उनका नाम लेते रहे। उनके जीवनकाल में टांड-टिकूर में भी जोंढरा-मंडुआ,लाहर-कुरथी की खेती देख लोग उनका मिशाल देते और कहते थे-" खेती करो तो बलदेव काका जैसा नहीं तो नहीं करो...!"

धान-चावल का घर में डींग पड़ा रहता। उसपर चूहे अपना घर बना लेते थे।

आषाढ़ शुरू होते ही बलदेव काका के कंधे पे कुदाल और उनके बैलों के कंधे पर हल-जूआंठ चढ़ जाता था और इसके साथ ही उनका किसानी काम भी शुरू हो जाता था। फिर तो बलदेव काका घर में नजर ही नहीं आते। एक बार उनका धन रोपा का काम शुरू होता तो बुढ़वा भादो मास तक अपने सारे खेतों में धान रोपाई करके ही दम लेते थे वह।

तेल चिपाय वाले कोल्हू की तरह रोपा शुरू होने के बाद दिन भर खेत में उसका हल-बैल चलते रहता था, उस दौरान नहाना-धोना, खाना-पीना,हगना-मूतना, सब के सब उसका बाहर ही होता था।

दोपहर को जब वह सुस्ताने के लिए महुआ पेड़ के नीचे घोलट जाते तब बैलों को जंगल में चरने को छोड़ आते थे। घड़ी दो घड़ी बाद फिर वही सुर वही ताल ! बैल किसान दोनों एकाकार हो जाते थे। तब हल के पीछे उछलते कूदते पोठी,नेटी,गरईमाछ और खांखरा (केकड़ा) जो पकड़ में आ जाते, धोती की फांड में डालते जाते, जिसे रात को घर में नमक मिर्ची के साथ कड़ुआ तेल में भूंजते और मजे से खाते थे। काका अपने बालों में कभी तेल नहीं लगाते पर मछली-केकडाओं को तेल में खूब भूंजते थे-करर्र..कर्रर खाने में लगता था। कभी कभी खाने का मौका और मजा मुझे भी मिल जाता था।

उनके जीते जी कभी उनके खेतों के मेड टूटते-घास बढ़ते नहीं देखा,बियोनी और निकोनी में भी निपुण थे बलदेव काका !

पण्डुआ उसी बलदेव काका का बेटा था। परन्तु बाप जैसा लक्षण-गुण, एक भी नहीं। खेत उसे काटने दौड़ता और बारी-झारी में काम करना उसे जंजाल लगता था। बारी में आलू-प्याज,या फिर बैंगन-टमाटर लगाना माटी में मुंह मारने जैसा समझता था वह। लेकिन खाने का मन करता तो किसी की बारी से कुछ भी तोड-ताड लेता था। कोई टोक कर कह उठता - खाने का मन करता है-उपजाने का भी सोचना चाहिए ...!"

" एक ही टमाटर तो तोड़ा है..!"

" एक हो या दो..तनिक उपजा कर देखो तो..!"

" जादेनाय बोल भोजी.चोरीनायकरलहियो..!" वह ठेठ देहाती

पर उतर आता था
मतलब कि काम करने के नाम पर पण्डुआ ऐसे रंग बदलता -बिदकता था जैसे काम करने के एवज में सौ दो सौ न देने पर ब्लॉक के बाबू लोग बिदकते हैं।

शुरू में ऐसा नहीं था पण्डूआ। घर का सारा काम अकेले करता था, खेती-बारी के कामों में भी आगे ही रहता था। बाप जैसा होनहार रूप में उसे देखा जा रहा था। हार-फार,मैर-रकसा, सब काम बाप जैसे ही करता था। उसका बिगड़ना तो उस दिन से शुरू हुआ जब उनके दोनों बड़े बहनोइयों ने उसे घेर-घार कर उम्र में उससे बड़ी एक लड़की के साथ उसकी शादी करवा दी । दिखने में पत्नी उसकी,मौसी लगती और पण्डुआ मूसा लगता था। शादी के दूसरे दिन से ही पत्नी पण्डुआ को साथ सोने के लिए ललकारने लगी और पण्डुआ दूर दूर भागता रहा। एक रात उसके बड़का बहनोई ने पण्डुआ को धोखे से पत्नी के कमरे में धकेल दिया और बाहर से ताला बंद कर दिया था। उसी दिन से किसानी काम से पण्डुआ का मन विरक्त होना शुरू हो गया था। चमगादड़ सा मेहरारू पर लटके रहता । पत्नी ही ठेल-ठाल कर कुछ उससे कामों को करवाती थी-अपने से एक भी काम वह नहीं करता था। पहले बाप चिल्लाते-चिल्लाते मर गया फिर मां भी कुढ़ते -कुढ़ते इस दुनिया से गुजर गयी। परन्तु काम के प्रति पण्डुआ की चाल-चलन में कोई बदलाव नहीं हुआ-कोढिआपा बढ़ता ही गया..!

जब से सरकार ने रूपए किलो चावल कोटा से देने की घोषणा की थी, पण्डुआ ने खेतों की ओर जाना ही छोड़ दिया था। किसान के हाथ में खेतों का श्रृंगार होता है। अगर किसान कुशल और मेहनती हो तो खेत भी उपज बढा कर देता है वहीं किसान निकम्मा और कामचोर-देहचोर हो तो धान की बालियां भी रोने लग जाती है।

हर साल जोत-कोड और रोपाई के न होने से पण्डुआ के अधिकांश खेत अबपरती रहने लगे और उसके आर-मेड टूटने लगे थे। उनके बाप के जमाने में जिन टांड-टिकूरों से भी लाहर-कुरथी, और मंडुआ-बाजरा लहलहाते थे,अब उनमें बड़ी-बड़ी झाड़ियां उग आई थीं, जिसमें छिप-छिप कर प्रेमी जोड़े अपनी जिस्मानी प्यास बुझाने लगे थे। इसी चक्कर में एक बार गांव के गाजो महतो की छोटकीपुतोहू और चिमनमहतो का बड़ा बेटा को खुखड़ी उठाने गई कुछ औरतों ने रंगे हाथ प्रेमालाप करते पकड लिया था। उस दिन गांव में ढोल सा बज गया था। तब से उस जगह का नाम लोगों ने, पण्डुआ प्रेम बाग रख दिया था।

भादो-आसीन में, दूसरों के खेतों में धान लहलहाते नजर आते,पण्डुआ के खेतों में बड़का-बडका घास और उसमें चरते जानवर नजर आते थे। इस बात पर अगर पण्डूआ से कोई कुछ कहता तो उसका जवाब भी उसी की तरह निकम्मा होता-" खेती करने में अब कोई फायदा नहीं है..खर्चाजियादा और फायदा कम होता है,ट्रेक्टर वाले दबा कर पैसे ले लेते हैं..!"

पण्डुआ में यह कामचोरी और निकम्मापन अचानक से सवार नहीं हुआ था। यह बदलाव उस संगत का परिणाम था,जिसका लीडर बिरूवा था-बिरूमहतो ! कोलियरी से नौकरी छोड़ भागा हुआ-भगोडा और गांव के अब तक का सबसे बड़ा निकम्मा-कामचोर-बिरूवा ! बड़ी आशा और उम्मीद के साथ बिरूवा की मां ने उसे अपनी जगह बदली-बहाली पर बेटे को नौकरी दी थी ताकि बुढ़ापे में सहारा बन सके लेकिन नालायक बिरूवा मां का सहारा क्या बनता,उल्टे मां पर ही बोझ बन गया था। कोलियरी में मजदूर लीडर बनने के चक्कर में काम ही छोड़कर एक दिन भाग खड़ा हुआ तो दूबारा फिर कोलियरी नहीं गया। बाद में खोजी पत्रकार बनने को निकला तो तशेडी बन गया। दवा के अभाव में एड़ियां रगड़-रगड़ कर एक दिन उसकी मां चल बसी।
खेती-किसानी छोड़ने वाला गांव का पहला आदमी बिरूवा ही था -" क्या रखा है किसानी कार्य में,हाड तोड़ मेहनत करो-पानी हुआ तो पूरा धान-नही हुआ तो खखरी धान..!" यह उसके मुंह में हर हमेशा लगा रहता था।
उसी का जैसा एक और था-मेघनाथ ! केवल नाम का मेघनाथ। मेघ की तरह कभी खेतों में बरसने नहीं जाता, उसके भी अधिकांश खेत परती पड़ा रह जाता था। इन्हीं लोगों के साथ पण्डुआ का उठना बैठना होता था। अब गंजेडी, नशेड़ी और तशेडी के चेले तो गीता पाठ करने वाले होंगे नहीं। जैसे गुरु वैसे चेले !
दिन निकलते ही बिरूवा घर के बाहर बरामदे में ताश निकल जाता था। फिर तो दिन भर ताश फेटना-जुआ खेलना और देर रात दारू पी घर आकर मेहरारू को ठेलना,यही काम रह गया था पण्डुआ का भी। ठेल-पेल कर पण्डूआ ने तो घर में बच्चों का ढेर लगा दिया था लेकिन बिरूवाअभी तकबेऔलाद हीथा-" बांझा का खेत भी बांझा...!"लोग बातें बनाते थे।

गांव में निकम्मे युवाओं की तादाद दिनों दिन काफी बढ़ती जा रही थीं।गली के कोने-कोचे जिधर नजर दौड़ाओ, कहीं तशेडियों की जमात जमी नजर आती तो कहीं जुआरियों का दाव पेंच चल रहा होता। बाकी देखने वाले खैनी-गुटखा पहुंचाते नजर आते थे। किसी को रोजी रोजगार के पीछे दौड़ते देखना एक जमाना बीत गया था। खेती-किसानी से दूर होते यह युवा किसी काम के लायक नहीं बचेथे।शिक्षक बहाली की तैयारी कैसे की जाए,बीडी ओ,सी ओ, कैसे बनेंइस पर सोचना ही छोड़ दिया था,इन सब ने।कोढिआपा और मुफ्तखोरीउनके दिलो-दिमाग में घर बना लिया था।

दो माह पहले अचानक एक दिन पण्डूआ मेरे सामने आ गया था। बुलाने पर तो कभी सामने आता नहीं था,अगर आता भी तो हजार बहाने उसके पास पहले से मौजूद होता था। उस दिन मैंआफिस से थोड़ा देर से घर लौट रहा था। देखा वह मोड़ की पान गुमटी वाले के सामने गुटका के लिए गिडगिडा रहा है और गुमटी के दुकानदार उसे लतिआए जा

रहा है-" देखो पण्डूआ,ढेर उधार हो गया है,पहिलका दो फिर नया लो, नहीं तो अब एक टका का भी उधार तोरा नहीं देंगे..जाओमुलखी के माय को लेकर आओ...!"
" आइज भर दे...!"
" कहलियोने,अब उधार नाय...!"
पण्डुआ जैसे ही पल्टा, सामने मुझे पाकर वह झेंप सा गया,उसकी नजर जमीन में गड गई । लगा बेहद शर्मिंदा हो चुका है । मोटर साइकिल पर बैठे ही मैंने गुमटी वाले से पूछा-
" कितना बकाया है इसका ...?"
" दो सौ बीस रूपयेकाकू ..!" उसने बताया था
मैंने अपनी पर्स से ढाई सौ रुपए निकाल कर पण्डुआ के हाथ में दिया और कहा-" लो, जाकर दे दो..जो बचे उससे जो लेना है ले लो..!"
चला तो पण्डूआ को भी साथ बिठा लिया था । रोहन नक्षत्र घुसने वाला था । आसमान पर हल्के-हल्के बादल थे । दो दिन पहले भी जम कर पानी पड़ा था । धरती से सौंधी महक अब भी आ रही थी । पण्डुआ चुपचाप मेरे पीछे बैठा हुआ था । उसके मनोभाव को मै समझ रहा था । तभी मैने धीरे से कहना शुरू किया-" एक जमाना था,जब बलदेव काका को गांव का सबसे मेहनती और सबसे सियाना किसान समझा जाता था । गांव-घर में उनका मान-सम्मान था । किसी के घर में जाते तो बैठने के लिए आदर के साथ सामने खटिया बिछा दी जाती थीऔर तुम खुद को देखो, कैसा बना लिया है और क्या बन गए हो, एक मामूली गुमटी वाला किस तरह दुत्कार कर रहा था तुम्हें, यह सब कुछ मैंतुम्हे लज्जित करने के लिए नहीं कह रहा हूं, बल्कि सच्चाई बता रहा हूं,जो हमने अपनी आंखों देखा है...!"
पण्डुआ चुप रहा !

मैंने आगे कहना जारी रखा-" किसानी में वो शान है,जो बार्डर के जवानों में होता है, किसान वे माटी पुत्र होते हैं जो कभी किसी के सामने हाथ नहीं फैलाते हैं, किसान अन्नदाता है तो पालनहार भी किसान ही है, कोई सरकार-फरकार नहीं है, हमें अपनी किसानी काम को एक कर्म समझ कर करना चाहिए, आदमी का कर्म ही उसका सबसे बड़ा धर्म है, जैसे बाप-दादाओं ने किए, हमें उनकी विरासत को बर्बाद होने से बचाना चाहिए..!" मैनेलुकिंगग्लास में पण्डूआ का पिघलते मन को देखा फिर कहा-" परसों से रोहन नक्षत्र पड़ने वाला है, इस बार सोचता हूं रोहन में ही धान विहिन खेत में डाल दूं-रोहन के विहिन में कीड़े नहीं लगते.. कैसा रहेगा..?"

" आं.. हां.. ठीक रहेगा ददा..!"लगा वह नींद से जागा है ।
हम घर पहुंच गए थे । वह बाइक से उतरा और सर झुकाए सीधे घर जाने लगा । बाइक पर बैठा तभी से उसके अंदर कुछ बदलाव शुरू हो गया था । थोड़ी दूर जाने के बाद अचानक से वह पल्टा-मूडा और मेरे सामने आकर बोला-" दादा, इस बार हम भी विहिन डालेंगे पर विहिन खरीदे वास्ते पैसा नहीं है हमारे पास..!" बोल कर वह चुप हो गया था ।यह वही पण्डुआ था,जिसने खेती की बात पर साल भर पहले टके सा जवाब देते हुए मुझसे कहा था-

" आज कल खेती कौन करता है ? खेती से कोई फायदा नहीं । जितना खेत में धान नहीं होता, उससे कहीं ज्यादा तो खर्चा हो जाता है -उतना चावल तो हर महीना सरकार हमें देतीहै । कोटा से चावल आपको नहीं मिलता है-खेती आप शौक से करें ! हमारे लिए तो अब सरकार ही माय-बाप ! जब तक ये सरकार है, हमें खेती करने की कोनोदरकार.नहीं है !" और इसी के साथ देह ऐंठते पण्डुआ चला गया था।
" ठीक है, तुम अपनी विहनाठी तैयार कर लो- मेरा हल बैल ले जाओ और विहिन धान खरीदने का पैसा कल मुझसे ले लेना...!"
" चलो, एक भटके हुए को तो अक्लआई !" मै खुश हो उठा था ।पर यह खुशी रेगिस्तान की बारिश साबित हुई थी। सुबह आकर पण्डुआ मुझसे ढाई हज़ार रुपए लेकर चला गया था । शाम को मै काम से घर लौटा तो पता चला कि गांव के और चार लड़कों के साथ पण्डुआ भी काम करनेबंगलौर चला गया है । मै ठगा सा घर के बाहर देर तक खड़ा सोचता रहा" अब कोई किसी पर भरोसेकैसेकरे ? दुःख मुझे इस बात से नहीं हो रही थी, कि वह ढाई हज़ार ठग कर ले गया था ! दुःख तो इस बात से हो रही थी कि उसने मेरे विश्वास और भरोसे के साथ छल किया था ।मैभारी मन से घर में कदम रखा था ।
" बड़का, कि सोचे लागला.?.पैसवालौटायदेबो...!"

" पैसे के बारे नहीं सोच रहे है-बडकी, काका-काकी की याद आ गई थी." पहले तो मन किया नकार दूं-मना कर दूं-झूठे की पत्नी – झूठी ! यहां तुम्हें कोई पैसे-ओसे नहीं मिलेंगे, जाओ मर्द को फोन कर मंगा लो पैसे..!"पर उसकी गर्भावस्था को देख मुंह से बोल न फूटे !अंदर जाकर पांच सौ रुपए लाकर सामने टेबल पर रख दिए, जहां से उसने तुरंत उठा ली,तबमैनेकहा-" बडकी, तोहरा से एक बात कहनी है,पर समझ में नहीं आ रहा है कैसे कहूं..!"
" कि बात लागो-बडका.. कहा न, घरेक आदमी से कैसन लाज ..?"
देखा पांच सौ रुपए हाथ में आ जाने से, उसके चिंतित चेहरे की परेशानी कम हो गई थी और आवाज मेंएकटनकपन आ गई थी ।उसका नुनू अब ठीक हो जाएगा यह उसकी आंखें बोल रही थीं ।
" कहना था कि चार-चार बेटियां और एक बेटा भी हो चुका था फिर-छठा पेट में..!" आगे बोल नहीं सका ।
" बड़का..बच्चा तो सरकार दे रहलहै,हमर कि दोष..!"
बच्चे भगवान देते है,यहहमनेबहुतों बार सुना था परंतु बच्चे सरकार देती है यह पहली बार सुन रहा था । मै जोर से हंसा था-" वो कैसे भला...?" मैने पूछा था

" जब से कोटा से चार-गेहूं मिले लागलअ, गांव के ही केते आदमी धान रोपेलछाइडदेलथिन, पहिले जे आदमी सब खेती बारी में लागल रहो हलथिन,अबओहे आदमी सब दिन रात घारेघुसल रहो हथिन, पहिले खेते हार जोतो हलथिन अब कोटा के चार खाय-खायघारे हार जोतो हथिन,अब घर में जे उपज होतअ-नाम तो सरकारेकहोतअ ने ...!" कहते कहते वह शर्मा गई और आंचल में मुंह छिपा ली थी ।

गजब की दलील दी थी उसने।
इसके आगे मैं और कुछ बोल न सका-केवल मुस्कुरा कर रह गया था ।" एकर बाद आरनाय-बडका...!" इसी के साथ वह हंसते हुए ढाबे से बाहर निकल गई थी ।

दिलीप सिंह यादव
कौशाम्बी,उ.प्र.212203

कहानी

"शराबी"

सुबह-सुबह मणि उठा और उसने बिस्तर लपेटा उसे चारपाई पर रखकर जल्दी-जल्दी गांव की ओर चल दिया उसे जाते देख किसी ने आवाज लगाई.....

क्यों? मणि भाई कोई बात है, बड़े सवेरे कहां चल दिये? मणि ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया नहीं बाबू भाई कोई खास बात तो नहीं लेकिन.....। बाबू ने कहा मैं आज तुम्हें सवेरे-सवेरे देखकर चकित हो गया कि मणि भाई इतना सवेरे कहां चल दिये कोई बात तो जरूर है,भाई बताओ कोई खास काम है? बात अच्छी न थी इसलिए मणि बाबू को बताने से कतरा रहा था लेकिन बाबू के बार-बार कहने पर मणि को बात सामने लाना ही पडा कि उसका बेटा किशोर शराब पीने लगा है।

इस बात को लेकर मणि हमेशा परेशान रहता था आज दो दिन हो गए थे लेकिन किशोर की कहीं कोई खबर न थी वह दो दिन पहले शाम को अपने मित्र के साथ था, किसी से फोन पर दोनों बात कर रहे थे और उसी शाम से वह लापता था मणि और बाबू बातें कर रहे थे तभी वहीं पर मणि का दूसरा बेटा नितेश भी आ गया उसने बाबू को प्रणाम किया.....।

नितेश भी वहीं रुक गया और बोला पिताजी..... किशोर मां की आलमारी से दस हजार रुपए भी ले गया है इतना सुनते ही मणि के पैरों तले जमीन खिसक गई उसने कहा लगता है यह लड़का मुझे तो बर्बाद करके ही छोड़ेगा अब तो वह मेरी बात भी नहीं सुनता, हे भगवान! इसको सन्मार्ग दिखाओ..... इतने में बाबू सांत्वना देते हुए मणि को समझाया.... देखो मणि भाई अब बेटा जवान हो गया है अब तो इसका ब्याह करा दो शायद भलमानुष लड़की मिल जाए और इसकी आदत को सुधार को दे, नहीं तो..... इतना कहकर बाबू वहां से चल दिया फिर मणि और नितेश, किशोर के मित्र के घर की ओर चल दिए जब वे दोनों उसके मित्र रजत के घर पहुंचे तो वहां दरवाजा बन्द था घर के आस-पास कोई नजर नहीं आ रहा था.....।

उसने नितेश से कहा जाकर दरवाजे पर आवाज दे शायद अभी सब सो रहे हैं... तब नितेश दरवाजे के पास जाकर आवाज लगाया जिससे कुछ देर बाद रजत के पिता बाहर आये और उन्होंने नितेश से पूछा, क्या बात है बेटा? तब मणि उनके पास आ गया और उसने रजत के पिता से सारी घटना बताई तब रजत के पिता ने बताया कि रजत तो घर पर ही सो रहा है इतने में रजत भी आंखें मलते बाहर आया तब मणि ने उससे पूछा बेटा किशोर कहां है? तब रजत ने बताया कि हम दोनों उस दिन शाम को शहर एक मित्र की बर्थडे पार्टी में शामिल होने गए थे लेकिन किशोर आते समय कुछ दूर मेरे साथ आया फिर एक होटल के पास मेरी बाइक रोककर उतर गया और कहा अब तू जा मैं बाद में आ जाऊंगा मेरे बार-बार कहने पर भी नहीं आया फिर मैं वहां से सीधे घर चला आया।

यह सुनकर किशोर के पिता रजत को लेकर फौरन होटल पहुंचे और वहां देखा तो किशोर दो लड़के और एक लड़की के साथ बैठकर शराब पी रहा था यह देखकर मणि से रहा नहीं गया उन्होंने उसे तेज से डांटते हुए थप्पड़ भी जडे और खींचते हुए दोनों उसे बाहर ले गए फिर बाइक पर बैठाकर घर ले गए....उसकी हरकतों को देख-देखकर मणि बहुत परेशान हो गया था अब उसे बाबू की कही हुई बातें याद आने लगी मणि ने विचार किया कि अब किशोर की शादी करवाना है उन्होंने किशोर के पास जाकर कहा अब शराब पीना बंद कर दें... किशोर चुपचाप बैठा रहा उसने मणि को कुछ उत्तर नहीं दिया कुछ दिनों बाद किशोर को शादी के लिए लड़की वाले देखने आए उन्होंने किशोर को देखकर हां कर दिया परन्तु.... कुछ दिनों बाद लड़की के घर वालों को किशोर के बारे में सब कुछ पता चल गया जिससे उन्होंने इस रिश्ते को इंकार कर दिया।

धीरे-धीरे समय बीतता गया इसी प्रकार किशोर के साथ की घटनाएं घटित हुई लेकिन बाद में उसकी शादी एक गरीब लड़की से हुई जिसका नाम रेशमा था रेशमा सुन्दर मेहनती और संस्कारी थी किन्तु गरीब होने की वजह से किशोर की मां उसके साथ आये दिन दुर्व्यवहार करती रहती थी लेकिन इस बात पर किशोर ने ध्यान नहीं दिया न तो रेशमा इसके बारे में उससे कभी कुछ बताती थी क्योंकि किशोर तो शराबी आदमी उसे तो पीने से मतलब दूसरों से क्या? करना लेकिन रेशमा अपने पति से बहुत प्रेम करती थी इसलिए वह किशोर को हमेशा समझाती रहती थी कि शराब छोड़ दो किन्तु किशोर को कोई असर नहीं हो रहा था।

किशोर की मां उसे हमेशा प्रताड़ित करती रहती थी और वह सब्र किये जा रही थी किशोर कुछ कामकाज नहीं करता था रोजाना शाम को शराब पी कर आता और खटिया पर गिरते ही सो जाता अब मणि से रेशमा की दशा देखी नहीं जा रही थी इसलिए एक दिन मणि किशोर को घर से निकाल दिये, वह चला गया दो-तीन दिन तक तो कोई पता ही नहीं चला कि वह कहां है फिर एक दिन दो लड़के उसे टांगकर लाते दिखे मणि ने पूछा क्या? हुआ इसे तब एक ने बताया कि यह शराब के नशे में नाले में गिरा पड़ा था और हमने निकाला तो देखा कि यह बेहोश है इसलिए हम इसे उठा कर यहां लाते,

मणि ने खटिया मंगाया और उसे लेटा दिया गया कुछ देर बाद उसे होश आया तो उसे किसी के रोने की आवाज आई वह उठकर देखा तो एक कोने में बैठी रेशमा रो रही थी क्योंकि आज किशोर की वजह से रेशमा को उसकी सास बहुत प्रताड़ित किया था किशोर ने रेशमा से पूछा क्या हुआ? तब रेशमा ने डरते-डरते उसे सारी बात बताई जिससे वह भावुक हो गया और उसे अपने किये पर बहुत पछतावा हुआ और अब उसकी आंखें खुल गईं अब उसने निश्चय कर लिया कि अब मुझे शराब नहीं पीना है उसी दिन से उसने शराब छोड़ दिया और वह काम करने शहर जाने लगा यह देखकर मणि अब उससे बहुत खुश रहते थे अब उसने अपनी मां को भी समझा दिया कि हमें भले ही दहेज नहीं मिला लेकिन तुम्हारी बहू तो अच्छी है अब उसकी मां ने रेशमा से माफी मांगी और उसे प्रताड़ित करना बन्द कर दिया।

रश्मि सिन्हा

लघुकथा

"बच्चों की बुआ"

प्रतीक्षा, सामने लॉन में टहल रही थी कि अचानक 4 वर्षीय दिशा आकर उसके पैरों से लिपट गई, बुआ! बुआ पकड़ो मुझेऔर प्रतीक्षा झूठमूठ तेज दौड़ने का नाटक करते हुए उसे पकड़ने की चेष्टा करने लगी।
जितनी बार प्रतीक्षा उसे पकड़ने में असफल होती उतनी ही दिशा की खिलखिलाहट बढ़ती जाती और वो ताली बजा कर कूदने लगती, ये!! बुआ हार गई---

तभी वहां ढाई वर्षीय शांतनु भी आ गया। और प्रतीक्षा ने उसे गोद मे उठाकर चूम लिया। अल्ले मेला बेटा भी आ गया, सच मे ये दोनों बच्चे प्रतीक्षा के लिए प्राणवायु जैसे थे।

उनके बीच वो सब कुछ भूल जाती, अपने दुख दर्द सब। 4 वर्ष हो चुके थे उसे गुड़गांव में अपने भाई के पास रहते। उससे पूर्व वो अपने मम्मी पापा के साथ ही थी, इलाहाबाद में। आज भी मम्मी पापा को याद कर उसकी आंखें भर आईं। कैसे भूल सकती थी वो उस मनहूस दिन को जिसमे एक सड़क दुर्घटना में दोनो ही नही रहे थे। तब से ही वो भैया भाभी के साथ ही थी। हाइस्कूल में थी वो तब। पढ़ाई में अच्छी पर अचानक ही इस घटना से सब अस्त व्यस्त हो गया था। और वो दसवीं की परीक्षा प्राइवेट ही दे सकी थी। प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करने के बाद भैया ने उसका नाम लिखने का वादा भी किया था पर----यूं तो उसकी भाभी का उसके प्रति उदार दृष्टिकोण था, बोलती भी अच्छे से ही थी, पर दिशा को प्रतीक्षा के भरोसे छोड़ वो निश्चिंत भी थी , आया के लालन पालन पर भरोसा न था। और एक दिन झिझकते हुए भाई की ओर से प्रस्ताव आया था देख प्रतीक्षा, मुझे लगता है तू इंटर भी प्राइवेट ही दे दे तुझे तो पता ही है कि भाभी सर्विस करती है, और जैसा समय चल रहा है बच्ची को नौकर या नौकरानी के भरोसे नही छोड़ा जा सकता।

जी भैया, एक निराश आवाज में उत्तर आया । और जिंदगी अपनी गति से रेंगती रही। आगे बढ़ी भी तो इतना ही कि भाभी ने प्रतीक्षा के भरोसे दूसरी संतान को भी जन्म देने का फैसला किया था।
सबैटिकल लीव के बाद अब शांतनु और दिशा प्रतीक्षा के बच्चे थे। और वो उनके बीच सब भूल जाती। इंटर वो पुनः अच्छी श्रेणी में पास कर चुकी थी।कभी कभी एक गहरी सांस निकलती भी तो रोक लेती, उसे प्राइवेट ही ग्रेजुएट भी तो होना था।
उसकी भाभी निशा दो बहनें थी और एक भाई। मां ,पापा उनके भी नही थे, पर दोनो बहनों में खूब पटती थी, रोज ही बातें होती ढेरों किस्से---- तनु, निशा की छोटी बहन एम बी ए कर रही थी। और कॉलेज के ढेरों किस्से सुनाती। इस बार सरप्राइज देने के लिए निशा ने अचानक ही प्रोग्राम बनाया था। भतीजे भतीजी के लिए ढेर से खिलौने लेकर देहरादून पहुंच कर उसे स्वयं भी अवाक रह जाना पड़ा था। उसकी प्यारी तनु रसोई में पसीना पोछते हुए खाना बना रही थी।

भाई, भाभी के हंसने की आवाजें आ रही थी। और रात में रोते हुए तनु ने जो उसे बताया वो बोलने की हालत में ही नही थी। तनु कोई एम बी ए, नही कर रही थी झूठ बोल था उसने-----

उस घर मे उसकी हैसियत एक आया से अधिक न थी। आगे तनु ने क्या कहा उसने नही सुना। अगले ही दिन वापस लौट आई तब से प्रतीक्षा को गले लगा कर रोती ही जा रही थी।
ये मैंने क्या कर दिया? मैं इतनी स्वार्थी कैसे हो गई? अस्फुट से स्वर उसके मुंह से निकल रहे थे।
भाभी! भाभी!! क्या हुआ, कुछ तो बताओ?

कुछ नही । पर जो कुछ था वो प्रतीक्षा को अगले दिन ही पता चल गया। भाई उसे लेकर डिग्री कॉलेज में एडमिशन कराने ले जा रहे थे, और बच्चों के लिए डे बोर्डिंग का इंतज़ाम। इस बार रोने की बारी प्रतीक्षा की थी। ये खुशी के आँसू थे।

रीटा मक्कड़

लघुकथा

"सहेज की यादें"

"सुनो मीरा,स्टोर का बाकी सामान तो स्टोर की सफाई करने के बाद वापिस रख देना, लेकिन ये कम्बलों वाले बैग अभी बाहर ही रहने देना,इनको एक एक करके धूप लगवा कर ही वापिस अंदर रखेंगे।"
"जी भाभी" कहते हुए उसकी हेल्पर मीरा ने सभी कम्बल लॉबी में पडी मेज पर रख दिए।
इधर कुछ दिनों से जबरदस्त ठंड के साथ बीच बीच मे बारिश भी हो रही थी तो दो दिन पहले अनिता ने स्टोर से कुछ सामान निकालते हुए देखा कि वहां सीलन सी आई हुई है तो सोचा एक बार अच्छे से सफाई करा देती हूं।
सारा सामान रखवा के उसने मीरा को घर भेज दिया और शाम को आने को बोला। सोचा अब थोड़ी देर सुस्ता लेती हूं जरा पीठ भी सीधी हो जाएगी।सुबह से लेकर एक के ऊपर एक काम करते करते तीन बजने तक तो थकावट से बुरा हाल हो जाता है।ये सब सोचते सोचते बाहर की कुंडी लगा के अपने कमरे की तरफ जा रही थी कि उसकी नज़र उन कम्बलों पर पड़ गयी।
अकेले ही खुद से बात करने लगी,"अब एक काम और बढ़ गया मेरे लिए..क्या क्या करूँ,अब इनको तो कल अगर धूप निकलेगी, तभी खोलूंगी।
सोचते सोचते कमरे के दरवाजे तक जा कर फिर पीछे मुड कर देखा।मन नही माना।आ गयी वापिस लॉबी में।चलो एक बार देख लेती हूं कौन कौन से कम्बल है..बस जरा नजर मार लेती हूं फिर लेट जाऊंगी। सोचते हुए बैठ गयी वहीं पड़ी एक कुर्सी पर। सबसे ऊपर ही दिखा उसको गाढ़े पीले रंग का ये कम्बल जिसके ऊपर भूरे रंग के बड़े बड़े फूल थे।पापा जी कितने प्यार से लाये थे दीपावली पे।जब पापा मम्मी के साथ दीवाली देने आए तो उसे आज भी याद है सोफे पर उसके साथ ही तो बैठे थे।धीरे से उसके पास आ कर बोले थे,"दामाद जी की पसंद के गुलाब जामुन लाया हूँ और तुम्हारी पसंद की काजू बर्फी.".और वो बीस साल पुरानी बातें आज भी आंखों के सामने इस तरह घूम रही हैं जैसे कल की ही बात हो।फिर तो पापा कभी नही आये दीवाली देने..चले गए अपनी अनन्त यात्रा पर।
और अनिता ने उस कम्बल को पापा की आखिरी निशानी के तौर पर सहेज के रख लिया था। आंखें भी उनकी बातों को याद करके बहने लगी ।कम्बल के ऊपर हाथ फिराया,जितना गर्म,उतना ही नरम..बिल्कुल पापा के जैसा।

ये एक और कम्बल ससुर जी की निशानी..गहरे नीले रंग का..ऊपर सफेद धारियां..ससुर जी कितने प्यार से लाये थे।
और फिर कुछ समय बाद वो भी नही रहे तो अनिता ने उस कम्बल को उनकी याद के तौर पर सम्भाल लिया था।

ये एक और कम्बल.. मेरून रंग का..अरे ये तो उसकी शादी में मिला था।उसे आज भी याद है जब उसकी शादी से पहले एक बार पापा का कोई जानकर सिंगापुर से आया था तो पापा ने उससे ये कम्बल खरीदा था।जब घर ले कर आये तो मम्मी ने आते ही बोल दिया था,"अब ये मत सोचना कि इस ठण्डी में यही ओढ़ना है।इसको तो पेटी में रखने लगी हूं। अपनी बेटी शादी लायक हो रही है।उसकी शादी में दूंगी।
और हर जवान होती बेटी की माँ की तरह उसने वो कम्बल बेटी की शादी में देने के लिए पैक करके रख दिया था।

ये एक और कम्बल..कितना सुंदर कलर है ना गहरा गुलानारी रंग ..बिल्कुल जैसे मखमल हो ..ये तो जेठ जी ने दिया था..और ये तो उन्होने दिवाली पे सब को दिए थे दो साल पहले।दीवाली के दिनों की हल्की हल्की ठंड में अनिता ने काफी दिन वो ही कम्बल इस्तेमाल किया और फिर जब ठंड ज्यादा बढ़ गयी तो उसको पैक कर दिया और रजाई निकाल ली।
फिर जेठ जी भी कहाँ रहे अगली दीवाली आने से पहले ही वो क्रोना नामक राक्षस के क्रूर हाथों का शिकार बन गए। अब ये कम्बल भी उनकीं यादगार निशानी के तौर पर हमेशां इस घर में रहेगा। आंखों से बहती गंगा यमुना के साथ वो यही सोचती रही कि किस तरह घर के सदस्य जब चले जाते हैं तो उनका वजूद तो लॉबी में लगी फोटो मे ही सिमट जाता है और उनकी यादें ,उनके हाथों से लाये समान घर के कोने कोने में उनको जिंदा रखते हैं।
अनिता सोच रही थी कि उसने तो इन सब चीजों को सहेज कर रखा है जाने वालों की यादों के तौर पर..पर कल को जब वो ही नही रहेगी....तब..!!!!

सपना चन्द्रा
कहलगाँव भागलपुर बिहार

"अजनबी"

"**वो** सड़क पर कब से खड़ा भींग रहा है...बारिश भी जोर की हो रही है,क्यूँ न बारिश बंद होने तक उसे अपने बरामदे मे बुला लाएं..."रघु अपनी बेटी मनू से कहता है...."न बाबा! ना..ना..ऐसे ही समय ठीक नही..किसी को भी सहारा देना खतरे से खाली नहीं.""चोरी की घटना कितना सूनने को मिल रहा है."अरे अपने घर में चोरी के लिए क्या है..यही दो -चार बर्तन..??इसके अलावा क्या मिलेगा किसी को...हाँ ...बोल.बुलाता हूँ उसे ....चलो आ जाओ भाई!...कुछ देर हमारी गरीब की झोपड़ी में शरण ले लो..बारिश थम जाएगी तो चले जाना.राहगीर दौड़ता हुआ झोपड़ी में आता है..."मनू!..कोई कपड़ा तो दे दे..शरीर पोछनें को."
"अभी आई बाबा..ये लो ..राहगीर पानी पोछता हुआ...एक भरी निगाह से झोपड़ी का मुआयना कर बैठा."अरे बाबा!..ये यहाँ-वहाँ से टपकता है ..कैसे रह लेते हो.."??और कौन -कौन है तुम्हारे घर में.."??क्यूँ भाई...??चोरी करने का इरादा तो नहीं..जो जानना चाहते हो.""मैं पहले ही बता देता हूँ...हम बाप-बेटी के अलावा...कुछ बर्तन है जो शोर करते है..बाकि हम गरीब के पास और कुछ नहीं. ""कैसी बात करते हो बाबा...तुम तो कीमती हीरा संभाल कर रखे हो...गरीब कहाँ.."?बाबू...तुम्हारी नजर में हम गरीब नहीं हैं ये अच्छी बात है...और हम गरीब किसी अजनबी निगाह से हीरे को हमेशा बचा कर रखते है.

"एक रिश्ता"

"रजनी!.मेरे साथ चलना चाहोगी..?"
"कैसे चल सकती हूँ ...मयंक.?"
"जानते नहीं तुम क्या..?"
"किसी की बेटी हूँ...बहन हूँ..पत्नी हूँ...मां हूँ ,और नहीं हूँ तोऽऽऽ...!"
"तो क्या..??????..बोलो.!"
अब इतनी सारी पहचान है मेरी..
"कैसे मुँह मोड़ लूँ मैं..?"
सबसे कहा इनकी परवरिश की कोई ख्याल करे लेकिन अपना ही रोना रोते रहे सब.
"मुझे इन रिश्तों का कोई सहारा तो नहीं है, पर बेडियाँ जरुर है."

"वो कैसे माता-पिता ,भाई-बहन है जो तुम्हें इस भट्ठी में झोंक कर कोई सुध भी नही लेते..?"
"वो तुम्हारा कहने को पति जिसके नाम का एक लकीर है तुम्हारी मांग में, लक्षमण रेखा सी है,पता नही कहां है..?"
"खूद के दो बच्चों को तुम्हारे ऊपर छोड़ अपनी जिम्मेदारी से मुक्त है..!"

"ये लकीर मैनें खूद से खींच रखा है मयंक, ताकि कोई मुझे बेचारी न समझ ले.""क्या करूँ..ये मेरी बहन के बच्चे हैं.इन्हें किस पर छोड़ जाऊँ..?"
"मेरी बहन ने मरते वक्त मेरे हाथ ही पकड़ाया था इन बच्चों का हाथ."

"पति तो मेरी बहन का था .वो बच्चे तो पैदा कर दिए,परऽऽ.. अब तुम जानो ये कहता था."
"वो बीमार थी..मैं देखभाल के लिए आई थी.पर वो चल बसी." "मैं तुम्हारा कुछ भी नहीं हूँ न इनके बीच ..?"
"ऐसा मत बोलो मयंक!..एक मेरा सहाराऽऽऽ..कहते हुए गला रूँध गया था."
"इस शब्दों से तुम मुझे क्यों झिंझोडते हो..?"
"लोग क्या क्या कहकर पूकारेंगे मुझे,जो नही हूं वो भी कह डालेंगें..!"

इस नये शहर में सब मुझे उस आदमी की पत्नी ही समझते है..!"
"मैं झाड़ियों के बीच फँसी हुई हूँ."
"कहने दो न..!"

दो -चार दिन बात बनाएंगे फिर सब अपने काम में लग जाएँगें "इस देश में बोलने की भरपूर आजादी है, कहने वाले बहुत मिलेंगें पर जरूरत पर साथ वाले नही..!"
"हमारे तुम्हारे बीच के रिश्ते का नाम क्या होगा,लोग पूछेंगे तो क्या जबाव दूंगी..?
"जबाव तो वो मांगेंगे ही ये तो उनका अधिकार है..!"
"अपनी हालात से लड़ने के साथ- साथ लोगों से भी लड़ना होगा ..!"
"इसलिए एक ऐसा रिश्ता होना चाहिए जो बंधन न हो एक दूजे का सहारा हो."

"अकेले कब तक जिंदगी से लड़ोगी...मैं तुमसे प्यार करता हूँ." "मैं तुम्हारा साथ देना चाहता हूं ,इन बच्चों के साथ -साथ तुम्हें भी एक अच्छी जिंदगी जीने का अधिकार है."
"मिलकर हम एक नई शुरुआत करते है..
,वरना जैसे तुम लाचार हो ये बच्चे भी कलूसित मानसिकता के शिकार हो जाएंगें..!"

शराफ़त अली ख़ान
बरेली-243006

लघुकथा

"पहल"

सवेरे चाय की चुस्की लेते हुए अखबार देखकर मैंने लगभग चीखते हुए पत्नी से कहा,-" सुनती हो! अपने गांव में डबल मर्डर की खबर छपी है आज ,वह भी पहले पृष्ठ पर।"

पत्नी पता नहीं किस काम से किचन में व्यस्त थी। हाथ पोछती हुई आई और अखबार अपने कब्जे में कर खबर पढ़ी ।खबर पढ़कर उसका चेहरा खिंच सा गया ।बोली,-" बताओ बेचारा कल्लू भी मारा गया जो गांव में अपनी आटा चक्की पर आठ दस साल नौकर
रहा था। दूसरा रज्जन मुराव मारा गया। उसे भी तो आप जानते थे ,उसका बड़ा भाई गांव में ही झोलाछाप डॉक्टर है न ।" फिर रुक कर बोली "कल्लू बेमौत मारा गया ,रज्जन मुराव तो खैर दुश्मनी में मरा है।"

मैंने पूछा,-" कैसी दुश्मनी ?"पत्नी बोली,"- आप नहीं जानते, तब आप अकेले शहर में रहते थे। अपने बटाईदार किशन के बाप को खेत की रखवाली करते समय रज्जन के बाप ने मारा था ।मगर किशन ने किसी के खिलाफ भी नामजद रिपोर्ट नहीं लिखवाई। वह मुझसे कई बार कह चुका था ,"दीदी ,मेरे और मेरे बड़े भाई के एक एक ही लड़का है ,वो अभी छोटे हैं ,मैं 20 साल बाद बदला लूंगा ।जब तक ये दोनों लड़के भी जवान हो जाएंगे ।वैसे भी दीदी 20 साल बाद जिस साल भी गेहूं की फसल अच्छी होगी, उसी साल समझ लो रज्जन के घर किसी ना किसी का कत्ल होना है।"

"आप जानते हैं कि हमें गांव छोड़े 20 वर्ष के करीब हो रहे हैं ,जरूर इसमें किशन का हाथ होगा।" पत्नी ने जानकारी दी।

"मगर कल्लू क्यों मारा गया ?"मैंने जिज्ञासावश पूछा।

"वह बेचारा हमारी आटा चक्की बंद होने के बाद रज्जन के खेत की रखवाली पर लग गया था। उसने लोगों को ट्यूबेल पर सो रहे रज्जन को मारते समय पहचान लिया होगा ।आखिर कल्लू भी तो गांव का ही था ।सब को जानता पहचानता था वह।"पत्नी ने स्पष्ट किया।

मैं खामोशी से पत्नी की बातों पर गौर करता रहा। मैंने कहा ,-"अगर ऐसा है ,तो यह दुश्मन बढ़ती ही रहेगी ।इसके बाद किशन के घर से कोई मारा जाएगा।"

"आखिर हम कर भी क्या सकते हैं? यह उनका निजी मामला है ।गांव की रंजिश बड़ी बुरी होती है। अच्छा हुआ ,जो हमने शहर में घर बनवा लिया। गांव कभी-कभी जाने के लिए ही सही रहता है ,वरना गांव में शहर से ज्यादा राजनीति है। और हमें किसी भी राजनीति में नहीं पड़ना है।" पत्नी ने समझाते हुए कहा।

" नहीं, यह उनका निजी मामला होते हुए भी सामाजिक है ।आखिर हमारी जड़ें भी गांव से जुड़ी हैं। हम गांव से कटकर नहीं रह सकते ।हमें इस मामले में पहल करनी चाहिए, मैं किशन को समझाऊंगा कि अगर उसने यह कत्ल किया है तो वह अदालत में हाजिर होकर अपना अपराध स्वीकार करें और रज्जन परिवार से माफी की अपील करें ताकि यह खानदानी रंजिश खत्म हो सके।" मैंने पत्नी को समझाने की कोशिश की।

"नहीं ,नहीं आप ऐसा हरगिज़ नहीं करेंगे। आप गांव नहीं जाएंगे ।मुझे डर सा लग रहा है।" पत्नी रूआंसी हो आयी।

" नहीं, डर हमारे दिल में बैठा शैतान है, जो हमें अच्छे काम करने से रोकता है" इतना कह कर मैं गांव जाने की तैयारी करने लगा।

काव्य

"गुरूजी आओ"

कब आओगे,
ले गुरु अवतार,
पूछे संसार।।

है हर पल,
गुरु बिन उदास,
तेरी है प्यास ?

रूठता नहीं,
बहारों में है यहीं,
रहते कहीं।।

तेरी याद है,
तेरी ओर है नैना,
बीतती रैना।।

संत विचारै,
वो आरती उतारे,
वाणी उचारै।।

गावै भजन,
करते सब यत्न,
यही जतन।।

गाती है साखी,
सब भक्तों ने गाई,
पार है पाई।।

आओ गुरुजी,
हमें पर्चा दिखाओ,
वाणी सुनाओ।।

करे काम सारै,
भवपार है उतारै,
दुष्ट संहारै।।

है पृथ्वीसिंह,
इंतजार में थारै,
नियम धारै।।

पृथ्वीसिंह बैनीवाल बिश्नोई
हिसार (हरियाणा)

रमेश कुमार संतोष

"अपना खून"

लड़की होने के समाचार ने सबके चेहरों पर उदासी ला दी। सब एक दूसरे को उदास चेहरे से देख रहे थे । फोन की घण्टियां बजने लगी ।

...". लड़की...वह भी दूसरी....वह भी आप्रेशन से...इतनी तकलीफ़ के पश्चात फिर से लड़की.....,,!!

हाय ... क्या लिखा है.... इसके भाग्य में... खैर जो हो गया उसे स्वीकार करो... आखिर किया भी क्या जा सकता है.... भगवान के आगे किस की चलीं है.." आश्वासन के शब्द उसे ओर रूला जाते...।

आप्रेशन थियेटर में जब मां को पता चला तो उसकी आंखों में जैसे गंगा यमुना बह गई हो... डाक्टर भी थोड़ी देर के लिए खामोश हो गई ।

फिर धीरे धीरे सामान्य होने लगा... लड़की को पिता ने उठाया... फिर दादी ने...वह हाथ पांव हिला कर एक टक दादी को देख रही थी... जैसे कह रही हो..

" मेरा कलघुकथासूर क्या है..."

अचानक दादी के मुंह से निकला-

" देख कितनी प्यारी है...."

वह फिर से पिता की गोद में आ गई.। फिर अस्पताल में आये दूसरे रिश्तेदारों की गोद में... ।

लड़की के रोने पर झट से दादी ने उसे उठाया फिर अपने बेटे से बोली....

"जा शहद लेकर आ... इसे भूख लगी है... देख.. देख जीभ निकाल रही है...।

आप्रेशन थियटर में लड़की की मां अब भी रोये जा रही है... डाक्टर ने उस के आंसू देख कर सांत्वना देते हुए उसे कहा ....

" क्या कोई आर्थिक समस्या है..?"

" नहीं .. ऐसी कोई बात नहीं..."

" फिर यह सब क्यों...?"

" कुछ नहीं.. बस यूं ही. लड़का हो जाता तो...!"

लड़की को मां की गोद में दिया गया. ... उसे देख कर उस के आंसू ओर ज्यादा बहने लगे...।

मां को रोते देख कर डाक्टर ने उसे एक सुझाव दिया...

" तुम को लड़का चाहिए..?"

"जी अगर हो जाता तो "

" लाओ इसे... मुझे दे दो... मैं तुम्हें लडका ला कर देती हूं..."

" कहां से.. "

" वह दूसरी पेशेंट है न... उस को लड़की चाहिए. उसके...दूसरा बेटा हुआ है ..मैं उस से बात करती हूं.."

" न... नहीं... ऐसा नहीं हो सकता...

" मां ने बेटी को अपनी छाती से लगा लिया ...

" यह मेरा खून है. मेरा अपना खून. इसे मैं दूसरे को नहीं दे सकती..."

मां लड़की को चूमने लगी ... उस की आंखों से आंसू अब भी थे..। सब उस की ममता के आगे नतमस्तक थे। अपना खून अपना ही होता है वह चाहे लड़का हो या लड़की....।

"तृप्त"

ढलती उम्र थी दोनों की..। दिन ढलने के पश्चात वह दोनों घर से निकले। धीरे-धीरे एक दूसरे को सहारा देते हुए वह सड़क तक आ गये..। सड़क पर पहुंच कर पति ने पत्नी का हाथ पकड़ लिया और सड़क पर आ रही गाड़ियों की भीड़ देखता रहा और जैसे ही सड़क कुछ खाली हुई तो पत्नी को चलने के लिए कहा एक हाथ ने पत्नी को पकड़ा हुआ था और दूसरे को हवा में लहराते हुए गाड़ियों को रुकने के संदेश देता हुआ आगे बढ़ गया इस बीच उनका ध्यान गाड़ियों की स्पीड की तरफ ही था बीच में आ कर वह रुक गये अब वह साइड बदल कर उसी तरह से सड़क पार करने लगे।

सड़क पार कर के चौक के पास ही लगे ठण्डे के स्टाल पर आ गये...। और एक गिलास गोली वाले सोडे का देने के लिए कहा इस बीच उनका ध्यान लटक रही स्लेट की तरफ था जिस पर पांच रुपए लिखा था।

बर्फ डलवा कर गिलास उस ने पत्नी को देते हुए जल्दी से पीने के लिए कहा ।

" पहले तुम पी लो ..।"

" नहीं तुम पी लो तुम्हें गैस से दर्द होता है न...।"

"नहीं पहले थोड़ा सा तुम पी लो...।'

"अच्छा बाबा लो... तुम मानो गी नहीं "

उस ने गिलास में से थोड़ा पी कर और सोडे में नमक डलवा कर जल्दी से गिलास को पत्नी के मुंह में लगा दिया गिलास पकड़ते हुए..

" तुम भी...."

" नमक डालने के बाद सोडे ने गिर जाना था।अब पी भीं लो न... सारी गैस निकल जानी है..."

इस से पहले की पति कुछ ओर कहता पत्नी ने सोडे को खत्म कर दिया...।

" अब तुम्हें कुछ आराम मिलेगा । महीना खत्म होने वाला है पैंशन मिलते ही इस बार तुम्हें डाक्टर को दिखाना है...।"

" मेरी चिंता न किया करो इस बार अपना चश्मा ठीक करवा लेना धागा बांध कर लगाते हो.."

" मैंने कौन सी गीता पढ़नी है... तुम्हें पेट में दर्द रहता है..."

"अच्छा बाबा... सड़क आ गई है... पार करना है "

पति ने उसी प्रकार से पत्नी का हाथ पकड़ कर ट्रफिक को रोकते हुए सड़क पार करवा दी गली आने पर भी उस ने पत्नी का हाथ पकड़ा हुआ था कहीं वह गिर न जाए । दोनों के चेहरे तृप्त थे....

विकास बिश्नोई
#313, सेक्टर - 14, हिसार (हरियाणा)

लघुकथा

"ये रही बोरी और ये रहे तुम"

अक्सर लोग कहते हैं कि हम समाजसेवा करना तो चाहते हैं पर ऐसा कोई मौका ही नहीं मिलता। अगर मन सच्चा होगा और मन में सेवा की भावना होगी तो हमारे सामने ऐसे अवसर स्वयं आ जाते हैं। हाल ही में विजय के साथ ऐसा ही एक किस्सा हुआ, जिसने एहसास कराया कि सेवा का मौका मिलता नहीं, हमें ढूंढना पड़ता है।

विजय हरियाणा के एक विश्वविद्यालय की परीक्षा शाखा में बतौर प्रोजेक्ट हेड कार्य करता था। एक दिन जब वो अपने दफ्तर में कार्य कर रहा था, तो वहां एक 40-45 वर्ष की महिला हाँफती हुई उसके पास आई और अपने कागज दिखाकर पूछा कि सर, यह मेरा कार्य यहीं आपके पास ही होगा क्या। विजय ने कागजात देखकर कहा, यहां नहीं मैम, आप सामने वाली लैब में जाइए, वहां यह कार्य होगा। सुनते ही महिला उदास होगयी और कहा, सर प्लीज बता दो, कहाँ होगा। बहुत देर होगयी, सब इधर से उधर भेज रहे है, कोई एक बिल्डिंग से दूसरी में। इसी में मेरा सांस फूलने लगा है अब तो।

विजय एक दयालु प्रवर्ति का इंसान था। उसने कहा, आप एक बार सामने वाली लैब में पता कर लो। ना हो तो मुझे बताना। महिला लैब में गई और कुछ देर में ही उदासीन चेहरे के साथ वही उत्तर लेकर वापस आ गई। लैब वालों ने वही उत्तर उसे दिया था और अन्य जगह जाने का बोल दिया, जहां से वो आई थी।

विजय ने पहले महिला को बिठाया, पानी मंगवाकर पिलाया। साथ ही अपने एक मित्र सुखविंदर को फोन कर अपने दफ्तर बुलाया। वह भी उसकी तरह दयालु और नेक दिल इंसान था।

महिला को अपने लगभग 10-12 वर्ष अपने पुराने कागजात और रोल नंबर इत्यादि निकलवाने थे। काम इतना सरल भी ना था। दोनों ने सलाह मशवरा कर उस काम को खुद करने की ही ठानी। विजय ने अपने जूनियर को कुछ काम सौंपा व महिला को दफ्तर में बिठा, खुद सुखविंदर के साथ बाहर की ओर निकले। इधर उधर पूछताछ करने पर पता चला कि यह केवल रिकॉर्ड रूम से ही पता चल सकता है। दोनों वहां गए तो वहां के अधिकारियों ने स्टाफ के होने के नाते उन्हें प्रवेश दिया, पूछने पर पुराने कागजातों फाइलों की बोरी की ओर इशारा करते हुए कहा, ये रही बोरी और ये तुम। ढूंढ लो अगर कुछ मिलता है तो।

विजय और सुखविंदर ने एक दूसरे की तरफ देखा, महिला बारे सोचा और बोरी की ओर बढ़ गए। कार्य कठिन था, पर दोनों महिला की मदद हेतु दृढ़ संकल्प थे। चार घण्टे उन्हीं फाइलों में लगे रहने के बाद उन्हें सफलता मिल गई। उन्हें महिला के कागजात आखिरकार मिल ही गए थे। दोनों के चेहरे पर बहुत खुशी थी। दिल को तस्सली थी कि चार घण्टे लगाए तो हक आ ही गया। दोनों ने महिला को जाकर बताया तो वह हाथ जोड़कर उन्हें धन्यवाद करने लगी और कहा, जहां कोई नहीं होता, वहां भगवान किसी ना किसी को जरूर भेजता है। धन्यवाद किया, भविष्य के लिए आशीर्वाद दिया और चली गई। आज विजय सुखविंदर खुश भी थे और संतुष्ट भी।

राजेंद्र प्रसाद श्रीवास्तव
विदिशा म.प्र

गीत

"जनम-जनम की रिश्तेदारी "

जलते रहे तिमिर में टिम-टिम
दीप - 'आश के', मैं आभारी।

चार दिनों की धवल चाँदनी
रहे चमकते झिलमिल तारे।
शेष दिनों में जीवन-नभ पर
छाये अमावसी अँधियारे।

अँधियारे ने खूब निभाई
जनम-जनम की रिश्तेदारी ।
ऊँट सरीखा भाग्य, आजकल
पल-पल करवट बदल रहा है।

घने बादलों के डेरे से -
छिप कर चंदा निकल रहा है।

कभी समय पर दुख का कब्जा
कभी सुखों की आई पारी।

दिवास्वप्न से दूर रहा हूँ,
नंगी आँखों का सच देखा।
कर्म किया फल की इच्छा बिन-
भोगा बहुत भाग्य का लेखा।

कभी नियति से हार गया मैं-
कभी कर्म से किस्मत हारी।

आकांक्षा यादव
नदेसर, कैण्ट प्रधान डाकघर, वाराणसी

"21वीं सदी की बेटी"

जवानी की दहलीज पर
कदम रख चुकी बेटी को
माँ ने सिखाये उसके कर्तव्य
ठीक वैसे ही
जैसे सिखाया था उनकी माँ ने
पर उन्हें क्या पता
ये इक्कीसवीं सदी की बेटी है
जो कर्तव्यों की गठरी ढोते-ढोते
अपने आँसुओं को
चुपचाप पीना नहीं जानती है
वह उतनी ही सचेत है
अपने अधिकारों को लेकर
जानती है
स्वयं अपनी राह बनाना
और उस पर चलने के
मानदण्ड निर्धारित करना।

"वजूद"

मुझे नहीं चाहिए
प्यार भरी बातें
चाँद की चाँदनी
चाँद से तोड़कर
लाए हुए सितारे।

मुझे नहीं चाहिए
रत्नजड़ित उपहार
मनुहार कर लाया
हीरों का हार
शरीर का श्रृंगार ।

मुझे चाहिए
बस अपना वजूद
जहाँ किसी दहेज, बलात्कार
भ्रूण हत्या का भय
नहीं सताए मुझे।

मैं उन्मुक्त उड़ान
भर सकूँ अपने सपनों की
और कह सकूं
मेरा भी स्वतंत्र अस्तित्व है।

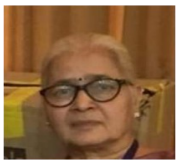

सुधा गोयल
बुलंद शहर

"औरतें"

आजकल औरतें
लिख रही हैं कविताएं
अपने अनकहे
दर्द की व्यथाएं
जिसे अकेले ही
झेलती रही
ओंठो ही ओंठो में
सिसकती रहीं
आंसू पलकों में ठहरा लिए
जख्म अपने सहला लिए
बेख़ौफ़ सी अब वे
उन दर्दो को उघाड़ रही है
अपनी यातना की कहानी सुना रही है।
देह के अत्याचार
मानसिक बलात्कर
घर के नाम पर यातना गृह
पूरी जिंदगी झेलती नफरत
कुछ पल भी सुकून के
चुरा नहीं पाईं
सदा गरियाती और
लतियाती रहीं
चरित्रवान कभी नहीं रहीं
शक के दायरे में रहीं
उनकी देह को कोई भी
निगाहों में निरावरण करता रहा
देह देह नहीं
माटी की पुतली रही
कुछ औरतें ढाल रही है
दर्द भरे शब्द
जो यहां वहां बिखरे हैं
जिनके हैं कुछ अर्थ
अब वे आंसू पीकर
जीना नहीं चाहती
बुझते चिरागों में
तेल डालती रही
खाद पानी देती रही।
औरतें सब जानती है
गांव की या शहर की
सुना रहीं हैं अपनी
अनकही कथाएं
अपनी व्यथाएं।

रीना सिन्हा
जमशेदपुर झारखंड

कैसे"

बोलो कैसे सो जाऊँ
कैसे सुंदर सपनों में खो जाऊँ....

जब सब तारे धूमिल हो जाएँ
जब लोरी क्रंदन बन जाये,
साँसों की लय भी मध्धम हो जाये
जीवन बंधन बन जाये,
फिर कैसे अनसुनी कर दूँ सिसकी
कैसे मुँह फेर अलग हो जाऊँ,
बोलो कैसे सो जाऊँ....

जब रात का काला सन्नाटा
दिन में ही पसर सा जाए,
जब मानव के चंचल पैरों में
शिथिलता की बेड़ी पड़ जाए,
तब घोर निराशा के क्षण में
क्या कह कर मन को बहलाऊँ,
बोलो कैसे सो जाऊँ....

जब मानवता मर जाए
हर संवेदना सो जाए,
फिर किस से पूछूँ क्या होगा अब?
कैसा होगा कल...ये दिन बीतेंगे कब?
मन में उठते इन प्रश्नों को
किस ओर मैं ले कर जाऊँ,
बोलो कैसे सो जाऊँ....

आगे क्या होगा ये आभास नहीं
नई आशा नहीं...कोई आस नहीं,
आने वाले कल की चिंता में
सुख दुख का कोई एहसास नहीं,
फिर कैसे मूंदूँ इन पलकों को
कैसे सुंदर सपनों में खो जाऊँ,
बोलो कैसे सो जाऊँ.....
बोलोकैसे सो जाऊँ.....

सुरभि डागर
बिजनौर

"एक अरसे के बाद"

एक अरसे के बाद मेरे नाम
से तुमने मुझे पुकारा प्रिय,
वो पुकार हृदय को भेद आत्मा
में प्रवेश कर चुकी थी,मानों
सप्तरंगों से बने इंद्रधनुष पर
बीन डाल चित झूलने लगा हो,

मानो- चित में लगी वो गहन गाठें
आहिस्ता -आहिस्ता खुलने लगी,
क्या उसी ध्वनि से प्रवेश कर रहे
थे तुम, मेरे सुने चित की मुडेर पर, जो
अरसे से बंजर भूमि सी हो चली थी,

क्यों उगाना चाहते हो फिरसे उसी हृदय की
भूमि पर कोमल, मुलायम हरी घास....
और नन्हे-नन्हे पुष्प जो चित भी
स्वंम भी महक उठे उपवन सा,
पर सुनो.....

मैने बन्द कर दिये थे हर झरोके
जो खुले थे तुम्हारी ओर.....
पीली चिकनी मिट्टी से हर परत
को ढक दिया था..... .....
मिट्टी की सोदी महक के संग
विलीन हो जाना चलाती थी पंचतत्वो में।।

"चाँद और बालक"

पीला चाँद टंगा आसमान में
कभी मुस्काये, कभी करे ठिठोली,
छुप जाए कभी बादलों में
खेले आँख मिचोली,
काले-पीले बादलों में
क्यों चाँद तुम छिप जाते हो,

इतनी दूर बैठ चाँद तुम
क्यों इतने इतराते हो
कोसो दूर बैठ चाँद तुम
चित को अधिक लुभाते हो,
कभी रूप बना गोल,

कभी अर्द्ध चाँद हो जाते हो
बना नये-नये आकार चाँद
तुम ,अनेको प्रश्न छोड़ जाते हो
अमावस्या की काली धनधोर-
रात में .....

क्या चाँद तुम छुट्टी पर जाते हो
उस रात भी चाँद मै तुमसे छत
पर मिलने आता हूँ
हूँ छोटा सा बालक,
देख बाट चाँद मै भी थक जाता हूँ
माँ से मिलने गए हो चाँद तुम ,
मन कुछ ऐसे समझाता हूँ।।

रेखा शाह आरबी
बलिया (यूपी)

"प्रणय के देवता सुनो"

आज अवचेतन मन ये,
करता व्यथित प्रलाप !
प्रीत अवस्थित भीत के
हेतु कर रहा विलाप!!

चंद्र के मुखारविंद
अमनिशा के घेरे मे!
हैं समूचा मौन उपवन
मुर्दनी बसंत के पग फेरे मे!!

कैसे कायाकल्प हो
जो प्रीत गया है बीत!
चंद्र को चांदनी से
कैसी अविरल ये प्रीत!!

रीती है फूलों की काया
शुष्क हुआ है प्राण!
विधना कुछ कर दो माया
ना हो मन का त्राण!!

चांदनी के मौन अधर
ना सरिता प्रीत गाती!
विहंग भूले गीत गाना
और प्रेम की प्रभाती!!

मधुकर ना नृत्य करते
कुसुमो के आंगन में!
चांदनी का झीना पर्दा
नहीं गिरे तडाग प्रांगण में!!

हे प्रणय के देव सुनो
अभिलाषाए तुमपे रुकी!
ला सको तो लेते आना
मधुमासो की पुलकित हंसी!!

निर्झरो के अश्रुओं का
व्यर्थ ना अवसान हो!
प्रीति के कपाल पर
कोमल अधर निशान हो!!

डा. लता अग्रवाल 'तुलजा'
भोपाल

"अतीत से परहेज"

मत ओढ़ो
अतीत की चादर
इसमें है बहत्तर छेद
हर छेद से
दौडा आएगा बीता पल

धीरे-धीरे रिसता चला जाएगा
भीतर तुम्हारे
मस्तिष्क की जमी परतो में
मचाएगा खलबली
मन को बना मृग मरीचिका
दौडाएगा तुम्हें

भागते रहोगे तुम
अतीत का छोर पकड़ कर
एक अनजाने अनचिन्हे
सुख की तलाश में,
अतीत के चील कव्वे
छोड़ तुम्हारे पीछे

मतिभ्रम कर तुम्हें
खड़ा देखेगा तमाशा
करेगा अट्टहास
मन को तुम्हारे बना
सम्मोहन का सचिवालय
तुम्हारे भीतर करेगा खड़ा
भ्रम का मंत्रालय

स्मृति के अंधे कुएं से
उठेंगी आवाजें

उमड कर आएगा
एक सैलाब
संग लाएगा यादों की
घनघोर बारिश

पूर होंगे
तन मन के पतनाले

झकझोरेगा
डराएगा
दरकाएगा
भीतर ही भीतर
मुट्ठी से फिसलती
रेत सा रिसता रहेगा

यूं खाली कर तुम्हें
भटकाएगा स्मृतियों के
जंगल में
खो जाओगे तुम
चाहकर भी खुद को
पा न सकोगे

न ओढ़ना अतीत की चादर
वर्तमान की दुशाला भली
चाहे जैसी भी हो।

संध्या शर्मा "श्रेष्ठ"
औझर (मध्य प्रदेश)

"मेघराज"

स्वागत है अभिनंदन है,
मेघराज तुम्हारा वंदन है।।

मेघराज जब तुम
झमाझम बरसते ,
एहसासों से झोली भरते
सावन में झूले लगते
घर घर दीपक है जलते।।

वसुंधरा के पुत्रों को
माटी के लालो को
अन्न बोने का इंतजार है।।

मेघराज तुम कब आओगे,
हर दिल की यही पुकार है।।

मेघराज के इंतजार में
झूलो को लगता सूनापन
सावन में जब बेटी घर आए,
जब मां को लगता अपनापन।।

नदी , तालाब, झरने
सब यही पुकारते
बरसो अब मेघराज तुम
अब किसका इंतजार है।।

जून की तपती गर्मी से
यह मानसून का सूनापन
बरसो झमाझम मेघराज,
छोड़ो अब दीवानापन।।

तुम आओगे जान आएगी
धरती के हर वशिंदे की
जल्दी आओ मेघराज तुम
नहि आने पे जान जाएगी।।

आओ आओ मेघराज तुम,
तुम्हारी ही आस है
बरसो बरसो खूब झमक झम
स्वागत के लिए दिल बेकरार है।।

सीमा जोधावत
अजमेर (राजस्थान)

"ओस और दूब का बहनापा "

अपनी ही परिधि में सिमटी,
क्षणभंगुर नन्ही सी
काल बंधन से मुक्त

हंसात्मा को तरल विरल
वाष्पित होने से बेपरवाह
ओस की सौंदर्यवान
पारदर्शी बूंद भी
अपने सीमित दायरे में

आकाश के देवता
प्रातः के उद्घोषक
प्रत्यक्ष देव
रश्मि किरणों को लेकर
लालिमा लिए पधारे
सिंदूरी आभा वाले अरुण को
अपने अंक में भर
सतरंगी दीप्ति से जगमग हो जाती।

फिर चाहे ये प्रभात की प्यारी
दिन भर दिनकर के
दर्शन भी ना कर पाती।
मध्यान्ह का तप्त सूर्य
इसकी नियति में कभी
तपिश नहीं दे पाएगा

क्योंकि यह तो बाल रवि को
अपना जीवन श्रद्धा पूर्वक
अर्पित कर, उसी में मिलने
अदृश्य होकर चल पड़ी
हालांकि निराकार-निरूप होतेहुए भी
अपने आसपास के वातावरण को
अपनी स्निग्ध उपस्थिति से
अपने अस्तित्व की सार्थकता
अपने तिरोहित होने की महत्ता का
आभास अवश्य करवाएगी।

चिरंजीवी होने का आशीष प्राप्त
कोमल हरियाली दूब की
नोक पर खड़ी
जीवन-नटी ये अस्तित्व साधती
घास तो इसको आश्रय देती
वह सबसे ज्यादा दबती
पददलित पर फिर भी
ना कभी मिटती
अदम्य जिजीविषा लिए
ठंडक नंगे पगों को
सुकून आंखों को भी देती ।

ओस ने चुना अपना
क्षणिक सम्पूर्ण आश्रय यहीं
अलसभोर ठौर उसी में पाती।
दोनों एक दूसरे से सुशोभित
यह अल्पजीवी, वह चिरजीवी
साथी पुरातन
मोती ओस का सतरंगी
है बून्द छोटी नीर की
पर भरे जीवन सार लहलहाता
प्रकृति मां के चरणों में
निवेदन स्वत्व का
समर्पण अहम का
ओस का उद्भव -तिरोभाव
है रहस्य जगाता
क्यों वह आती?
कहां को चली जाती?
आर्द्र हृदय को कर जाती
जन श्रुतियों में
भगवान राम के
स्नेहमय हस्त स्पर्श से
अपनी पीठ पर उनकी
प्रेमिल उंगलियों से बने निशान लिए
फुदकती चंचल गिलहरी के
भोजन करने का ढंग
बड़ा रुचिकर दर्शनीय लगता ।

गिलहरी को देखते जब
हाथ में कुछ खाद्य लिए
कुटुर कुटुर चबाती
सौंदर्य का बिम्ब रचती।

दूब भी गिलहरी सी
खड़ी अपनी पीठ तान
ओस बूंद शीर्ष पर
दिखती उसके भोजन सी
तृप्त भरी पूरी, दोनों
जीव भी, बनस्पति भी
संपूर्ण इयत्ता में
क्षुद्रताएं जीवन की
आकार से नहीं मापी जाती
विशाल भी हो सकता लघु
लघु भी भर सकता है सृष्टि संपूर्ण ।

अरुण यादव
पता- हमीरपुर उत्तर प्रदेश

"मैं क्या हूं"

न सूर्य सा अडिग मैं,
न पवन सा चलायमान,
न प्रस्तर सा कठोर हृदय,
न सुमन सा कोमल मैं।

जीवन के इस संगम में,
यूं अकेले ही चलता मैं,
न ही मन में 'मैं' का द्वेष,
न किसी को कष्ट देता मैं।

मैं खुद जग में दुर्बल प्राणी,
क्यों किसी को दुःख दूंगा मैं,
मन में बसी है सबल भावना ,
बस इसी बात से प्रसन्न मैं।

क्या हूं मैं? कौन हूं मैं?
आज तक न समझ पाया,
हूं मैं अपनी मां का दुलारा,
भली भांति जान गया मैं।

लोग अक्सर पूछते मुझसे,
कि तुम क्या हो?.....
मैं कैसे बताऊं और क्यों
बताऊं क्या हूं मैं?.....

लोगों को समझता आसानी से
खुद को कभी न समझ पाया मैं
अगर खुद को जान पाता तो,
क्यों कष्टों को सहता मैं?

आज भी हूं मैं प्रयत्नरत बहुत,
काश!खुद को समझ पाता मैं।

बोझ जिसे मैं ढो न सका यूँ,
ढो जाता तो भी सपना था।।

मनोज शाह 'मानस'
डी- ,27सुदर्शन पार्क,
नई दिल्ली-110015

"कौन सच्चा है कौन है झूठा... "

कौन सच्चा है कौन है झूठा ।
आकर दुनिया वालों को बता।।
जन्नत में सब कुछ है सिवा मौत के,
बेमौत मर रहे हैं जहां में सारा जहां ।
गीता में सब कुछ है झूठ नहीं !
दुनिया में सब कुछ है सुकूं नहीं !!

इंसान को जो तूने बनाया है...,
सब कुछ है सब्र नहीं ज़रा सा ।
कौन सच्चा है कौन है झूठा ।
आकर दुनिया वालों को बता ।।
इंसानों में ही एक चेहरा एक मूरत !
'मां' कहते हैं जिसे बहुत खूबसूरत !!
तुमसे भी ज्यादा करूणा.. ममता,
अथाह सागर असीम तूफां भरा ।
कौन सच्चा है कौन है झूठा ।
आकर दुनिया वालों को बता ।।
फूलों में 'कपास का फूल' ही भा गया !
वर्षा से भीगी मिट्टी की सुगंध छा गया !!
जो मिठास तूने 'वाणी' में भरी है...,
दुनिया में नहीं कुछ 'वाणी' से मीठा ।
कौन सच्चा है कौन है झूठा ।
आकर दुनिया वालों को बता ।।

'मां' का दूध का कर्ज याद रहेगा सदा !
यही धर्म यही संस्कार जग में यदा यदा !!
सबसे काला 'कलंक' को बताया...,
'पाप' पृथ्वी से भी भारी सदा सदा ।
कौन सच्चा है कौन है झूठा ।
आकर दुनिया वालों को बता ।।
सबसे सस्ता कर दिया तूने 'मशवरा' !
महंगे वातावरण में 'सहयोग' का डेरा !!
क़ैद खानों में इंसानियत की सत्ता...,
क़ैद खानों में इंसानियत की सत्ता ।

कौन सच्चा है कौन है झूठा ।
आकर दुनिया वालों को बता ।।

"कुछ पल की मुलाकातें... "

कुछ पल की मुलाकातें...!
कही अनकही सी बातें...!!

कुछ पल तेरे संग संगिनी ।
छेड़े प्रेम प्रीत की रागिनी ।।
तुम मन की तार बन जाओ,
मैं बन जाऊं दिल की सजनी ।
कुछ पल की मुलाकातें...!
कही अनकही सी बातें...!!

चलो शांत सागर में कंकड़ फेंकते हैं ।
कड़ी दर कड़ी बनते लहरें देखते हैं ।।

जीवन की स्वरुप देखते हैं इनमें,
बनकर सखा संगी अर्धांगिनी ।
कुछ पल की मुलाकातें...!
कही अनकही सी बातें...!!
शाम हो खुला आसमान हो ।
तुम हो सुलगते अरमान हो ।।

आवारा बादलों की तरह दीवाना तुम,
मैं बनूं काली घटाओं की तरह दीवानी ।
कुछ पल तेरे संग संगिनी ।
छेड़े प्रेम प्रीत की रागिनी ।।
कुछ पल की मुलाकातें...!
कही अनकही सी बातें...!!

"सफ़र... "

कौन किसके दिल में जिगर में रहते हैं ।
सफर में है हम अभी सफर में रहते हैं ।।
आदमी में आदमीयत नहीं रहा..!
इंसान में इंसानियत नहीं रहा...!!
एक दूसरे की दिमाग़ खंजर में रहते हैं ।
कौन किसके दिल में जिगर में रहते हैं ।।
ये लोक तंत्र की मेला है..!
फिर भी सब अकेला है..!!
ज़िन्दगी आपा धापी के मंजर में रहते हैं ।
कौन किसके दिल में जिगर में रहते हैं ।।
कौन किसके दिल में जिगर में रहते हैं ।
सफर में है हम अभी सफर में रहते हैं ।।

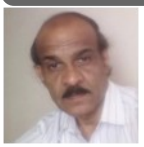

नवीन माथुर पंचोली
अमझेरा धार मप्र

(1)

रस्ते - रस्ते दीप जलाना बाकी है।
अँधियारों का डर झुठलाना बाकी है।

सुनकर जो भी सपनों जैसी लगती है,
उन बातों से मन बहलाना बाकी है।

नए दौर की चढ़ती -बढ़ती शिक्षा में,
सच्चाई का गुर सिखलाना बाकी है।

बूझ रहें हैं लोग यहाँ सबके के चेहरे,
उनको अपना घर दिखलाना बाकी है।

सबकी शान, बढ़ाई वाले मौकों पर
थोड़ा ख़ुद पर भी इठलाना बाकी है।

(2)

चुप-चुप सी शहनाई क्यों है?
महफ़िल में तन्हाई क्यों है?

रात से पहले ही जिस्मों में,
नींद चढ़ी अँगड़ाई क्यों है ?

सोच हमारी एक सही पर,
बात कहीं टकराई क्यों है?

झूठों को आसानी सारी,
मुश्किल में सच्चाई क्यों है?

जो है अपने मन के मौजी,
फ़िर उनकी रुसवाई क्यों है?

अच्छे दिन वालों पर भारी,
आख़िर ये महँगाई क्यों है?

दावे दारी है असली की,
नकली से भरपाई क्यों है?

कुछ तो हो नम रहने वाली,
सब आँखें पथराई क्यों है।

(3)

हमें भी वही राह दिखला रही है।
हवा जिस दिशा में चली जा रही है।

जो आदत नहीं है निभाने की हममें,
रिवायत वही बात समझा रही है।

पता ही नहीं है किसी को हक़ीक़त,
भुलाओं में दुनियाँ पली आ रही है।

रखें मान किसका,रहें साथ किसके,
सदाएँ, सदाओं को भरमा रही है।

करे पार कैसे वो दरिया-समुन्दर,
जो कश्ती हवाओं से टकरा रही है।

(4)

जितने हैं समझाने वाले।
थोड़े हैं अपनाने वाले।

सुनते हैं बस कानों तक,
बातों को झुठलाने वाले।

कैसे मंजिल तक जायेंगे,
रस्ते भर सुस्ताने वाले।

मिलते हैं अपने मतलब से,
कितने आज ज़माने वाले।

सा रे गा मा पर अटके हैं,
ऊँचे सुर में गाने वाले।

औरों का फ़न क्या समझेंगे,
अपने गाल बजाने वाले।

(5)

यहाँ की , वहाँ की ख़बर में नहीं है।
जो अब तक किसी की नज़र में नहीं है।
सुने जो सभी की ,करे अपने मन की,
वो बन्दा किसी के असर में नहीं है।
चला आ रहा है बराबर से लेकिन,
वो रस्ता किसी के सफ़र में नहीं है।
उतारे जो दरिया में कश्ती अकेले,
वो जज़्बा सभी के ज़िगर में नहीं है।
निकलते ही सूरज रहे जिसमें गर्मी,
मज़ा एक ऐसी सहर में नहीं है।
जो नेकी के बदले में इज्ज़त मिले वो,
बुराई से जीती क़दर में नही है।

(6)

रोशनी तम का पता पूछेगी
जब ख़ुशी ग़म का पता पूछेगी।
लौटकर आई हवाएँ हमसे,
शौख मौसम का पता पूछेगी।
रेत की राहों ठहरती साँसे,
आबे जम-जम का पता पूछेगी।
बून्द बनकर फिसल गई उससे,
घास शबनम का पता पूछेगी।
दूर ,मुश्किल सफ़र में वो सबसे
अपने हमदम का पता पूछेगी।

(7)

बन्द आँखों में ख़्वाब जैसा है।
जो नज़ारा सराब जैसा है।
भाव चेहरे के बूझने वालों,
क़ायदा ये क़िताब जैसा है।
नाम उसका बड़ा नहीं लेक़िन,
काम उसका नवाब जैसा है।
शर्म से हाथ मुँह पे रख लेना,
ये तरीक़ा नक़ाब जैसा है।
दूर होकर भी हमको भाता है,
शख़्श वो माहताब जैसा है।

(8)

वो ज़ुबाँ पर सवार होती तो।
बात कुछ धार-दार होती तो।
जान लेती मलाल भीतर के,
जब नज़र भी कटार होती तो।
बात अपना कहा बदल लेती,
एक की जब हज़ार होती तो।
उनके चहरे की वो हँसी नकली,
अब हमें नागवार होती तो।
आज जिसकी ख़ुशी रखी हमनें,
जीत वो बार -बार होती तो।
इन बहारों से दोस्ती रखती,
तितली गर होशियार होती तो।
पास रहती वो दूर होकर भी,
मुझ सी वो बेकरार होती तो।
फिर अंधेरो का डर नहीं होता,
रोशनी आर -पार होती तो।

डॉ. जियाउर रहमान जाफरी
(समीक्षक)
सहायक प्रोफेसर,स्नातकोत्तर हिंदी विभाग
मिर्जा गालिब कॉलेज गया, बिहार

"पोलियो, प्रेम, और कोरोना के बीच की मार्मिक कथा"

इनबॉक्स गीता पंडित का वो उपन्यास है, जिसे आप पहली बार पढ़ते हुए न बीच में छोड़ सकते हैं और न दूसरी बार पढ़ने का साहस जुटा पाते हैं. इसकी कहानी कोई सामान्य कहानी नहीं है. अपनी शैली, कौशल और वर्ण्य विषय की प्रभावोत्पादकता से यह आपके दिल में पैवस्त कर जाती है, और इसके जीवंत पात्र नन्नू से आपकी वो आत्मीयता बन जाती है कि आप उसके हंसने के साथ हंसते हैं और उसके रोते ही रो देते हैं, फिर जब नन्नू की मृत्यु हो जाती है तो आपकी सांसें थम जाती हैं . फिर आप अपने आंसुओं को भी रोक नहीं पाते. उपन्यास में जिस प्रकार लेखिका अपने को पाठकों की संवेदना से जोड़ लेती हैं, यह उपन्यास एक कालजई रचना बनकर हमारे सामने आता है.

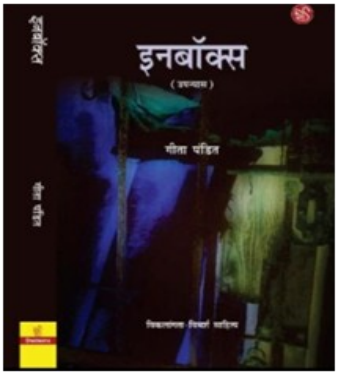

इसके कथा विन्यास में पोलियो से प्रभावित नन्नू की कहानी है, जो पत्रात्मक शैली में लिखी गई है. कोरोना से मृत्यु के बाद मां का नन्नू के नाम पत्र अपने असर से हर आंखों को अश्कबार कर देता है. इस उपन्यास की भाषा शैली इतनी जीवंत है कि आप पढ़ते हुए न ठहरते हैं,न थमते हैं, और न बोर होते हैं, बल्कि एक ही बैठक में यह उपन्यास आप को मुकम्मल करने के लिए मजबूर कर देता है. उपन्यास में एक मां का वात्सल्य,प्रेयसी का सच्चा और पावन प्रेम, पोलियो ग्रस्त होने के बावजूद नन्नू का आत्म संघर्ष आपको इस उपन्यास का मुरीद बना देता है. स्वयं लेखिका अपने इस तीसरे उपन्यास इनबॉक्स के संबंध में बताती हैं कि अपने पात्र नन्नू की वेदना को उन्होंने इस प्रकार आत्मसात कर लिया है कि उनकी आंखें अब तक सूखी नहीं हैं.

लगभग ढाई सौ पेज के आसपास का यह कारुणिक उपन्यास विकलांगता के प्रति जो समाज का दृष्टिकोण है उसे भी उजागर करता है. प्रसिद्ध कवयित्री अनामिका मानती हैं कि यह ऐसा उपन्यास है जो सचमुच मुकम्मल तौर पर डिसेबिलिटी के ऊपर लिखी गई है.

हिंदी उपन्यास की परंपरा में विकलांगता पर इसके पहले भी कई उपन्यास रचे गए हैं.'बेघर ' उपन्यास में संजीवनी विकलांग मां की देखभाल करती है. 'अंधेरे बंद कमरे' की नीलिमा पक्षाघात पिता की सेवा में अपना सब कुछ समर्पित कर देती है. 'यह पथ बंधु था' का कथा नायक विकलांगता के बावजूद अर्थोपार्जन के लिए संघर्ष करता है.'आवां ' उपन्यास की नायिका नमिता भी विकलांग पिता के लिए आर्थिक जद्दोजहद करती है. 'उसके हिस्से की धूप' उपन्यास का पोलियो ग्रस्त युवक नौकरी की उम्मीद में तमाम कठिनाइयों के बावजूद अपनी शिक्षा जारी रखता है. गीता पंडित का उपन्यास इनबॉक्स इन सब से इस प्रकार अलग और विशिष्ट है कि अपंग नन्नू के खिलाफ मां ज़िन्दगी की हर मोड़ पर ताकत बनकर सामने आती है. उसकी विकलांगता को कभी अभिशाप बनने नहीं देती. स्कूल के कुछ मित्रों को छोड़कर कोई उसे उपहास का पात्र भी नहीं बनाता. विकलांग नन्नू को अपने आप पर इतना यकीन है कि वो अपनी इंजीनियरिंग की पढ़ाई मुकम्मल करता है. उसे अच्छी नौकरी मिलती है, पर कोरोना की त्रासदी उसकी नौकरी और जिंदगी दोनों अपने साथ ले कर चली जाती है.

उपन्यास का एक महत्वपूर्ण किरदार टिया है. इसके बिना यह उपन्यास ना इतना महत्वपूर्ण हो सकता था और न इतना असरदायक ही. टिया और नन्नू का प्रेम किशोरावस्था का आकर्षण नहीं है जिसे सूर 'लड़िकनि का प्रेम 'कहते हैं. वो वास्तव में उससे निस्वार्थ प्यार करती है. उसकी मदद करती है. उसका होमवर्क बनाती है. उसके पास बार -बार आती- जाती है. यहां तक कि जब उसकी नन्नू से अलग बैंगलोर में नौकरी लग जाती है तो वहां जाना तक नहीं चाहती. सब कुछ जानने के बावजूद अपनी जिद पर आकर नन्नू से शादी रचाती है. पूरे उपन्यास में नन्नू की दो शक्ति उभर कर सामने आई है.दोनों स्त्री शक्ति है एक उसकी मां और दूसरी टिया. नन्नू जब मां से पूछता है- 'मां मैं और बच्चों की तरह क्यों नहीं हूं ' तो मां कहती है 'तुम सबसे अलग हो इसलिए स्पेशल हो'. मां इस इस पूरे उपन्यास में बच्चों पर नकारात्मक ता हावी होने नहीं देती. हमेशा उसका संबल बढ़ाती है, बार - बार कहती है तुम ठीक हो जाओगे. फिजियोथैरेपी से लेकर चिकित्सक तक से सान्निध्य में रहती है और इसी हिम्मत के सहारे नन्नू धीरे-धीरे अपने हाथों को जमीन पर टिका कर चलना सीख लेता है.अपंगता के ऊपर आत्मविश्वास का यह पहला महत्वपूर्ण उपन्यास है. मां पूरे भरोसे के साथ कहती है-' और फिर कहूंगी नन्नू तुम्हारी मम्मू होने पर मुझे गर्व है (पृष्ठ196).

लेखिका के पास लिखने का नायाब तरीका है जिसके कारण उपन्यास का पात्र उपन्यास का एक पात्र नहीं रह जाता हमसे वो अपना रिश्ता जोड़ लेता है, इसलिए जब

नन्नू की कोरोना से मौत हो जाती है तो हर पाठक यह दृश्य पढ़ते हुए क़तार मार कर रोने लगता है, और फिर उसे यह उपन्यास दोबारा पढ़ने की हिम्मत नहीं होती.

यह उपन्यास इस रूप में भी नयापन लिए हुए हैं कि खलील जिब्रान से लेकर कुंवर नारायण और निदा फ़ाज़ली तक की पंक्तियों का सटीक इस्तेमाल किया गया है. आमतौर पर उपन्यास में शेरो शायरी की ऐसी गुंजाइश नहीं होती. यह उपन्यास तो ख़त्म भी एक शेर के साथ होता है.

हिंदी कथा परंपरा में विकलांगता के ऊपर कई उपन्यास या कहानियां लिखी गई हैं, जिसमें विकलांग चरित्रों की आर्थिक समस्या, उसकी दयनीय स्थिति, सामाजिक उपेक्षा, पारिवारिक समस्याएं. शोषण, आहत आत्म सम्मान आदि को ही विषय बनाया गया है, लेकिन यह हिंदी का पहला उपन्यास है जिसमें विकलांगता थोड़ी - बहुत सामाजिक उपेक्षा के बाद भी एक ताकत के तौर पर उभरी है, इसलिए विकलांग नन्नू पढ़ता भी है,चलता है, परीक्षा में अच्छे अंक लाता है, प्रेम करता है, नौकरी मिलती है और बच्चे होते हैं. उसका जीवन शारीरिक अभाव बाद भी कहीं ना कहीं सुखद है. जहां दुख है वहां उसकी मां और मित्र चट्टान बनकर खड़ी हो जाती है. उपन्यास की सबसे बड़ी त्रासदी कोरोना के कारण नन्नू का इस दुनिया से चला जाना है.पर मां तो मां है वह टूट कर रह जाती है और अगले जन्म में भी नन्नू को कोख से जन्म देना चाहती है.

मुंशी प्रेमचंद ने कहा था कि मैं उपन्यास को मानव जीवन का चित्र समझता हूं, गीता पंडित का यह उपन्यास जो अपने इनबॉक्स में नन्नु के मेल का इंतजार करती है, प्रेमचंद के इस कथन पर भी खरा उतरता है. वास्तव में यह अपनी तरह का पहला उपन्यास है जो समस्या को समाधान बनाकर पेश करता है . हमेशा की तरह श्वेतवर्णा प्रकाशन ने इसे पूरी निष्ठा और रंगत से प्रकाशित किया है. उम्मीद की जानी चाहिए कि हिंदी कथा साहित्य में इसकी अनुगूंज काफी दूर तक सुनाई देगी.

पुस्तक- इनबॉक्स

विधा-उपन्यास

प्रकाशक-श्वेतवर्णा प्रकाशन दिल्ली

पृष्ठ-248

मूल्य-299/-

ग़ज़ल

गिरेन्द्रसिंह भदौरिया "प्राण"
इन्दौर (म.प्र.)

सो जाता तो भी सपना था।
खो जाता तो भी सपना था।।

हँसकर तेरा हो न सका मैं,
हो जाता तो भी सपना था।।

सपना कब होता है सच्चा,
हो जाता तो भी सपना था।।

पहले तो चलना ही मुश्किल ,
जो जाता तो भी सपना था।।

साया बनकर आया था जो
वो जाता तो भी सपना था।।

हँसने का देखा था सपना,
रो जाता तो भी सपना था।।

चाहत थी तेरा होने की ,
हो जाता तो भी सपना था।।

दाग़ों से मैली चादर को,
धो जाता तो भी सपना था।।

बीज नहीं बो सका प्यार के ,
बो जाता तो भी सपना था।।

जितना ढूँढा उतना उसमें,
खो जाता तो भी सपना था।।

बोझ जिसे मैं ढो न सका यूँ,
ढो जाता तो भी सपना था।।

विजय कुमार तिवारी
(समीक्षक)
भुवनेश्वर-751029,उडीसा,

"काश! पंडोरी न होती" की जीवन्त कहानियाँ

हिन्दी कथा साहित्य पर चर्चा के क्रम में बहुत सी बातें हो रही हैं। कोई सहमत हो या न हो,कथा साहित्य का अपना महत्व है। साहित्यिक लेखकों, विचारकों,चिन्तकों और समाज के पुरोधाओं की जिम्मेदारी हमेशा रही है और सबने यथासंभव,यथासाध्य निर्वहन करने का प्रयास किया है। आज के सघन संक्रमण-काल में अपेक्षाएं बहुत बढ़ गयी हैं। ऐसा नहीं है कि सम्बन्धित लोग सजग,जागरूक नहीं हैं और दायित्व निभाना छोड़ दिया है। समाज का विकास इन्हीं संघर्षों,टकरावों और बेहतर की तलाश से होता है। गड़बड़ी तब होती है, जब व्यक्ति-केन्द्रित सोच को बढ़ावा मिलने लगता है। ऐसे में समाज,देश और उसके साहित्य की प्रगति प्रभावित होने लगती है। हालांकि सिद्धान्तों में,पुस्तकों में,शास्त्रों और संविधान में तत्सम्बन्धी सम्पूर्ण सर्वसम्मत विचार सुरक्षित रहते हैं। उनकी आवश्यकता और लागू किये जाने की अनिवार्यता पर कहीं कोई असहमति नहीं होती। हर काल-खण्ड में प्रश्न उठते हैं,उनके उत्तर खोजे जाते हैं और समाज की दशा-दिशा तय करने वाली नियामक शक्तियाँ उन्हें स्वीकार करती हैं। समस्या ज्यों की त्यों बनी रहती है,सारे प्राप्त निष्कर्ष लागू नहीं होते। वैचारिक जटिलताएं इतनी हैं कि सम्यक निराकरण सुनिश्चित कर पाना सहज नहीं होता। हास्यास्पद ही है,हम व्यक्ति,समाज और देश-हित की चिन्ता करते हुए धीरे-धीरे एक-दूसरे के सामने खड़ा हो जाते हैं। विकास तो अवरूद्ध होता ही है,सम्पूर्ण ऊर्जा और शक्ति का क्षय होता है।

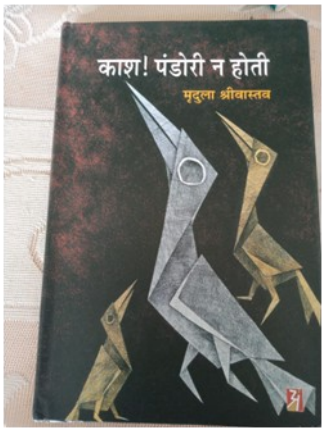

साहित्य की धड़कन लोग महसूस करते हैं। कोई सृजन करता है,कोई पढ़ता है,कोई चिन्तन करता है और कोई विवेचना,व्याख्या करता है। सभी अपने-अपने तरीके से प्रश्न खड़ा करते हैं,अपने-अपने तरीके से समाधान भी करते हैं। जो उत्तर नहीं ढूँढ़ पाते,उनका भी साहित्य में सहयोग है क्योंकि साहित्य उनके लिए भी है। साहित्य में मानवता और मनुष्य की बातें होती हैं,उनकी भी बातें होती हैं या होनी चाहिए जिनके लिए हमारी संवेदना जाग उठती है। हर रचनाकार स्वयं की अनुभूतियों को अभिव्यक्त करता है या करना चाहता है,इसके लिए विधाओं के सन्दर्भ में चिन्तन करता है और अपनी सहज अभिव्यक्ति की विधा का चुनाव करता है। हर लेखक उसी विधा को अपनाता है जिसमें सहज स्वाभाविक तौर से अपने अनुभूत संसार को संतोषप्रद स्तर तक अभिव्यक्त कर सकता है। निर्भर करता है कि उसका अनुभूत संसार साहित्य में कितने फलक तक फैला हुआ है। गद्य और पद्य दोनों में विस्तार की पूरी संभावना होती है। गद्य परपरा में कहानी विधा में शायद सर्वाधिक लेखन होता है। हिन्दी में ही नहीं,दुनिया की तमाम भाषाओं में कहानियाँ खूब लिखी और पढ़ी जाती हैं। कालक्रम की दृष्टि से देखा जाये, कहानी लेखन भी उतना ही प्राचीन है जितना काव्य साहित्य। कहानी लेखन में बहुत सी सुविधाएं हैं और स्वतंत्रता भी। आकार में कुछ कहानियाँ छोटी होती हैं,वही कुछ कहानियों का विस्तार सैकड़ों पृष्ठों तक होता है। समीक्षक अक्सर उल्लेख करते हैं, कुछ कहानियाँ औपन्यासिक वृत्ति की होती हैं।

शिमला में रहने वाली सुपरिचित कहानीकार मृदुला श्रीवास्तव के कहानी संग्रह "काश! पंडोरी न होती" आजकल मेरे हाथों में है और सुखद है कि कहानियों में पाठकों को बाँधे रखने की अद्भुत क्षमता है। इनमें जीवन के नाना रंग दिखाई दे रहे हैं,संवेदनाएं उभर रही हैं, प्रतीकों, मिथकों और बिम्बों के माध्यम से कहानी के संदेश सहज ही समझ में आ जाते हैं। मृदुला श्रीवास्तव की कहानियाँ खूब छपती हैं,व्यापक रुप से पढ़ी जाती हैं और उन्हें साहित्य के बहुत से पुरस्कार भी मिले हैं। एस आर हरनोट की टिप्पणी उद्धृत करना उचित ही होगा,"काश! पंडोरी न होती" मृदुला श्रीवास्तव का पहला कहानी संग्रह है। कई वर्ष की चुप्पी के बाद मृदुला जिस परिपक्वता के साथ हिन्दी कहानी के वर्तमान परिदृश्य में उपस्थित हुई है वह सुखद अनुभूति देता है।" सहमत होते हुए कहना सम्यक है कि हरनोट जी ने मृदुला श्रीवास्तव की कहानियों के मूल भावों को पकड़ा और रेखांकित किया है।

इस संग्रह में कुल 10 कहानियाँ हैं। उनमें से अधिकांश छोटी हैं और कुछ बड़ी या मध्यम आकार की हैं। वैसे कहानी का सम्बन्ध आकार से नहीं देखा जाता,उनका कथ्य-कथानक,भाव-संवेदना और संदेश महत्वपूर्ण होता है। उनकी कहानियों के पात्र संघर्ष करते दिखाई देते हैं,जीवन की विद्रुपताएं उनकी दृष्टि से बच नहीं पाती और जहाँ कहीं

जीवन है,पूरी गरिमा से उभरता हुआ स्पष्ट होता है। कथा कहने की उनकी अपनी शैली है,भाषा में प्रवाह बना रहता है और मनोवैज्ञानिक समझ परिस्थितियों को सम्हालने में मददगार साबित होते हैं। मृदुला श्रीवास्तव अपने पात्रों को पहचानती हैं,उनके सुख-दुख से परिचित हैं और संवाद के माध्यम से कहानी बुनती चलती हैं। वे बेबाकी और ठसक के साथ लेखन करती हैं,यह उनके साहस का परिचय देता है और कहानी को यथार्थ बना देता है। यह निश्चित ही उनके स्वभाव का हिस्सा हो गया होगा और आसपास के अपने लोग प्रभावित होते होंगे। महिलाओं में इसे गुण माना जाना चाहिए और साहित्य में किंचित भिन्न भाव की झलक मिलती है।

'ब्रेन' शोधपरक भावनात्मक कहानी है। इसमें संवेदनाएं हैं और जीवन का यथार्थ भी। डा० शिवकुमार मेडिकल के छात्रों को लाश के अंगों के बारे में पढ़ाते व शोध करवाते हैं। लाश यहाँ एक मद है यानी एक वस्तु। उसके प्रति कोई संवेदना नहीं होती, किसकी है, कहाँ से आई है या उसके साथ कौन सी कहानी जुड़ी है? यह प्रकाश की कहानी है जिसे गरीब गंगो और गूंगी बूढ़ी डाक्टर को दिखाने लायी है। डा० कुमार ने उसके ब्रेन पर शोध किया और उन्हें अमेरिका में सम्मानित करने के लिए निमंत्रित किया गया है। प्रेम की झलक मिलती है जब लाश के नीचे गंगो की फटी शाल दिखती है। डा० कुमार पश्चाताप करते हुए कहते हैं,"मौत से पहले तो इस बेगाने शहर में तिल-तिल बुझते प्रकाश के दर्द को समझते हुए भी मैंने कभी सहयोग देने की कोशिश नहीं की।" यही कहानी का संदेश है,हम सभी को अपने आसपास दुखी,पीड़ित-प्रताड़ित या लाचार-कमजोर प्रकाश जैसे लोगों को समय रहते मदद करनी चाहिए। कहानी में मृदुला ने समाज के मनोविज्ञान का चित्रण बहुत अच्छे तरीके से किया है। चित्रण देखिए-तेल की प्यास से तड़पते बालों वाली,ऐसा विवरण मृदुला श्रीवास्तव की कहानियों में अक्सर मिलते हैं और लेखन को अलग पहचान देते हैं। उनकी भाषा और शैली में रोचकता दिखाई देती है। 'मुलम्मा' कहानी किसी को भी झकझोर सकती है,विचलित कर सकती है और जीवन के यथार्थ से परिचित करवा सकती है। भूख चाहे तन की हो या मन की उसकी परिणति ऐसी ही होती है,ऐसे ही सब कुछ बिखर जाता है। भूख की स्थिति में मां की मौन स्वीकृति हिलाकर रख देती है। दोनों बहनों का मनोविज्ञान जीवन की सच्चाइयों को समझा देता है,तेनम्मा तंगम्मा को रोकते हुए कहती है,"नहीं तंगम्मा,नहीं। ऐसा मत करना। डाक्टर सोने जैसा खरा इंसान है। ये बड़े लोग हैं। इनसे दुश्मनी मोल लेना ठीक नहीं। हम गरीबों की यही नियति है।" जिस बेबाकी से मृदुला ने यह कहानी लिखी है,उनके अनुभूत संसार का परिचय मिलता है और उनके साहस का भी।

'कहीं एक और ग्रंथि' कहानी बहुत कुछ कहती है। हमारे समाज की सच्चाई बयान करती है। लड़कियों की उच्च शिक्षा से लड़कों का अहम आहत होने लगता है,पतन का मार्ग अपनाकर घर को तबाह करते हैं और आत्महत्या जैसा कदम उठाते हैं। इस कहानी में नायिका समझौता करना चाहती है, नायक को साथ देना चाहिए था। उच्च डिग्रियाँ लड़की की हो या लड़के की,घर की सम्पदा है,उसका लाभ पूरे घर को होता है। लड़की को शिक्षित होने के लिए बहुत श्रम करना पड़ता है,मां-पिता के घर में भी खुले मन से साथ नहीं मिलता,उच्च शिक्षा मिलते-मिलते शादी की उम्र निकलने लगती है। बहुत मार्मिक और यथार्थ चित्रण हुआ है। मृदुला श्रीवास्तव ने किसी को अपने आसपास देखा है,ऐसा होते हुए और बेहतरीन तरीके से अपनी कहानी में समस्या को उजागर किया है। यह हमारे समाज के सामने,पुरुषों के सामने गम्भीर प्रश्न है जिसका समाधान खोजना ही होगा। बहुत दुखद है,डा० प्रभात के प्रस्ताव को ऋचा इसलिए ठुकरा देती है कि वह डी लिट है और प्रभात केवल पीएचडी--'कहीं एक और ग्रंथि'। मृदुला श्रीवास्तव सामान्य घटना के माध्यम से,अपनी कहानियों में समाज का विद्रुप चेहरा दिखा देती हैं।'रक्त के रंग' समाज के प्रतिष्ठित,बड़े पदों पर आसीन लोगों की सोच और मनोविज्ञान पर करारा व्यंग्य है। सबके चेहरे नंगे हो रहे हैं और सच्चाई सामने है। दंभ में लोग रिश्तों को महत्व नहीं देते और मानसिकता ऐसी कि सब कुछ पैसे से खरीद लेंगे। ऐसे लोग रिश्तों,सम्बन्धों, भावनाओं पर आक्रमण करते हैं। अनुराधा का चरित्र बेहतरीन है,उसकी सोच तथा प्रश्न समाज की आँखें खोलने के लिए पर्याप्त है। उसे अपने पिता की संवेदनशून्यता पर दुख होता है। खून का रंग तो लाल ही होता है परन्तु मृदुला ने सफेद,पीला और अनेकों रंगो को दिखाया है,व्यंग्य किया है। यह उनके साहस,अनुभूति और अन्तर्दृष्टि का प्रमाण है।

मृदुला श्रीवास्तव पात्रों का चुनाव करती हैं, हुलिया ऐसा चित्रित करती हैं मानो पीड़ा स्वयं सामने आ खड़ी हुई है। चरित्र चित्रण में इससे चार चाँद लग जाता है। 'चवन्नी' कहानी के गंगवा उर्फ चवन्नी का चित्रण उदाहरण है। संगीत सबको अच्छा लगता है,चवन्नी 'चक दे इंडिया' में खोया हुआ है। बाल शोषण पर आधारित कहानी झकझोरती है,विचलित करती है और हमारे समाज की संवेदनहीनता पर व्यंग्य करती है। कदम-कदम पर गरीब,कमजोर बच्चों के दुश्मन हैं। लावारिस बच्चे की दुनिया बड़ी तो होती नहीं,शोषकों के चंगुल में फँसा रहता है। हर व्यक्ति चवन्नी का शोषण कर रहा है या करना चाहता है। मृदुला श्रीवास्तव ने इस कहानी के माध्यम से हमारे समाज का घिनौना चेहरा उभारा है। चवन्नी जैसे बच्चे भी जीवन की सच्चाई को स्वीकार कर जीने लगते हैं। उसकी जिजीविषा और चक दे इंडिया की धुन पर थिरकना जीवन्तता का प्रमाण है ।

मृदुला श्रीवास्तव की विशेषता है,अपनी कहानियों में प्रकृति चित्रण,रंग और आलोक ऐसे भरती हैं मानो पूरा दृश्य जीवन्त हो उठता है। कारुणिक दृश्य मन में गहरे उतरते हैं और संवेदनाएं जीवन भर स्मृतियों में पड़ी चैन नहीं लेने देती। कश्मीरी पंडितों की त्रासदी पर आधारित कहानी 'फिरन' उनकी बेहतरीन कहानियों में से है। आतंकवादियों ने मिन्नी की निर्वस्त्र लाश फेंक दी थी। मनोहर काव का मां के साथ संवाद उम्मीद जगाने वाला है,"नहीं

मां,यही यादें तो हमें अपना हक दिलवाएंगी। ये आग अगर ठंडी हो गयी तो समझो हम अपनी मिट्टी से अलग हो गये।" दीपा,बड़ी बहन के साथ ऐसा ही हुआ। घर के घर तबाह हो गये और अब सब राहत शिविरों में दिन काट रहे हैं। शिविर में एक साथ युवा,युवतियाँ,बहुएँ,जवान,वृद्ध सब रह रहे हैं। सबको अपनी जड़ों से उखड़ने का दर्द है। मनोहर पेंटिग बनाता है,अपनी भावनाओं को उकेरता है और राशन के लिए लाइन में लगा सब कुछ याद करता है। अंत में कहानी आदर्शवाद की ओर मुड़ती है,मनोहर किसी घायल मुसलमान के लिए रक्तदान करने दौड़ पड़ता है।

मृदुला स्थानीय शब्दों और मुहावरों का प्रयोग धड़ल्ले से करती हैं। 'बात अभी बाकी है' कहानी की पृष्ठभूमि मद्रास,आज की चेन्नई की है,इसलिए वहाँ की भाषा तमिल के शब्दों का प्रयोग हुआ है। वे साहस पूर्वक उन शब्दों का प्रयोग करती हैं जो धंधे वाली औरतों की भाषा है। कभी-कभी मनोरंजक भाव के शब्द होते हैं, जो किंचित हास्य और रूमानियत दर्शाते हैं। मृदुला किसी अनुभवी या समझदार महिला की तरह कहानी आगे बढ़ाती हैं,उनका सृजन चमत्कृत करता है। आखिर कहाँ से सीखा,समझा या देखा होगा। शहरों में फैले ऐसे हास्टल या नारी निकेतनों की सच्चाई भी बयान हो रही है। लड़कियों के लिए यह पीड़ादायक स्थिति है। दुखद है कि यह सब अपने ही देश में होता है। कहानी सच्चाई बताती है, कैसे प्यार करने वाले और बड़े पदों पर बैठे लोग भी अपनी प्रेमिकाओं का शोषण करते हैं। महिलाएं मर्दों की वासनापूर्ण निगाहों को पहचानती हैं। नल्ली और जयंती दोनों हैं हास्टल के एक ही कमरे में अपने-अपने बिस्तर में। दोनों की स्थितियाँ भिन्न हैं। धीरे-धीरे दोनों में बनने लगी और विगत सालों से उनका साथ है। मृदुला के पात्र कहते-कहते रुक जाते हैं,यह उनकी विशेषता है परन्तु कहानी का प्रवाह प्रभावित होता है। पकौड़े खाने का दृश्य मार्मिक हो उठा है, मछुआरे ने जीवित मछली को बेसन लगा जलते तेल में डाल दिया,नल्ली चीख पड़ती है। उसे लगा, मछली अब भी तड़प रही है। एस.पी का बेडरुम और वह----। नल्ली भागती है वहाँ से। जयंती दिन भर सधवा की तरह रहती क्योंकि शादी के बाद प्रथम रात्रि में ही पति ने हमेशा सधवा रहने की बात की थी। जयंती रात में विधवा बन जाती है। नल्ली को यह रहस्य विस्मित करता है और वह जयंती से अपनी तुलना करती। नल्ली जिस मुत्तुस्वामी का मंगलसूत्र पहनती है,जयंती ने उसकी शादी किसी और से अपने कोर्ट में होते देखा है। जयंती के जीवन का तूफान उसके भाई के पत्र से मोड़ ले चुका है। इधर नल्ली को भी मुत्तुस्वामी की असलियत जयंती ने बता दिया है। नल्ली सिल्क की साड़ी पहने सीढ़ियाँ उतर रही है। उसने कहा,"बात अभी बाकी है जयंती! बात अभी बाकी है। इतनी आसानी से नहीं छोड़ूँगी मैं मुत्तु को।" नारी चिन्तन पर यह मार्मिक कहानी है। किसी भी सभ्य समाज में ऐसा नहीं होना चाहिए। मृदुला श्रीवास्तव ने नारी जीवन के भटकाओं, संघर्षों,विवशताओं का हृदयस्पर्शी चित्रण किया है और पुरुष प्रधान समाज को कटघरे में खड़ा किया है।

कोई बता सकता है,मुक्का लगी नाक कैसी होती है या तेल के लिए तड़पते बाल,यह मृदुला श्रीवास्तव के गढ़े हुए भाव-विचार हैं। उनकी कहानियों में ऐसे नये-नये शब्द हिन्दी को समृद्ध करते हैं-चिंदी-चिंदी आँखें,सूखे काले गालों पर बहती सूख चुकी नाक का पनाला आदि-आदि। 'रैंप वाॅक' कहानी के नायक की मां,बहन और पिता के नहीं होने के कारणों का वर्णन मृदुला के तार्किक मन की थाह दे देते हैं। बारह साल का कान्छा सीढ़ियों पर खेल रहा है,कोई महिला टोकती है तो बेधड़क उत्तर देता है। साहसी,स्वाभिमानी बालक की फितरत में नहीं है भीख मांगना,वह श्रम करके जीवन यापन करना चाहता है। अखबार बांटता है,गुलाब मुफ्त में नहीं लेता और गेयटी थियेटर में फैशन शो देखने पहुँच जाता है। मृदुला श्रीवास्तव इस कहानी के माध्यम से 'पूह' जैसी संस्थाओं का चरित्र और सरकारी धनराशि का बंदरबाट उजागर करती हैं। नेपाली कान्छा में उत्साह है,जोश है और रैंप वाॅक करना चाहता है। मृदुला ने आये दिन शिमला जैसे ठंडे शहरों में गरीबों को ठिठुर कर मरते हुए सुना है,देखा है। उसमें बहुतेरे नेपाली होते हैं जिनकी संवेदना और पीड़ा का अनुभव किया है। रैंप वाॅक न कर पाने व शिमली को गुलाब न दे पाने की पीड़ा उसे निढाल कर देती है और ठंड से काँपता हुआ वह रात के आगोश में खो जाता है। संवेदना से भरी इस कहानी का दुखद अंत होता है जब लावारिस लाशों को ले जाने वाली गाड़ी में उसे लादा जा चुका है।

मृदुला श्रीवास्तव अपनी कहानी की शुरुआत जिस बिन्दु से करती हैं,शुरु में समझ में नहीं आता। कोई चित्र खिंचती हैं और आने वाली घटनाओं,भावनाओं से जोड़ती हैं। यह उनकी शैली भी हो सकती है या पाठकों के मन तक पहुँचने का कोई नायाब तरीका। 'खेस' कहानी में मां के साथ का संवाद किसी अंधेरी गुफा जैसा लगता है। रश्मि सोचती है,"नौकरी और डर दोनों बिल्कुल अलग चीजे हैं। पता नहीं,मां हमेशा से इन दोनों को जोड़कर क्यों देख रही है?अब देखो न,डर हमें कमजोर बनाता है और नौकरी मजबूत।" लड़की का नौकरी करना कुछ परिवारों को असहज करता है। इसका मूल कारण है,लोग समस्या नहीं सुलझाते बल्कि अहम में जीते हैं। यह बिल्कुल वाजिब प्रश्न है, ऐसे हालात में लड़का या पति अपनी नौकरी क्यों नहीं छोड़ता? लड़की को ही क्यों कहा जाता है-छोड़ दो अपनी नौकरी? यह समस्या विकराल हो उठती है यदि पत्नी पदोन्नति लेकर आगे निकलने लगती है। पुरुष जब तर्कों से औरत को समझा नहीं पाता तो चरित्र पर आरोप लगाना शुरु कर देता है। रश्मि को मां-पिता के बीच का तीखा संवाद याद है। दादी अपने पुत्र के पक्ष में खड़ी रहती हैं। घटनाएं घटती रहीं। सहकर्मी विजय ने मां को खेस उपहार में दिया है। पिता खूब चिल्लाए। मां को नौकरी छोड़ने की धमकी या मायके जाने का आदेश। मां ने इस्तीफा दे दिया। घर शांत हो गया और मां का चेहरा सफेद। सुधांशु के पत्र हिदायतों से भरे होते। कहानी का मजबूत पक्ष उभरता है,रश्मि सगाई रोकने के लिए कहने मां के पास जाती है। मृदुला घटनाओं को,चरित्रों को जोड़ती है,परत दर परत

खोलती है और अपनी नौकरी न छोड़ने का निर्णय लेती है। कहानी के माध्यम से समाज विशेषतः पुरुषों के सामने मृदुला श्रीवास्तव प्रश्न उठाती हैं और अपने हिसाब से उत्तर देती हैं।

मृदुला श्रीवास्तव टुकड़ा-टुकड़ा जोड़ती हैं,जीवन के रंगों को उभारती हैं,भावों को शब्द देती हैं और अपने सामने देखे संसार को पाठकों के लिए सुलभ करवाती हैं। उनके पात्र सामान्य हों या असामान्य,उनके विचार असाधारण होते हैं और वे लीक से हटकर कुछ करने का हौसला रखते हैं। उनकी कहानियों में बाल शोषण,स्त्री दमन,कमजोर लोगों का दोहन जैसे मुद्दे स्थान पाते हैं और पाठकों को,समाज को विचलित करते हैं। विचलित रचनाकार होता है,उसके मन में पीड़ा उभरती है, संवेदनाएं चैन नहीं लेने देतीं ,वह सृजन में लग जाता है और कहानी के माध्यम से विसंगतियों के प्रति आगाह करता है। समस्या को सही-सही दिखाना समाधान की ओर बढ़ने का कदम होता है। व्यक्ति का,समाज का मनोवैज्ञानिक चिन्तन सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है क्योंकि इस प्रविधि के द्वारा हम समस्या को यथार्थतः समझ पाते हैं और समाधान की ओर उन्मुख होते हैं। मृदुला मनुष्य को केन्द्र में लाती हैं,उनके अधिकारों, सरोकारों के लिए आवाज बनती हैं और मानवता को हाशिए पर ढकेलने की किसी भी प्रवृत्ति का विरोध करती हैं। इस क्रम में कई बार भटकती दिखती हैं,कहीं-कहीं जिद्द करती हैं भावनाओं में बहती हैं। उनके भाषा और भाव में अंतराल उभरता है,ऐसा होता ही है परन्तु कथ्य-कथानक की बारीकियों से समझौता नहीं करतीं,जो कहना होता है,कह ही देती हैं।

'काश! पंडोरी न होती' कहानी के नाम पर ही संग्रह का नामकरण मृदुला ने किया है तथा यह उनकी चर्चित कहानियों में से एक है। पंडोरी भारत और पाकिस्तान के बीच बहने वाली दरिया है,पंडोरी लड़की भी है जो पाकिस्तानी औरत सलमा और हिन्दुस्तानी सिपाही शरीफुद्दीन की संतान है। इस में स्त्री विमर्श है,दो देशों के बीच के कानून हैं,त्रासदी है,संवेदनाएं हैं और बहुत कुछ है जिसे कहानी व्यक्त करती है। इस कहानी मे प्रश्न हैं जिनके उत्तर की तलाश मृदुला श्रीवास्तव करती हैं और पढ़ लेने के बाद हम सब भी कर रहे हैं। कहानी हमारे भीतर करुणा जगाती है और पात्रों के जीवन में घट रहे संयोगों से विचलित करती है। यहाँ प्रेम जुगुप्सा जगाता है,सीमाएं लांघता है और अंधेरे में सदा-सदा के लिए ढकेल देता है। औपन्यासिक पृष्ठभूमि लिए इस कहानी में उजाले कम,अंधेरे अधिक हैं। मृदुला श्रीवास्तव की कहानियों में पुरुष हमेशा कटघरे में खड़ा रहता है। सहमत-असहमत हुआ जा सकता है परन्तु यह भी विचारणीय है,जब कोई पुरुष पतित होता है,साथ में कोई स्त्री भी होती है। हालांकि इसे उचित नहीं ठहराया जा सकता। गलत तो गलत है और उसका दण्ड भोगना पड़ता है।

सलमा पंडोरी दरिया में तैरते-उतराते हिन्दुस्तानी सीमा में पहुँच गयी,उसे गिरफ्तार कर लिया गया। जीवन से तंग आकर उसने अपने को दरिया के हवाले किया था। पाकिस्तानी जासूस समझ उसके साथ तहकीकात,यन्त्रणा, कोर्ट आदि शुरु हो गये। उसे जेल भेज दिया गया। कहानी जेल व्यवस्था पर प्रश्न उठाती है जहाँ औरत कैदी सलमा के साथ जेल का वार्डन शरीफुद्दीन मुँह काला करता है। एक बच्ची जन्म लेती है,सलमा प्यार से उसका नाम पंडोरी रखती है। जज शारदा की कहानी में पाकिस्तान से आया हुआ अजहर है,चंद मुलाकातें होती हैं,अंगूठी बदली जाती है,बिना कुछ जाने समझे अपना सब कुछ समर्पित करती है। वह पाकिस्तानी है,अजहर ने यह भी नहीं बताया था। बीजा खत्म होते ही वापस चला गया। शारदा के गर्भ में उसका बीज है। सलमा को अम्मी के कहे शब्द याद आते हैं,"गुनाह जमीं नहीं करती मेरी बच्ची,इंसा करता है। बुरा इंसा तो किसी भी जमीं का हो सकता है।" पंडोरी को नाजायज संतान माना गया। उसका क्या होगा? उधर शारदा के दिन पूरे हुए,अपनी सहेली के क्लिनिक में भरती हुई। डाक्टर शारदा से कहती है,"हम तुम्हारी बच्ची को नहीं बचा पाये।" शारदा मन ही मन सोचती है,"क्या सचमुच औरत चाहे आठवीं फेल हो या एल.एल.एम पास,एक जैसी ही होती है? कमजोर,असहाय,सहमी सी,असमर्थ?" सलमा शरीफुद्दीन की हत्या करती है और जेल चली जाती है। जज शारदा इस्तीफा देकर पंडोरी को गोद ले लेती है। कहानी अनेक मोड़ों,रास्तों से गुजरती है और जीवन का नाना रुप दिखाती है। सचमुच मृदुला श्रीवास्तव की यह एक अच्छी कहानी है जो हमारे समाज को आईना दिखाती है।

समीक्षित कृति	**काश! पंडोरी न होती**
कहानीकार	**मृदुला श्रीवास्तव**
मूल्य	**रु 250/-**
प्रकाशन	**अंतिका प्रकाशन,गाजियाबाद**

बोली एक अमोल है, जो कोइ बोलै जानि।
हिये तराजू तौल के, तब मुख बाहर आनि॥

ऐसी बानी बोलिए, मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करे, आपहुँ सीतल होय॥

लघुता ते प्रभुता मिले, प्रभुता ते प्रभु दूरी।
चींटी लै सक्कर चली, हाथी के सिर धूरी॥

निन्दक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय॥

मानसरोवर सुभर जल, हंसा केलि कराहिं।
मुकताहल मुकता चुगै, अब उड़ि अनत ना जाहिं॥

कबीर

वंदना नामदेव
(समीक्षक)
पुणे, महाराष्ट्र

"हृदय से सीधा संवाद करता काव्य-संग्रह- अंजुरी"

सर्वप्रथम आप सभी का एक छोटा सा परिचय करवाती हूं अंजुरी पुस्तक के लेखक से। वैसे तो यह किसी परिचय के मोहताज नहीं हैं। साहित्य संगम संस्थान के हरियाणा इकाई के अध्यक्ष और संस्थान के सफल संचालक के रुप में आ. विनोद वर्मा दुर्गेश जी सभी के हृदय में खास स्थान बना चुके हैं, इसलिए मेरा ज्यादा कहना शायद उचित न हो, लेकिन इतना जरुर कहूँगी कि आप कर्मठ, लगनशील, मेहनती और एक उम्दा साहित्यकार के साथ-साथ सुलझे हुए व्यक्तित्व हैं। इनके सीखने की लगन एवं इनका विनीत भाव ही इनके सफलता का राज है।

आ.विनोद वर्मा जी की अंजुरी पुस्तक अपने आप में उत्कृष्ट है। इस संकलन में गीत, गज़ल, दोहे ,कविता, दोहागीत, कुंडलिया आदि संकलित हैं। अंजुरी की प्रत्येक रचना उत्कृष्ट और विधा सम्मत है। संकलन पढ़कर लगता है कि लेखक हर विधा में पारंगत है।

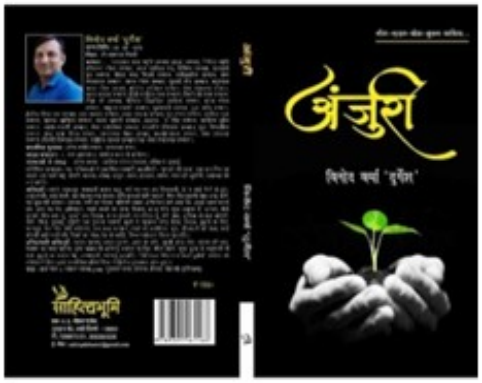

मेरा गांव, सैनिक, कलयुग, संवाद होना चाहिए, मौसम, रक्त दान, आई बैसाखी की रेल, उम्मीद अभी बाकी है, बारिश की बूंदे, सूरज की बारात, क्षितिज के पार, मंजिल ही एक ठिकाना है, भांति-भांति के रंग सभी रचनाएं लाजवाब हैं एवं भावों से ओत प्रोत हैं। लेखक को प्रकृति से अथाह लगाव होने के कारण प्रकृति की अनुपम झलक भी इनकी रचनाओं में दिखने को मिलती है।

इनकी गद्य शैली जितनी परिमार्जक है वहीं पद्य शैली अलंकरण युक्त एवं बिंब प्रधान है। इन्होंने गीत, ग़ज़ल, मुक्तक, दोहे, नवगीत आदि लिखे हैं। इनके गीत 'संवाद होना चाहिए' का दृष्टांत देखिए-

छोटी-छोटी बातों पर, ना विवाद होना चाहिए।
दौर भले कैसा भी हो, संवाद होना चाहिए।।
बातों से ही हल निकलेगा, संशय से बढ़ती दूरी,
भेद दिलों के खोल दो सारे, ना हो कोई मजबूरी,
मौन रहने से ना हो लाभ, बस मैल धुलना चाहिए।
दौर भले कैसा भी हो, संवाद होना चाहिए।।

छंदों के मामले में भी इनकी लेखनी पीछे नहीं रही। दोहा छंद इनका प्रिय छंद रहा है। फिर भी इन्होंने चौपाई, कुण्डलिया, कुण्डलिनी, हरिगीतिका, मनहरण घनाक्षरी, पीयूष वर्ष छंद, सुभ्रमर दोहा आदि पर सृजन किया है। पीयूष वर्ष छंद का एक उदाहरण देखिए-

चाँदनी आई निशा को चीर के
फूल उपवन में खिले हैं पीर के।
चाहतों की लौ जली आ तो जरा
गीत गाएंगे मिलन की धीर के।
मेघ भी गाने लगे हैं रागिनी
झूमते हंसा सुरधुनी तीर के।

गीत और छंदों का सृजन करते-करते इन्होंने हिंदी ग़ज़ल की ओर रूख किया। रदीफ, काफिया, बहर और रूक्न का इल्म होने पर इन्होंने अनेकों ग़ज़लों का सृजन किया। इनकी एक हिंदी ग़ज़ल देखिए-

चाहतों का सिलसिला इस बार है
चैन ना इक पल मुझे अब यार है।
मिट गए कितने यहाँ रांझे फकत
हीर की चैखट गुले गुलजार है।

इन्होंने केवल एक ही छंद पर केंद्रित रह कर छंद सृजन नहीं किया बल्कि विभिन्न छंदों पर अपनी लेखनी चलाकर साहित्य सेवा की है। विभिन्न छंदों में सृजन करते हुए इन्होंने कुण्डलिया भी लिखी हैं जो जनप्रिय हैं। इनकी एक कुण्डलिया देखिए-

यादें मेरे गाँव की, करती भाव-विभोर।
बचपनकीअठखेलियाँ, साथी नए किशोर।
साथी नए किशोर, करें मिल धमाचैकड़ी।
दादी की वह डांट, रखती हम पर चैकसी।
कह विनोद कविराय, करो तुम ऐसे वादे।
खुशियों की सौगात, सजाकर आएँ यादें।

कुल मिलाकर अंजुरी पुस्तक को पढ़कर आपको कतई निराशा नहीं होगी। यह संकलन लेखक के साहित्यिक उपलब्धियों में से एक है। इनकी साहित्यिक यात्रा निरंतर ऊँचाइयों की ओर अग्रसर रहे, इन्हीं शुभकामनाओं के साथ बहुत बहुत बधाई देती हूँ।

पुस्तक: अंजुरी
लेखक: विनोद वर्मा दुर्गेश
प्रकाशक: साहित्यभूमि गुरूद्वारा रोड़ नई दिल्ली
पृष्ठ संख्या: 112
मूल्य: 150 रू.

डॉ प्रदीप उपाध्याय
(समीक्षक)
देवास, म.प्र. 455001

इंसान और मानवीय रिश्तों की पड़ताल है कहानी संग्रह 'गुज़रते हुए'

ख्यात विचारक, इतिहासकार एवं कथाकार जीवन सिंह ठाकुर का कहानी संग्रह 'गुज़रते हुए' एक काल विशेष में लिखा गया दस्तावेज है। इसके पूर्व उनके तीन उपन्यास,दो इतिहास पर शोध ग्रंथ, चार कहानी संग्रह, सामाजिक-सांस्कृतिक परम्परा पर एक पुस्तक तथा बंटवारे पर लेख संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। कहानी संग्रह उनकी जीवन संगिनी मधुबाला जी तथा अभिन्न मित्र ख्यात लेखक और चित्रकार प्रभु जोशी जी को समर्पित किया गया है जिन्हें कोरोना महामारी से जूझते हुए क्रूर काल ने असमय ही छीन लिया।

'गुज़रते हुए' कहानी संग्रह बोधि प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है। 180 पृष्ठों की इस पुस्तक में कुल 16 कहानियां सम्मिलित की गई हैं। संग्रह पर चर्चा के पूर्व कथाकार की 'अपनी बात' से भी तादात्म्य स्थापित करना समीचीन होगा। कथाकार ने लिखा है कि-"लेखक का कहना या बयान या उसकी आत्मा उसकी रचनाएं होती हैं।" आगे वे लिखते हैं कि-" इस संग्रह की कहानियों में रिश्ते,,अपनापन, परिवार, पड़ोस, नगर, देश-दुनिया हैं।उन इंसानों और मानवीय रिश्तों की पड़ताल है जो हमें एक समाज बनाता है,पूरी दुनिया को बनाया है।हम भारतीयों ने हमेशा 'वसुधैव कुटुम्बकम'में विश्वास किया और निभाया है।यह कुटुम्ब ऐसा है जिसमें मुहब्बत है, प्यार है,अपनापन, गहरी आत्मीयता और लहराती संवेदनाओं का सागर है, कोई पराया नहीं है।सभी अपने हैं।"

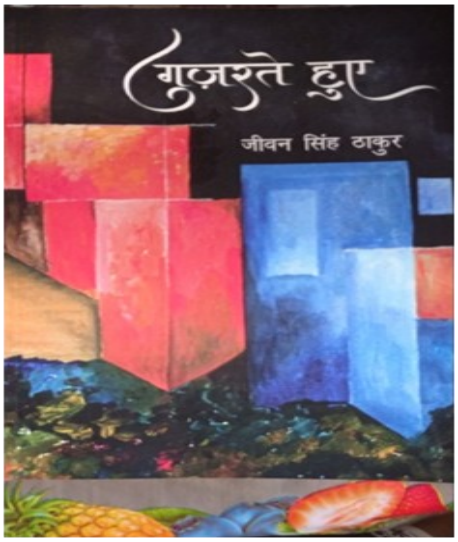

कहानीकार एक विचारक,एक चिंतक के तौर पर समाज में व्याप्त विसंगतियों से द्रवित है, क्षुब्ध हैं। उन्होंने लिखा है -"जो देखने में,समझने,सुनने-पढ़ने में आ रहा है,वह बहुत ही गंभीर सांस्कृतिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय संकट के पूर्व चलने वाली तेज हवाएं हैं। समंदर में उठती तेज लहरें हैं। परिवारों में, रिश्ते-नातों का बवंडर है, नकारात्मकता का घोर नाच है।हम सभी चिंतित हैं कि जो भी सकारात्मक है, उसके खिलाफ कुछ लोग हैं, मुल्क के खिलाफ हैं, मुल्क को तोड़ने की प्रबल आवाजें हैं।"

उनका मानना है कि-"इतिहास पर सटीक दृष्टि आवश्यक है। इतिहास में फैली जड़ों की तलाश जरूरी है क्योंकि पिछली दस शताब्दियां आक्रमण,लूट,कत्लोगारद, विध्वंस और अग्निकांडों की रही है। महाविनाश हमारे देश और समाज ने झेला है। अतः हमें अपने उत्पादन, अर्थतंत्र, निर्माण, शिक्षा आदि की जड़ें देखनी होगी, उर्जा तथा गहरी प्रगतिशीलता के स्त्रोत हमारी संस्कृति और परम्परा में है, उन्हें वर्तमान में देखना होगा और आगे बढ़ना होगा। बिना देशज चिंतन और सांस्कृतिक उर्जा के देश विकास कैसे करेगा।

अपनी चिंताओं से रूबरू होते हुए एक इतिहासकार अपनी कहानियों में इतिहास के उन अपठित पन्नों को पलटते हुए समाज में व्याप्त कटुताओं, विसंगतियों को विभिन्न घटनाक्रमों में व्यक्त करने का प्रयास करता है।वह यथार्थ के धरातल पर कोरोना महामारी के उद्गम पर भी प्रश्नचिन्ह खड़े करता है और इंसानियत के खिलाफ हुए इस हमले पर अपना आक्रोश भी व्यक्त करता है जो उनकी विभिन्न कहानियों में दृष्टिगोचर भी होता है। जीवन सिंह जी ठाकुर की ये कहानियां मात्र कोरोनाकाल पर ही मुखरित नहीं हुई है बल्कि उन्होंने व्यवस्था के हर छोर , मानवीय सरोकार, संवेदनशीलता, स्त्री-पुरूष अन्तर्सम्बन्धों, मानवीय सम्बन्धों के मनोवैज्ञानिक पक्ष पर भी अपनी कलम चलाई है।

जहां 'जीपों वाला घर' कहानी में भ्रष्ट व्यवस्था और नैतिक पतन की पराकाष्ठा दिखाई देती है, वहीं 'एक असंभव सी, संभव कल्पना' में कहानीकार पर इतिहासकार हावी हो जाता है और वह लिखता है कि-"इस लोकतंत्र में यह उम्मीदें तो मैं पाल सकता हूं। इसमें किसी का क्या नुकसान।" इसी में अपनी बेबसी पर वह आगे लिखता है-"अजीब सी कल्पनाएं करता हूं-क्या करूं! दोस्तों! इतना तो कर ही सकता हूं।"

कहानी 'गांम में जा को जूं' में कस्बाई संस्कृति को लेखक ने बखूबी विस्तार दिया है। आपसी मेलजोल, अपनत्व, भेदभाव रहित जीवन,आपसी सम्बन्ध, जातिवाद की बेड़ियां, पड़ोसी रिश्ते,अन्तर्जातीय विवाह को लेकर अच्छा तानाबाना बुना है।कोरोनाकाल में लाकडाऊन यानी जनता कर्फ्यू को लेकर समाज में फैली दहशत तथा जनजीवन का वास्तविक चित्रण किया गया है।इसे इन पंक्तियों में सहज रूप से महसूस किया जा सकता है-" गौरेया चहक रही हैं। बेटियां चहक रही हैं। बच्चे खिलखिला रहे हैं। बूढ़े विभोर हैं। महिलाएं, बहुएं सामने के पीपल पर झूम रहे पक्षी को निहार रही हैं।ट्रू व्हीलर,फोर

व्हीलर पर चिड़िया फूदक रही हैं। सड़कें सूनी और इंसानी आवाज नहीं, बाजारों की ध्वनियां,मोटर, बसें, टैक्सियों की आवाज नहीं हैं। लगता है मुल्क अपने स्वभाव में लौट आया है।"यहां अंतिम पंक्तियों में कहानीकार ने बहुत गहरी बात कह दी है।

व्यक्ति का जीवन अपने एकाकीपन से पूरी तरह से नीरस सा हो जाता है और मनचाहे की प्राप्ति के लिए उसका भटकाव उसे सही-गलत दिशा की ओर ले जा सकता है। कहानी मोक्ष का नायक सब कुछ होने के बाद भी खालीपन और अकेलेपन के अहसास, रिश्तों में आपसी समझ के अभाव, विचार भिन्नता के कारण टूटने की स्थिति में आकर पलायन करता है और जब सत्य की खोज में निकलता है तो वहीं जब समान विचार मिलते हैं,आपसी समझ मिलती है तो जीवन में उत्साह और उमंग आ जाती है और जीवन में पूर्णत्व की प्राप्ति हो जाती है । कथाकार ने लिखा है-" स्वामी जी ने उस बहती गंगा को पहचान लिया था।समान धाराएं न ही मिलें,जब भी मिलती है तो गहरा परिचय, सम्बन्ध, रिश्ता बना लेती हैं। उन्होंने कहा भी था , सुलोचना, प्रेम, स्नेह, अपनापन उसमें समा जाना, आंखों में नेह की गंगा हो तो शब्द,वाक्य नहीं कहने पड़ते, क्या तुम्हें ऐसा लगता है कि अविनाश का मोक्ष तुम में ही है, मैं जानता हूं। अविनाश का मोक्ष सुलोचना में है।"
कहानी 'पंछी' में यात्रा के दौरान किसी सहयात्री के बारे में व्यक्ति के विचार, मनोभाव, विचारों का प्रवाह, विचारों की उथलपुथल किस तरह चलती है जब सहयात्री स्त्री हो,इसे कहानीकार ने मनोवैज्ञानिक पक्ष के साथ बहुत खूबसूरती के साथ उकेरा है।

'पराग' कहानी अपने अद्भुत प्रयोग के कारण प्रभावित करती है। कहानी के नायक और एक विवाहिता स्त्री के निश्छल और क्षणिक मुलाकातों को इस कथन के बाद विराम दिया गया जिसमें नायक शायद वह सब पा लेता है जिसकी भौतिक जगत में कोई कल्पना नहीं कर सकता-" सूरज को कोई ला सकता है? लेकिन रश्मियां सब पर पड़ती हैं, जीवन देती हैं। सरोवर कोई घर ला सकता है? उसकी ठंडक, शीतलता ले सकते हैं, फूलों से तितलियां क्या-क्या ले लेती हैं, पता नहीं चलता, वाणी का अमृत कितनों को अपार आनंद से भर देता है। आंखों के नेह तमाम दुख,त्रास हर लेते हैं। सब कुछ है...? 'अंदर बहती नदी' एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जिसे पत्नी बच्चों का प्यार, सम्मान, अपनत्व नहीं मिल पाता है लेकिन वह भीतर की छटपटाहट, दर्द को खामोशी से झेलता रहता है।

'अतिथि' कहानी मर्म को छूने वाली है वहीं 'गुज़रते हुए' में जहां कथा नायक इतिहास के क्रूर दौर को याद करता है, वहीं प्रत्यक्ष में घटित घटनाक्रम उसे प्रेम और वात्सल्य की अनुभूति करा देता है।

कुल मिलाकर सभी कहानियां मन को छूने का सामर्थ्य रखतीं हैं।ये कहानियां लगता है कि अपने आसपास ही घटित हो रही हैं और इनके पात्र भी हमारे बीच ही हैं। इनमें मध्यमवर्गीय परिवारों के जीवन चक्र, आपसी रिश्ते, सामाजिक तानाबाना और उनके सरोकार दृष्टिगत होते हैं।गुजरते हुए कहानी संग्रह में जहां कहानीकार स्वयं घटनाओं का पात्र बनकर अपने विचार प्रवाह को सीधी-सी भाषा में आगे बढ़ाते हैं वहीं बहुत सी कहानियां अपने कथ्य, शिल्प और शैली की दृष्टि से बेजोड़ हैं। निश्चित ही पाठक वर्ग का इस संग्रह को बेहतर प्रतिसाद मिलेगा। शुभकामनाएं।

पुस्तक : गुज़रते हुए (कहानी संग्रह)

लेखक : जीवन सिंह ठाकुर

प्रकाशक-बोधि प्रकाशन

लाल देवेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

ग्राम-कैतहा, पोस्ट-भवानीपुर
जिला-बस्ती 272124 (उ. प्र.)

"अवरोधों से हम न घबड़ाएँ..."

नेक इरादा मन में रखें, कार्य को यूँ हम करते जाएँ।
कभी गिरें, कभी उठें, कभी न अवरोधों से घबड़ाएँ।।

सत्पथ में हमारे आएंगे व्यवधान,
लक्ष्य पर हमें, लगाना है निशान,
लालच के कुएं में, लोग ढकेलेंगे,
कभी डिगने न दें, अपना ईमान।
मन में रखें हौसला तो, ऊँचे पर्वत पर हम चढ़ जाएँ।
उड़ती चिड़िया के आँखों पर, अर्जुन बन तीर चलाएँ।।

जीतोड़ परिश्रम का, मिलेगा इनाम,
मन से से देते रहें, कार्य को अंजाम,
कभी कभी हम, थक कर होंगे चूर,
जुनून से हम, लक्ष्य को दें आयाम।
शूल भी चुभते रहें, पैर में अनगिनत छाले पड़ जाएँ।
हिम्मत न हारे हम, पथ में शत कंटक मिलते जाएँ।।

धीरज रख कर, हमें बढ़ते जाना,
आलस कर हमें, न समय गवाना,
इक इक पल, जीवन में अनमोल,
कार्य के लिए, हम न करें बहाना।
अपनों का जीवन में हमें, सहारा यदि मिलता जाएँ।
सागर कितना भी गहरा हो, मोती हम ढूढ़ कर लाएँ।।

अगर मिले न साथ, तो अकेले चल,
अपने पराक्रम से दें, इतिहास बदल,
जब आगे बढ़ेंगे, तो बनेगा कारवाँ,
जीवन में किसी से, हम करें न छल।

हम अपने धुन में मस्त मगन हो, सद्कर्म करते जाएँ।
कोई तूफान न रोक सके, सफल हम होकर दिखाएँ।।

डॉ.कान्ति लाल यादव
(समीक्षक)
(समता साहित्य अकादमी प्रदेश अध्यक्ष राजस्थान)

"मानवीय संवेदनाओं की प्रहरी है डॉ.अंजु सक्सेना की कविताएं"

श्रीमती डॉक्टर अंजु सक्सेना एक अनुभवी कवयित्री एवं सधी हुई साहित्यकार हैं। अपने काव्य संग्रह "गुबार" में हर तरह की रचनाओं से पाठकों का ध्यान अनेक पहलुओं पर आकर्षित किया है।इस काव्य संग्रह में 70 रचनाएं समाहित है । जिसमें मानवता, नैतिकता, न्याय,अधिकार, पर्यावरण,सकारात्मक ऊर्जा, नीतिपरक,आशावादी दृष्टिकोण, रहस्यवाद, भ्रष्टाचार के खिलाफ आवाज,अन्याय के प्रति आवाज, प्रकृति की रक्षा, स्त्री के अधिकारों की रक्षा, लोकतंत्र की रक्षा, बच्चें बचपन की रक्षा तथा राष्ट्रीयता से ओतप्रोत अनेक बिंदुओं पर चिंतनशील रचनाओं से पाठकों के मन को मोहित एवं आकर्षित किया है । आपकी रचना प्रारंभ से अंत तक बंधी होती है। सहज भाषा में उर्दू मिश्रित शब्दों से कविताओं में मीठास का रस घोलता है। प्रत्येक कविता का गहरा मर्म है।शिक्षाप्रद रचनाओं को पढ़ने पर दोबारा पढ़ने का मन मचलता है। डॉ.सक्सेना ने अपने उत्कृष्ट रचनाओं के माध्यम से देश की, समाज की एवं परिवार की समस्याओं को बड़ी गंभीरता एवं जिम्मेदारी से उठाया है।कवयित्री बहुत ही संवेदनशील हैं। सम सामयिक विषयों को उठा कर विश्व पटल पर रखने का प्रयास करती हैं। अपनी रचनाओं के माध्यम से दो टूक कहना इनका फक्कड़पन है। अपनी लघु रचनाओं में बड़ी-बड़ी बात कहना कवयित्री का सहज और स्वाभाविक गुण है। डॉ. श्रीमती सक्सेना की प्रत्येक रचना अनुपम और बेजोड़ है। उन्होंने नारी शक्ति का आभास करा कर अपनी रचनाओं के माध्यम से यथार्थ को उजागर करने का भरसक प्रयास किया है।

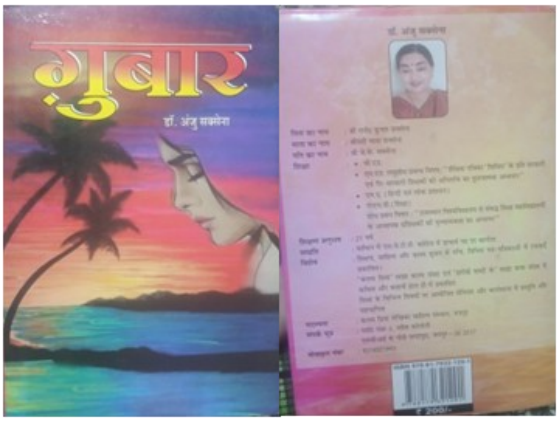

अपने काव्य संग्रह "गुबार" की प्रथम रचना हसरतें में कवयित्री कहती है कि "हसरते क्या है... होंसलों के खुले आसमान में उड़ती पतंगे ही तो है।" कविता के अंतिम पंक्तियां मन को छूने वाली है-

"या तकदीर जिसका इस्तकबाल करे,
वही मंजिल पा जाती है हसरतें।"

वाकई में हसरतें आकाश में उड़ती पतंग की भांति हैं किंतु सच में किस्मत के स्वागत पर ही मंजिल का मुकाम हासिल कर सकती है हसरतें। 'स्त्री की व्यथा' में आज की स्त्री अपना हक नहीं बल्कि बराबर का दर्जा मांगती है। न्याय मांगती है। क्योंकि वह भी एक इंसान है-

"प्रेम का मरहम कभी तुम बन ना सके।
मैं स्त्री सदा बनी रही आधार तुम्हारा
मेरा संबल तुम बन ना सके।"

'चलो,उसी राह पर फिर चले' में डॉ. सक्सेना सकारात्मक ऊर्जा के साथ में कहती है की स्त्री, पुरुष को हर मुसीबत में जब कंधे से कंधा दे सकती है तो क्या पुरुष को एक औरत का ख्याल नहीं रखना चाहिए कि पुरुष भी इस बात को समझे तो फिर कहना ही क्या! 'शातिर लोग' एक नीतिपरक रचना है मानवीय संवेदनाएं एवं हकीकत का यथार्थ बयां करने वाली रचना है। मानवीय चेहरे पर ढके मुखोटे को उतारती है -"हैरान हूं मैं यह सोचकर, क्यूं, कैसे... झूठे शातिर लोग खुद को , नेक दिखा दिया करते हैं।"

"मित्र,कृष्ण सरीखे बन रहना" में मित्र में एक प्यारा रिश्ता खोजती, समझती, सिखलाती रचना है। जो आज के समय में बहुत कुछ बयां करती है। "एक ये दौर है" में जीवन में आशा और निराशा के दौर हमेशा जीवन भर चलते रहते हैं। समय कभी भी एक जैसा नहीं होता है। समय,धन,शोहरत, उम्र में बदलाव होना जग विख्यात है। कविता "दरमियां" में पति-पत्नी की अगाध प्रेम - स्नेह-विश्वास-इंतजार की सुगंध से रिश्ते में मिठास को घोलने वाली रचना है। जिसमें अगाध समर्पण होता है। पति- पत्नी के रिश्ते में यही भाव जीवन भर बांधे रखता है- एक दूसरे को।'मन की उलझन' में रहस्यवाद का पुट देखने को मिलता है। इहीलोक और परलोक के बीच मानवीय द्वंद हमेशा बना रहता है। प्रत्येक इंसान इसका समाधान चाहता है पर इतना आसान कहां ? रहस्यवाद का सुंदर उदाहरण है। "नन्हीं बाहें" बाल मनोविश्लेषण से ओतप्रोत रचना है। "वाकई पत्थर होते हैं" एक नीतिपरक इंसानियत का यथार्थ पेश करती रचना है जो समाज में अंगद लोग अनगढ़ पत्थर की तरह होते हैं। "चलो, बेफिक्री की एक महफिल सजाते हैं।" में मनमौला मदमस्त जीवन जीने के लिए कवयित्री एक सकारात्मक ऊर्जा के साथ आह्वान करती हुई कहती है कि जीवन में अनेक कष्टों को हराकर, गमों को भूलाकर जीवन जीने की महफिल सजाने की हिमाकत की है।डॉ. सक्सेना अपनी रचना 'विकर्ण की आवाज' में समाज, सरकार में हो रहे भ्रष्टाचार,अन्याय के विरोध स्वरूप देश की पवित्र आत्माओं को लड़ने हेतु उठ खड़े होने के लिए आह्वान करती है और आशावादी दृष्टिकोण से जीतने की बात करती है।

"कैसी यह इक्कीसवीं सदी?" में कवयित्री ने देश की नई पीढ़ी के सामने गरीबी,भुखमरी, शिक्षा, चिकित्सा के संकट को गिनाया है। यह कैसा विकास है? कैसी इंसानियत है ? और बढ़ते भ्रष्टाचार पर रोष जताया है-

"चिकित्सा,भोजन ,शिक्षा के अभाव में
पंगु हो रही देश की नव पीढ़ी
बैसाखियों के सहारे कैसे
चढ़ पाएगी ये विकास की सीढ़ी ?"

'स्वार्थ की विभीषिका' रचना में कवियत्री ने बहुत ही गंभीर सवालों को अपनी रचनाओं में उठाया है। भौतिकवादी युग में मानवता तड़प रही है। हम उसे विकास कह रहे है। दुर्घटना पर मौन हैं। अपने स्वार्थ में जी रहा वह कौन है? वास्तव में आज का स्वार्थ से लिपटा भौतिकवादी मानव।

'क्या वाकई मेरा देश महान है?' रचना के माध्यम से कवयित्री अपनी व्यंग्यात्मक शैली से देश के यथार्थ पर गरज उठती है। 'खोफ खुदा का' रचना में कवयित्री कहती है कि आज का इंसान,ईश्वर के डर को भूलकर इंसानियत तक गंवा चुका है -

"फितरत ए दगाबाजी आज
न जाने क्यों लोगों की
रग-रग में समाई है।
माटी के तन की हवस पूरा करने की धुन में
इंसानियत तक गंवायी है।"

अपनी रचनाओं में मर्मस्पर्शी पंक्तियों से भी पाठकों का ध्यान खींचा है कविता -"फिर अजनबी बन जाएंगे" में - "खारी झील शहद की चंद बूंदों से मीठी नहीं हुआ करती!"

कवयित्री, बदलते परिवेश पर भी चिंता करती है तो मानवता पर भी। 'स्त्री की चाहत' में स्त्री अपनी आजादी के साथ-साथ अपने खुद के बुने हुए सपनों को पूरा करना चाहती है।वो चाहती है कि जीवन साथी का पूरा सहयोग मिले तो जीवन समर्पण पूजा से कम नहीं होगा।

-**"कुछ सपने मेरे भी है**
जो तुम संग पूरे करने हैं
एक खाका जो खींचा था मैंने,
तुम संग रंग उसमें भरने हैं।"

'पुलवामा विशेष' में डॉ. सक्सेना देश के युवा वीर जवानों पर गर्व करती है हमारी सेना, हमारे देश के वीर जवानों पर सब को नाज है जिस के दिलों में अपनी मातृभूमि पर प्यार-मोहब्बत है इसी वजह से उसके सीने में सदा प्रतिशोध की ज्वाला धधकती रहती है।

'स्त्री कभी कमजोर नहीं होती' में डॉ अंजु सक्सेना नारी शक्ति को सर्वश्रेष्ठ शक्ति के रूप में देखती है। स्त्री सिर्फ घर, परिवार, बच्चों की खातिर अपनी इच्छाओं का ,अधिकारों का समर्पण कर देती है-

"और जीवन की कोरे पन्नों में
रंग भरती है
अपनों की उम्मीदों के,
आशाओं के।
स्त्री ठान ले तो,
क्या नहीं कर सकती।
कैकेयी का हट,
अहिल्या का तप,
सावित्री का सत
याद है ना...।
पर अपने अधिकार, इच्छाएं
सब समर्पण कर देती है
सिर्फ घर, परिवार,
पति,बच्चों की खातिर।
और लोग सोचते हैं
स्त्रि कमजोर होती है।"

'आज की किताबें' में आज के बच्चों का यथार्थ डॉ.अंजु सक्सेना ने अपनी रचना में उकेरा है। किसी जमाने में किताबें बच्चों के दिलो-दिमाग में जगह बनाकर राज करती थी पर आज वह स्थिति नहीं और नहीं उन किताबों की महक है ना सम्मोहन है। आज बच्चों की तो मोबाइल की दुनिया है। उन्हें आकर्षित करती है। अपनी रचना 'सत्य' में नए प्रयोग से कवयित्री ने सत्य की परिभाषा को सुंदर उदाहरण से परिभाषित किया है; अद्‌भुत है-

"झूठ की होलिका के जलते ही
सत्य प्रहलाद की तरह प्रकट होता है।"

'किसलिए' एक सुंदर रचना है जिसमें डॉ. सक्सेना कहती है यथार्थ को अपने अलग अंदाज में -

"जिसे सताया वो जानता है
तुझे अच्छे से
फिर दुनिया के सामने
बनावट किसलिए"

'सौदा न कीजिए' में लोकतंत्र को बचाने से पहले अपने ईमान को बचाने की हिदायत देती हुई डॉ.सक्सेना कहती है-

"आप कहते हैं कि
लोकतंत्र खतरे में है
जरा गरेबान में झांकिए
आपका ईमान खतरे में।"

'सुनो धरा के वीर सपूतों!' जैसी राष्ट्रीयता से ओतप्रोत रचना में दुश्मन देश के दुश्मनों से देश की आंतरिक दुश्मनों की चिंता व्यक्त की है-

"हिम्मत यूं ही नहीं बढ़ती उसकी
अपनी धरती पर गद्दार बहुत है।"

सकारात्मक ऊर्जा देने वाली रचना है -'फिर से उजड़े दिलों की बस्ती बसाई जाए' अनाथालय में मजबूर मांओं के हक की बात करती है हुई यह रचना है तो दहेज लोभी ऊपर भी कटाक्ष करती है। डॉ.सक्सेना सदा सकारात्मक दृष्टिकोण को लेकर चलने वाली सकारात्मक ऊर्जा की मशाल को जलाने वाली कवयित्री है। 'हे ईश्वर' कविता में कहती है-

"हे ईश्वर! जीवन में चाहे मुश्किलें कितनी भी देना,
पर उन से जूझने का हौसला सदा देना।
घिरने लगूं जब घोर निराशा में
आस की ज्योत जगा देना।"

कवयित्री डॉ.अंजु सक्सेना ने अपनी लेखनी की धार से मानवीय संवेदना से ज्ञान रूपी बूंदों की वर्षा की है। पूरी कविता अपने खुद को बांधती है। जिसे पाठक पूरी पढ़ें बिना चैन नहीं ले सकता है। मैडम जी सक्सेना को तहे दिल से हार्दिक शुभकामनाएं एवं बधाई देता हूं कि वह निरंतर इसी तरह अपनी लेखनी के माध्यम से साहित्य सेवा में रत रहे। साहित्य की सेवा करती रहे। पाठकों एवं साहित्य प्रेमियों का मार्ग प्रशस्त करती रहे इसी आशा और विश्वास के साथ। मेरी असीम शुभकामनाएं।

आस पास

हिंदी विश्वविद्यालय में मनाई कबीर की 624 वीं जयंती

'कबीर का चिंतन: वैश्विक प्रयोजनीयता' विषय पर वक्ताओं ने रखे विचार

कबीर का आध्यात्मिक संसार आज के मनुष्य के लिए संजीवनी की तरह है : प्रो. हनुमानप्रसाद शुक्ल

वर्धा, 14 जून 2022 : कबीर जयंती के अवसर पर आज़ादी के अमृत महोत्सव के अंतर्गत मंगलवार 14 जून को 'कबीर का चिंतन : वैश्विक प्रयोजनीयता' विषय पर महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग तथा दर्शन एवं संस्कृति विभाग के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित वेबीनार की अध्यक्षता करते हुए विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति प्रो. हनुमानप्रसाद शुक्ल ने कहा कि वैश्विक परिदृश्य में कबीर का आध्यात्मिक संसार आज के मनुष्य के लिए संजीवनी की तरह है। कबीर की वाणी की आक्रामकता का अर्थ जड़ता पर प्रहार करने का है। सत्य और सरलता उनके विचार के केंद्र में है। वर्तमान समय में कबीर के विवेक सम्पन्न विचारों की आवश्यकता है।

इस अवसर पर सारस्वत अतिथि के रूप में हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयागराज के अध्यक्ष प्रो. उदय प्रताप सिंह और काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी की प्रो. सुमन जैन ने संबोधित किया। प्रो. सुमन जैन ने कहा कि कबीर सत्य के पुजारी थे। समाज का तार्किक और वैज्ञानिक समाधान उनके साहित्य में प्राप्त होता है। कबीर मध्यकाल के रचनाकारों में श्रमनिष्ठ रचनाकार है।प्रो. उदय प्रताप सिंह ने कबीर की अनेक साखी को उधृत करते हुए कहा कि उनके विचार आज के समय भी चरितार्थ होते हैं। कबीर ने एकता को साधने के लिए भक्ति के माध्यम से प्रेम की बात की है। उनकी आध्यात्मिक चेतना अहंकार को त्यागकर वैश्विक समाज से जुड़ने के लिए प्रेरित करती है।

कार्यक्रम का संचालन दर्शन एवं संस्कृति विभाग के अध्यक्ष डॉ. जयंत उपाध्याय ने किया। उन्होंने कहा कि कबीर ने मनुष्य की दशा को नई दिशा दी। सत्य के पक्षधर्मी कबीर वैश्विक परिप्रेक्ष्य में अद्वितीय, अप्रतिम और अनोखे हैं।

स्वागत वक्तव्य कार्यक्रम के संयोजक तथा साहित्य विद्यापीठ के अधिष्ठाता प्रो. अवधेश कुमार ने दिया। प्रारंभ में कबीर वाणी का गायन ताना- बाना समूह के मूलगादी मठ वाराणसी के सदस्य देवेंद्र दास देव, गौरव, कृष्णा और डॉ. भागीरथी ने किया। विश्वविद्यालय के कुलगीत से कार्यक्रम प्रारंभ हुआ। आभार प्रो. अवधेश कुमार ने ज्ञापित किया। इस अवसर पर प्रतिकुलपति प्रो. चंद्रकांत रागीट सहित अधिष्ठातागण, विभागाध्यक्ष तथा बड़ी संख्या में शोधार्थी एवं विद्यार्थी जुड़े थे।

प्रोफेसर प्रतिभा पाण्डेय
(समीक्षक)
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय दतिया में हिंदी की प्रोफेसर
पता-70,हाथी खाना दतिया 475661

"किसान का पुनरागमन:आड़ा वक़्त"

प्रेमचंद के पहले किसान से जुड़े उपन्यास बहुत कम संख्या में पाए जाते हैं। स्वयं प्रेमचंद ने भी शुरू में किसानों पर ध्यान केंद्रित नहीं किया, बल्कि मध्यवर्ग के कथानक अपनी कृतियों के लिए चुने। निर्मला व गबन जैसे उपन्यासों के बाद उन्होंने किसानों पर अपना ध्यान केंद्रित किया और गोदान जैसा अनूठा उपन्यास अस्तित्व में आया। इसके बाद प्रेमचंद केवल किसानों व ग्रामीणों तथा खेतिहर मजदूरों के कथानकों का चयन करने लगे। चूंकि हिंदी

कहानी में प्रेमचंद के पूर्व किसानों से जुड़ी कथा की कोई परंपरा नहीं थी, इसलिए आज जब किसानों के कथानक पर केंद्रित कथा साहित्य की बात होती है, तो प्रेमचंद की परंपरा कहीं जाती है। प्रेमचंद के बाद की तत्काल बाद की पीढ़ी ने यह परंपरा कायम रखी, लेकिन छठे दशक से नवें दशक तक हिंदी कहानी से किसान लगभग गायब हो गया। हंस के पुनर्प्रकाशन यानी सन् 1987--88 के बाद हिंदी में छुटपुट रूप से किसान का पुनरागमन हुआ। सृंजय,महेश कटारे और संजीव ऐसे लेखक हैं, जो सन् 1990 से 2000 तक की अवधि में अनेक कृषक आधारित कहानियां लिखते रहे हैं,लेकिन उपन्यासों की संख्या तब भी नगण्य थी । नयी सदी के आरम्भ होने के बाद ऐसे अनेक कहानीकार प्रकाश में आए, जिन्होंने किसानों पर आधारित कहानियां व उपन्यास लिखना शुरू किया। इसी अवधि में पंकज सुबीर का "अकाल में उत्सव" जैसा बहचर्चित उपन्यास आया, जिसमें अकाल से बदतर हुए किसानों के हालात और लापरवाह व्यवस्था के दर्दनाक किस्से सामने आते हैं। बीच में आए छुटपुट उपन्यासों के बाद सन् 2022 में किसानों के जीवन के समस्त पक्षों को समेटे हुए एक बेहद सशक्त उपन्यास आड़ा वक्त सामने आया है । इसके लेखक राजनारायण बोहरे का यह उपन्यास लिटिल बर्ड पब्लिकेशन से प्रकाशित है और उनका लिखा हुआ दूसरा उपन्यास है।

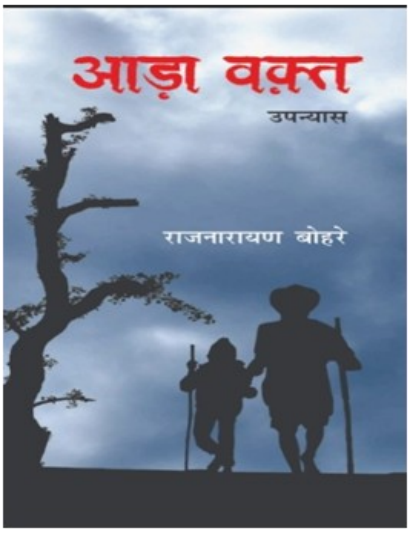

इसका कथानक मूलतः किसान जुगल किशोर उर्फ दादा का है। दादा के भाई स्वरूप और बहन सुभद्रा की अंतर कथाओं पर उपन्यास की विन्यास योजना बनाई गई है । मूल कथानक के नायक जुगल किशोर अपनी जमीन को अपने प्राणों से ज्यादा प्यार करते हैं और उसे किन्ही भी विपरीत स्थितियों में बेचने की कल्पना नहीं करते, इसके लिए उनका तकिया कलाम है कि "जमीन तो आड़े वक्त के लिए होती है!" जुगल किशोर की यह जिद इस हद तक है वे घर की सबसे खतरनाक स्थिति को भी आड़ा वक्त नहीं मानते। उनकी यह धारणा भी है कि खेती की जमीन हमारे उपयोग करने के वास्ते विरासत में मिली है , जो कि ज्यों की त्यों हमे अपनी अगली पीढ़ी को सौंप देना है, हम इसे नष्ट करने के हकदार नहीं हैं, इसलिए दादा खेत का एक टुकड़ा भी बेचने के लिए तैयार नहीं होते। उनका छोटा भाई स्वरूप भवन एवम पथ महकमे में ओवरसियर की नौकरी करता है । वह बड़ी ईमानदारी से अपना काम करता है, इस कारण वह अपने वर्ग के दूसरे अधिकारियों की तुलना में आर्थिक रूप से विपन्न है। विभाग के भ्रष्ट अधिकारी उसे छोटी मोटी साजिशों में फंसा कर तंग करते रहते हैं। रात दिन के तनाव से बढ़ते ब्लड प्रेशर की वजह से अंततः उसे किडनी की बीमारी हो जाती है। दोनों भाइयों की बहन सुभद्रा पास के एक गांव में ब्याही गई है, जहां बांध बनने के कारण उनके खेत और जमीन डूब में आ गई है और उसे विस्थापन का दर्द भोगना पड़ रहा है ।

उपन्यास के आरंभ में ही दादा जुगल किशोर जब स्वरूप को नौकरी ज्वाइन कराने छत्तीसगढ़ के लवाकेरा गांव में गए हैं । तब वे पीडब्ल्यूडी के स्टोर के लिए आदिवासी के खेत का अधिग्रहण किए जाने का विरोध करते हैं और स्वरूप से कहते हैं सरकारी जमीन यहां वहां बहुत सी पड़ी हुई है, इस के खेत से क्या हरा रंग लगा है?

इस उपन्यास में गरीबी और मध्यवर्ग के सीमांत पर टिके हुए किसान की तकलीफें है, उसकी जिजीविषा है,उसके छोटे-छोटे सुख-दुःख और खेती करने के अपने अलग अंदाज हैं।

यह उपन्यास आधुनिक किसान और उसके इर्द-गिर्द के परिवार जनों पर केंद्रित है ।उपन्यास के अंतिम भाग में की कथा यह है कि किसान जुगल किशोर अस्पताल में भर्ती हैं। शासन द्वारा दादा सहित उनके पूरे गांव की जमीन अधिग्रहण करने का निर्णय ले लिया गया है क्योकि वहां अब इंडस्ट्रियल एरिया बनाया जाएगा । अपनी जमीन के चले जाने के सदमे में किसान जुगल किशोर बेहोश होकर गिर जाते हैं, जिन्हें भोपाल में गैस पीड़ितों वाले अस्पताल में दाखिल कराया गया है। वहां उन्हें देखने के वास्ते सुभद्रा पहुंचती है । सुभद्रा को यह भी पता लगता है कि दादा जुगल किशोर के छोटे भाई स्वरूप के देहावसान के बाद गुस्सा हो गए स्वरूप के परिवार ने एक हौलनाक काम किया है- स्वरूप

के बेटे टिंकू ने बिना हिस्सा पटा किए अपने हिस्से की जमीन इलाके के एमएलए को औने पौने दाम में भेज दी है और पैसा अंटी में दबाकर भाग गया है। उसी वक़्त टिंकू भी अपने ताऊ को देखने अस्पताल आता है, तब सुभद्रा और टिंकू के संवाद बहुत रोचक हैं।

सुभद्रा जहां पिछली पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती है, वहीं किसानों की अगली पीढ़ी का प्रतिनिधि टिंकू जमीन को खास महत्व नहीं देता, बल्कि यह कहें कि वह किसी खास जमीन और गाँव विशेष को महत्व नहीं देता। वह कहता है कि यहां की जमीन बेचकर हम कहीं और ले लेंगे या यहां की जमीन अधिग्रहण हो जाने के बाद मिले मुआवजे से हम कहीं दूर जमीन ले लेंगे। टिंकू यह भी कहता है कि ताऊ जिस जमीन को बुरे से बुरे वक्त में रोके रहे क्योंकि वे कहते थे कि जमीन आड़े वक्त के लिए होती है, अब उसी जमीन पर आड़ा वक्त आ गया है। इस तरह अपने अनूठे शीर्षक, सशक्त कथानक और क्षिप्र संवादों के साथ यह उपन्यास बड़े यत्न पूर्वक और पूरी दक्षता व सावधानी से लिखा गया है।

गाँव के किसान से जुड़ी हर समस्या को उपन्यास में न केवल व्याख्यायित किया गया है, बल्कि उससे जूझने की कथा भी आती है। विदेशी खाद और बीज उपयोग करने की गलती से फसल बरबाद होने से किसान बरबाद होते जा रहे हैँ, दादा यह नही करते। वे हमेशा आजमाए हुए बीज ही काम मे लाते हैं और कम्पोस्ट खाद को बापरते हैँ। बच्चे पढ़ने के वास्ते बाहर शहर में जाते हैं तो उनके खर्च पर नियंत्रण रखना जरूरी है अन्यथा उनके पर निकल आते हैँ,कर्ज पे कर्ज होता जाता है तो अंत मे खेत बेचना ही पड़ता है। किसान क्रेडिट कार्ड भी एक समस्या बन गयी है, यह दिया तो गया था खेती के जरूरी खर्च के वास्ते लेकिन घर खर्च में ही इसका उपयोग हो रहा है, जरा सी जरूरत आन पड़ी तो लोग इस कार्ड को बिना हिचक ए टी एम में जा के फंसा देते हैं औऱ मनमानी राशि निकाल लेते हैं जो अनदेखा कर्ज होता है इसलिए फसल बेचने के बाद आये पैसे में से सबसे पहले किसान क्रेडिट कार्ड से निकाले रुपए की कटौती की जाती है जो किसानों को बहुत अखरती है क्योंकि किसान तो फसल का मीर है,फसल आने पर वह बहुत से अटके काम करना चाहता है,शादी ब्याह भी इसी समय करना चाहते हैं ,पर सारे अरमान धराशायी हो जाते हैं क्योकि बच्चों द्वारा जरूरत बेजरूरत निकाले रुपये फसल की बिक्री में से आए धन से कट जाते हैँ।किसान ठगा सा रह जाता है।

ऊपन्यास से पता लगता है कि कुँआ खुदवाने की कसरत बड़ी लम्बी होती है। कुँआ गुनवाने की प्रक्रिया, खनवरियों (कुँआ खोदने वाले खास मजदूरों) के काम करने की प्रक्रिया,जल आते ही मिठाई बंटवाने की प्रथा,कर्ज लेने की मशक्कत और कुँआ बंध जाने के बाद उसके डोरा(उद्घाटन)के कर्मकांड किसान को फिजूलखर्ची के भँवर में उलझा देते हैँ।

उपन्यास में रीति रिवाजों का खूब वर्णन है,सुभद्रा की विदाई पर वह अपने हाथों में भर कर खील बताशे पीछे उछालते हुए दरवाजे से निकलती है,इन बताशों को भाभियां अपने पल्लू में सुरक्षित करती रहती हैँ।

साल दर साल अकाल पड़ते हैँ तो अच्छे खासे किसानों की हालत भी खराब हो जाती है। जुगल किशोर के गाँव मे भी तीन साल अकाल पड़ता है तो सोलह साल का जुगलकिशोर घर की इमदाद के वास्ते अकाल राहत केंद्र में मजदूरी करने जाना चाहता है लेकिन उसका पिता उसे रोकता है क्योंकि सवर्ण कृषक का मजदूरी करना डीक्लास होना होता है, जिसे सामान्य घटना नहीं माना जाता है। दबंग जुगलकिशोर पिता को मना के मजदूरी करने निकलता है। वहां भी जबरदस्त शोषण है, जिसमें कम मजदूरी देने के अलावा स्त्री मजदूरों का शारीरिक शोषण भी किया जाता है। जुगलकिशोर की बांह फड़क उठती है।वह श्रमिकों को संगठित करने लगता है।अन्त में एक किशोरी मजदूर को खन्ना के पास पहुंचाने की बजाय वह वापस उसके गाँव पहुँचा के घर लौट आता है।यह उसके द्वारा अपनी सीमा में रह कर शोषण के खिलाफ किया गया विद्रोह और विरोध है। लेखक एक किशोर के भीतर भी विद्रोह के बीज अंकुरित होते हुए देखते हैँ।

बडे भाई के संस्कार सदैव छोटों पर भी प्रभाव स्थापित करते हैं।दादा की ईमानदारी का असर उनके भाई पर भी पड़ता है तो वह ओवरसियर की नौकरी भी पूरी ईमानदारी से करता है इसीलिए रिश्वतखोरी में लिप्त साथी इंजीनियर उसे कांस्पिरेसी करके उस पर जुर्माना लगवा देते हैँ।तनाव की वजह से सरूप के रक्त चाप में वृद्धि हो जाती है और इसका असर उसकी किडनियों पर होता है।वह प्राणघातक बीमारी का शिकार हो जाता हैं।

जिद और जुनून की इस आदत के चलते दादा भयंकर चूक कर बैठते हैं कि वे सरूप की खतरनाक बीमारी की इलाज के लिए भी जमीन नही बेचते और सरूप की अकस्मात मृत्यु हो जाती है। सरूप के परिवार का गुस्सा इस कदर बढ़ता है कि छोटा बेटा टिंकू चुपचाप ही अपनी जमीन को बेच देता है। यह खबर सुन दादा को गहरा आघात होता है। फिर सरकार द्वारा गांव की सारी जमीन अधिग्रहण की जा कर इंडस्ट्रियल एरिया बनाने का निर्णय दादा को असहनीय झटका देता है और वे मूर्छित हो जाते हैँ। जमीन को पुरखो की तरह प्यार करते दादा के हाथ से जमीन चले जाने से गहरा आघात भला क्या हो सकता है।

खेती की जमीन को सरकार अपने संस्थान स्थापित करने से लेकर सड़क बनाने,फेक्ट्री लगवाने त्तथा अपना नाम कमाने के वास्ते सहसा बाँध बनवाने तक के लिए आँख मूंद कर अधिग्रहीत करती जा रही हैं और खेती के लिए जमीन कम होती जा रही हैँ, इस मुद्दे को लेखक ने बड़ी शिद्दत से उठाया है।

लम्बे अरसे बाद हिन्दी में ऐसा उपन्यास देखने में आया है जो किसान महाकाव्य कहा जा सकता है, जो रोचक भी है,ज्ञान वर्धक भी। यह उपन्यास खूब पसंद किया जायगा और किसानों पर लिखी बेहद सशक्त कृत्ति के रूप में इसे याद किया जायेगा।

डॉ. मोहन बैरागी को मिस्र, इजिप्ट में मिला हिंदी सम्मान

हिंदी साहित्य के राहुल सांकृत्यायन सम्मान से विभूषित हुए डॉ. मोहन बैरागी उज्जैन। हिंदी साहित्य और हिंदी भाषा का डंका विश्व के कई देशों में वर्तमान समय में बज रहा है। विगत दिनों ही हिंदी भाषा को सातवें क्रम में वैश्विक रूप से स्वीकृत किया गया है। भारतीय भाषा और हिंदी साहित्य की व्यापकता इसी बात से प्रमाणित होती है कि मिस्र के नोबेल पुरस्कार प्राप्त साहित्यकार अहमद शौक़ी ने भारत से रबिंद्रनाथ टैगोर को मिस्र आमंत्रित कर अपना सारा साहित्य समर्पित कर दिया था। साहित्य को समर्पित विद्वानों के ऐसे देश में 19वें अंतरराष्ट्रीय हिंदी सम्मेलन का आयोजन 6 जून से 17 जून 2022 को मिस्र के काहिरा में आयोजित किया गया। भारत तथा अन्य देशों के विद्वानों व साहित्यकारों के इस संयोजन के समय वैश्विक रूप से भारतीय भाषा को स्थापित करने के प्रयास में यह सम्मेलन मिल का पत्थर साबित होगा, यह गौरव का विषय है। विदेशी धरती पर सम्मान मिलने के अवसर पर यह बात डॉ. मोहन बैरागी ने सम्मान समारोह में कही। भारत से अलग-अलग विषयों में दखल रखने वाले विद्वानों ने अपनी आमद इस आयोजन में दी। इस अवसर पर विद्वानों को सम्मानित किया गया, तथा इस कड़ी में 14 जून 2022 को इजिप्ट के काहिरा शहर के ग़िज़ा में स्थित पिरामिड पार्क रिसोर्ट में एक भव्य आयोजन में मध्य प्रदेश उज्जैन के डॉ.मोहन बैरागी को हिंदी के प्रकांड विद्वान राहुल सांकृत्यायन सम्मान से सम्मानित किया गया। डॉ. मोहन बैरागी द्वारा अल्प समय मे हिंदी में विभिन्न विधाओं में लेखन तथा उत्कृष्ट साहित्य के लिए यह सम्मान दिया गया। यह सम्मान इजिप्ट तथा भारत के विद्वानों व साहित्यकारों तथा प्रशासनिक अधिकारियों के करकमलों से दिया गया। हज़ारों किलोमीटर दूर विदेशी धरती पर मिले इस सम्मान के लिये डॉ.मोहन बैरागी ने अपने माता पिता, परिवारजन, साथी मित्रों, गुरुजनों, डॉ. शैलेंद्रकुमार शर्मा, डॉ. जगदीश शर्मा, संतोष सुपेकर, शशिरंजन अकेला, अशोक भाटी, दिनेश दिग्गज, अशोक नागर, संदीप नाडकर्णी, मुकेश जोशी, सुरेंद्र सर्किट, नरेंद्र अकेला व अभिन्न पत्रकार मित्रों को याद कर धन्यवाद दिया, जिनके संबल से यह उपलब्धि हासिल हुई है। इस अवसर पर भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा छत्तीसगढ़ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष टॉमन सिंग सोनवानी, वरिष्ठ विद्वान साहित्यकार जवाहर गंगवार, डॉ. सुखदेवे, छत्तीसगढ़ लोकसेवा आयोग के सचिव जीवनकिशोर ध्रुव, उत्तर प्रदेश, भारत सरकार से यश भारती सम्मान प्राप्त डॉ. रामकृष्ण राजपूत, डॉ. जयप्रकाश मानस, मुमताज, उच्च शिक्षा विभाग उत्तराखंड की निदेशक डॉ. सविता मोहन तथा इजिप्ट के पुरातत्वविद व साहित्यकार तथा पर्यटन विशेषज्ञ सुश्री शाइमा, मुहम्मद, अहमद, अब्दुल्ला, मुहम्मद व अन्य विद्वानों की उपस्थिति में कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

समाज की विसंगतियों पर सदैव कलम चलाई मुंशी प्रेमचंद ने - पोस्टमास्टर जनरल कृष्ण कुमार यादव

'मुंशी प्रेमचंद लमही महोत्सव-2022' के क्रम में संस्कृति विभाग, उ.प्र. और काशी विद्यापीठ की ओर से राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन

वाराणसी। मुंशी प्रेमचंद एक साहित्यकार, पत्रकार और अध्यापक के साथ ही आदर्शोन्मुखी व्यक्तित्व के धनी थे। एक पत्रकार को कभी भी पक्षकार नहीं होना चाहिए, उसे अपने कर्तव्य का निर्वहन करना चाहिए। प्रेमचन्द ने अपने को किसी वाद से जोड़ने की बजाय तत्कालीन समाज में व्याप्त ज्वलंत मुद्दों से जोड़ा। उनका साहित्य शाश्वत है और यथार्थ के करीब रहकर वह समय से होड़ लेती नजर आती हैं। उक्त उद्गार चर्चित साहित्यकार एवं वाराणसी परिक्षेत्र के पोस्टमास्टर जनरल श्री कृष्ण कुमार यादव ने 'मुंशी प्रेमचंद लमही महोत्सव-2022' के क्रम में संस्कृति विभाग, उत्तर प्रदेश और महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी के संयुक्त तत्वावधान में 'प्रेमचंद : अध्यापक और पत्रकार' विषयक दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता करते हुए व्यक्त किये। उन्होंने कहा कि मुंशी प्रेमचंद का समाज के अंतिम व्यक्ति से विशेष अनुग्रह था और समाज की विसंगतियों पर उनकी कलम हमेशा चला करती थी। उनकी कहानी, उपन्यासों और पटकथाओं में सामाजिक कुरीतियों पर करारा प्रहार होता था। पोस्टमास्टर जनरल श्री कृष्ण कुमार यादव ने कहा कि लमही, वाराणसी में जन्मे डाककर्मी के पुत्र मुंशी प्रेमचंद ने साहित्य की नई इबारत लिखी। आज भी तमाम साहित्यकार व शोधार्थी लमही में उनकी जन्मस्थली की यात्रा कर प्रेरणा पाते हैं। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रो. प्रणय कृष्ण ने बतौर मुख्य अतिथि एक अध्यापक और पत्रकार के रूप में प्रेमचंद की प्रासंगिकता को रेखांकित किया। उन्होंने प्रेमचंद के जीवन की कुछ घटनाओं का भी जिक्र किया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग के पूर्व विभागाध्यक्ष प्रोफेसर बलिराज पांडेय ने कहा कि प्रेमचंद जातिधर्म और आर्थिक विषमता की गाँठों को तोड़ना चाहते थे। संगोष्ठी में प्रो बसंत त्रिपाठी, प्रो. सुरेन्द्र प्रताप, प्रो नीरज खरे, डॉ. रविनन्दन सिंह ने विचार व्यक्त किया। मुख्यमंत्री अभ्युदय योजना के वाराणसी प्रभारी डॉ. आर एस चौहान ने कहा कि जन-जन तक प्रेमचंद पहुचे इसके लिए यूट्यूब और फेसबुक चैनल पर इस विचार गोष्ठी का लाइव प्रसार किया जा रहा है।अतिथियों का स्वागत करते हुए क्षेत्रीय सांस्कृतिक केन्द्र के प्रभारी सुभाष चन्द्र यादव ने कहा कि प्रेमचंद न सिर्फ एक साहित्यकार बल्कि एक कुशल पत्रकार भी थे। विषय प्रवर्तन करते हुए काशी विद्यापीठ हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रो. निरंजन सहाय ने कहा कि शिक्षक असाधारण होता है। प्रेमचन्द एक असाधारण शिक्षक थे। प्रेमचंद के बहुत सारे आयाम है, जिसपर प्रकाश डालने की जरूरत है। प्रेमचंद को केवल साहित्यकार ही नहीं बल्कि अध्यापक के रूप में भी उनकी जीवनी को पढ़ा जाना चाहिए। धन्यवाद ज्ञापन करते हुए पत्रकारिता संस्थान के निदेशक प्रो अनुराग कुमार ने कहा कि प्रेमचंद ने कभी भी अपनी लेखनी से समझौता नहीं किया। उन्होंने सामाजिक कुरीतियों और समसामयिक मुद्दों को अपनी लेखनी के केन्द्र में रखा। कार्यक्रम का संचालन डॉ. प्रीति ने किया।

विश्व बाघ दिवस (29 जुलाई) चित्रकार - तेजसी सिंह

रचनाकारों से.....

1 -मानवी त्रैमासिक ई पत्रिका सभी लेखकों/ कवियों/ कथाकारों/ व्यंग्यकारों.....से हिंदी साहित्य की सभी विधाओं यथा लेख/ आलेख/ निबंध/ संस्मरण/ कथा/ कहानी/गीत/नवगीत/ग़ज़ल/कविता/समीक्षा इत्यादि पर स्वलिखित, मौलिक, अप्रकाशित एवं अप्रसारित रचनाएं आमंत्रित करती हैं।

2 -कृपया कविता /गीत /ग़ज़ल आदि रचनाएं दो से अधिक न भेजें। भेजने से पहले वर्तनी त्रुटि सुधार कर उत्कृष्ट रचनाएं manvipatrika@gmail.com पर ही भेजें।

3-रचनाऐं वर्ड फाइल /यूनीकोड में भेंजे। पीडीएफ फाइल स्वीकार्य नहीं है।

4-कृपया माह में पड़ने वाले दिवसों /त्योहारों को ध्यान में रखते हुए अपनी रचनाएं भेजें।

5-कृपया रचना के साथ अपना संक्षिप्त परिचय, पता, कान्टैक्ट नंबर , एवं छाया चित्र भी भेजें।

6-कृपया रचना के साथ साथ , स्वप्रमाणित भी करें कि प्रेषित रचना , मौलिक, स्वलिखित , अप्रकाशित एवं अप्रसारित हैं, अन्यथा रचनाओं पर विचार संभव नहीं है।

7- एक बार में अपनी एक या दो ही उत्कृष्ट रचनाएं भेजे,और पत्रिका के प्रकाशन का इंतजार करें लगातार रचना भेजने का कोई तात्पर्य नहीं है।

8 -यह एक अव्यवसायिक नि: शुल्क ई पत्रिका है, रचनाकारों को पारिश्रमिक देने का कोई प्रावधान नहीं है।

9-समीक्षा के लिए, पुस्तकों की दो प्रतियां सम्पादकीय पते (बी-701,स्वाति फ्लोरेंस, निकट सोबो सेंटर, साउथ बोपल, अहमदाबाद-380058,गुजरात ,मोबाइल-9833775798) पर भेजें। स्वयं समीक्षा भेजने पर पुस्तक की एक ही प्रति भेजें।

10-रचना प्रकाशन और रचना संशोधन का अधिकार संपादक मंडल का होगा ।संपादक मंडल का निर्णय मान्य अन्तिम एवं बाध्यकर होगा।

“बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय”

वन्दे मातरम्

सुजलां सुफलाम् मलयजशीतलाम्

शस्यशामलाम् मातरम्।

शुभ्रज्योत्स्नापुलकितयामिनीम्

फुल्लकुसुमितद्रुमदलशोभिनीम्

सुहासिनीं सुमधुर भाषिणीम्

सुखदां वरदां मातरम्॥१॥

वन्दे मातरम्।

मानवी सेवा संस्था : राष्ट्र और राष्ट्र जन की सेवा में समर्पित

274/x ,शक्तिनगर कालोनी ,आरोग्य मंदिर ,गोरखपुर -273003

http://www.manvipatrika.co.in

(पत्रिका यहाँ से भी पढ़ सकते है)